तरुचिंतन 2012

4 वर्ष

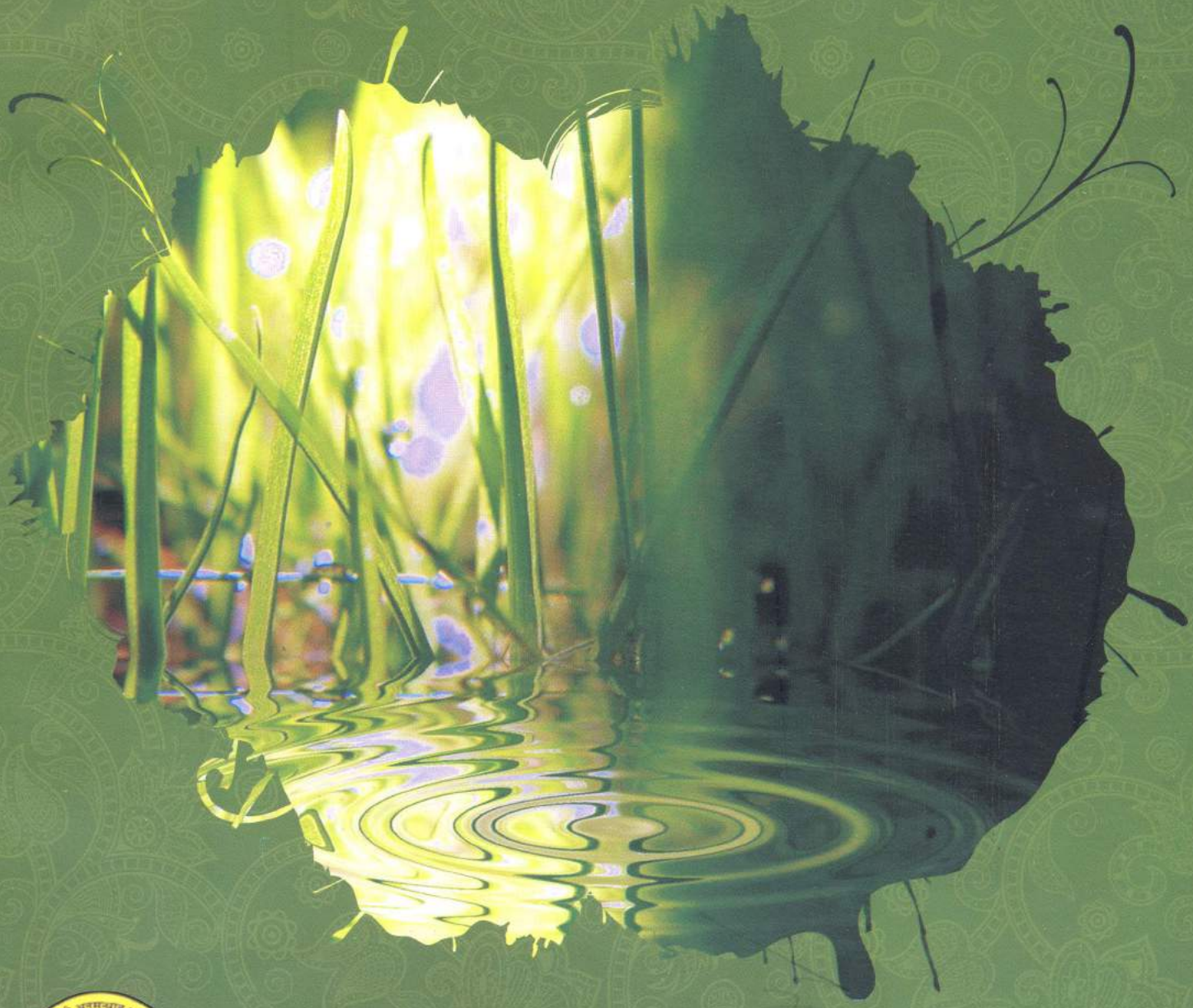

भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की स्वायत्त परिषद्)
न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड)
भारत

भारत माता
ग्राम वासिनी

भारत माता
ग्रामवासिनी

खेतों में फैला है श्यामल
धूल भरा मैला सा आँचल
गंगा यमुना में आंसू जल,

मिट्टी की प्रतिमा
उदासिनी

चिन्तित भृकुटि क्षितिज तिमिरांकित
नामित नयन नभ वाष्पाच्छादित
आनन श्री छाया शशि उपमित

ज्ञान मूढ़
गीता प्रकाशिनी!

स्वर्ण शस्य पर पदतल लुंठित
धरती सा सहिष्णु मन कुंठित।
क्रन्दन कंपित अधर मौन स्मित।

राहु ग्रसित
शरदेन्दु हासिनी

श्री सुमित्रानन्दन पंत

संरक्षक

डॉ. वी. के. बहुगुणा *भा.व.से.*
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

सम्पादक मंडल

प्रधान सम्पादक
श्री शैवाल दासगुप्ता *भा.व.से.,*
उपमहानिदेशक, (विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.

सम्पादक
श्री आर.पी.सिंह *भा.व.से.,*
सहा. महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.

सहायक सम्पादक
श्री रमाकान्त मिश्र
अनुसन्धान अधिकारी (मीडिया एवं विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.

प्रसंस्करण
श्री डी. एस. रौथाण
फोरमैन (मुद्रण) (मीडिया एवं विस्तार), भा.वा.अ.शि.प.

आवरण
पृष्ठ आवरण – परिषद् में हिन्दी सप्ताह समारोह

प्रकाशक
मीडिया एवं विस्तार प्रभाग, विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा, परिषद्
डाकघर – न्यू फॉरेस्ट
देहरादून – 248006 (उत्तराखण्ड), भारत

4
वर्ष

तरुचिंतन 2012

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
उत्तराखण्ड, देहरादून

संरक्षक की कलम से

डॉ. वी. के. बहुगुणा
महानिदेशक
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संस्था है तथा यह राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए अध्यादेशित है। परिषद् राजभाषा के प्रति अपने कर्तव्य बोध से प्रेरित होकर राजभाषा के कार्यान्वयन एवं प्रचार प्रसार के लिए दृढ़ता से प्रतिबद्ध है तथा इसके लिए निरन्तर प्रयास करती रहती है।

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् जो कि वानिकी में एक शीर्ष संस्था है, ने वानिकी के विभिन्न पहलुओं को प्रभावशाली रुप में उजागर करने तथा वानिकी के चतुर्मुखी विकास के लिए अनेक उपयोगी कदम उठाये हैं। परिषद् में **थिंक टैंक, जिंजर ग्रुप, फोरम की स्थापना** तथा प्रत्येक प्रमुखता वाले क्षेत्र के लिए **राष्ट्रीय परियोजना निदेशक** तथा विभिन्न विषयों पर व्यवस्थित कार्यों को करने के लिए **राष्ट्रीय विषय वस्तु समन्वयकों** की नियुक्ति की गई है। वानिकी अनुसन्धान को सामान्य जन तक पहुँचाने के लिए वानिकी तथा सम्बन्धित अनुसन्धान कार्यों को हिन्दी में तथा अन्य स्थानीय भाषाओं में भी करने का प्रयास किया जा रहा है।

वार्षिक हिन्दी पत्रिका "तरुचिंतन" भी विगत वर्षों से राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के उद्देश्य को लेकर प्रकाशित की जा रही है। हमारा प्रयास है कि परिषद् में कार्यरत अधिकारियों तथा कर्मचारियों में हिन्दी में कार्य करने के प्रति रुचि विकसित हो तथा इसमे उनके साथ–साथ उनके परिवार के सदस्य भी सम्मिलित होते रहें।

हिन्दी पत्रिका "तरुचिंतन" राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है तथा मुझे पूर्ण विश्वास है कि पत्रिका में प्रकाशित लेखों से पाठक लाभान्वित होंगे तथा यह पत्रिका हिन्दी में वानिकी तथा संबन्धित विषयों की ज्ञान गंगा की अविरल धारा प्रवाहित करने में अवश्य सफल होगी।

डॉ. वी. के. बहुगुणा

प्रधान संपादक की कलम से

श्री शैवाल दासगुप्ता
उप महानिदेशक (विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए निरन्तर प्रयास कर रही है। इस उद्देश्य से परिषद् एक अर्धवार्षिक हिन्दी समाचार पत्र "वानिकी समाचार" का प्रकाशन करती है तथा भा.वा.अ.शि.प. के अन्तर्गत शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर हिन्दी पत्रिका "आफरी दर्पण" का भी प्रकाशन करता है। वानिकी विस्तार के लिए स्थापित किये गये वन विज्ञान केन्द्रों में स्थानीय भाषा को अत्यधिक महत्त्व देती सामग्री राजभाषा हिन्दी के साथ –साथ स्थानीय भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। वार्षिक पत्रिका "तरुचिंतन" भी परिषद् द्वारा राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार को बढ़ावा देने के लिए एक प्रयास है जिससे परिषद् में राजभाषा हिन्दी में सम्प्रेषण करने की कर्मचारियों की क्षमता में वृद्धि हो सके।

हिन्दी पत्रिका "तरुचिंतन" परिषद् तथा संस्थानों के अधिकारियों तथा कर्मचारियों तथा उनके परिवारों के बीच हिन्दी में कामकाज करने का वातावरण बनाने का कार्य कर रही है तथा उन्हे हिन्दी में लिखने के लिए प्रेरित कर रही है। क्योंकि तरुचिंतन में प्रकाशन के लिए प्रतिवर्ष बहुत से लेख, कविताएं, वानिकी विषयों पर जानकारियाँ निरन्तर प्राप्त हो रही हैं जिससे ज्ञात होता है कि वे अपने विचारों को सरल हिन्दी भाषा में व्यक्त करने में रुचि ले रहे हैं तथा इस प्रकार हिन्दी पत्रिका "तरुचिंतन" राजभाषा हिन्दी के प्रचार–प्रसार में सहायता कर रही है।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि परिषद् की यह वार्षिक हिन्दी पत्रिका "तरुचिंतन" राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के हमारे प्रयासों को सार्थक बनाने में सहायक होगी।

श्री शैवाल दासगुप्ता

संपादक की कलम से

श्री राजपाल सिंह
सहायक महानिदेशक (मीडिया एवं विस्तार)
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
देहरादून

भारत विभिन्न संस्कृतियों, भाषाओं वाला देश है तथा भारत अनेकता में एकता का अद्‌भुत उदाहरण है। विभिन्न भाषा तथा संस्कृति के लोगों को माला के मनके की तरह पिरोए रखने में राजभाषा हिन्दी का अमूल्य योगदान रहा है।

जब से संविधान में हिन्दी को राजभाषा होने का गौरव प्राप्त हुआ है तब से भारत सरकार तथा उसके अधीनस्थ समस्त संस्थान, संस्थाएं, उपक्रम, स्वायत संस्थाए राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए निरन्तर प्रयासरत है।

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद भी पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के अधीन एक स्वायत्त संस्था है तथा राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए प्रतिबद्ध है। इसके लिए परिषद् मुख्यालय कई प्रकार से प्रयास करता है। परिषद् में समय समय पर राजभाषा कार्यशालाएँ, प्रशिक्षण, सम्मेलन आयोजित किये जाते है तथा हिन्दी सप्ताह भी मनाया जाता है एवं राजभाषा कार्यान्वयन समिति की बैठकों का नियमित आयोजन किया जाता है तथा नराकास की बैठकों में भाग लिया जाता है। इस वर्ष राजभाषा हिन्दी की मधुरता से परिषद् को आप्लावित करने के लिए "हिन्दी काव्य गोष्ठी" का आयोजन भी किया गया जिसमे राष्ट्रीय स्तर के कवियों ने सहभागिता की जिससे राजभाषा के प्रति लोगों का रुझान बढ़ गया है तथा कर्मचारी वर्ग हिन्दी में कार्य करने के लिए उत्साहित हुआ है।

उपर्युक्त प्रयासों की तरह वार्षिक हिन्दी पत्रिका "तरुचिंतन" का प्रकाशन भी राजभाषा हिन्दी के प्रचार प्रसार के लिए पिछले तीन वर्षों से किया जा रहा है। यह "तरुचिंतन" का चौथा अंक है। मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि "तरुचिंतन" का यह अंक भी आप सभी के लिए अत्यन्त सूचनाप्रद, मनोरंजक तथा उपयोगी सिद्ध होगा।

श्री राजपाल सिंह

विषय सूची

क्र. सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
	संरक्षक की कलम से		i
	प्रधान संपादक की कलम से		ii
	संपादक की कलम से		iii
	राजभाषा		
1.	परिषद् में राजभाषा कार्यान्वयन	श्री राजपाल सिंह	3 – 4
2.	शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर में "हिन्दी पखवाड़ा" की रिपोर्ट	श्री कैलाश चन्द गुप्ता	5
3.	वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियाँ	श्री शंकर शर्मा	6 – 8
4.	राजभाषा के प्रयोग तथा वार्षिक कार्यक्रम की प्रगति रिपोर्ट		9
5.	वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून में हिन्दी कार्य प्रगति	हिन्दी अनुभाग	10
6.	काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी सस्थान, बैंगलोर में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन पर रिपोर्ट		11
7.	हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला संस्थान का राजभाषा कार्यान्वयन विवरण		12
	वानिकी		
8	पृथ्वी सम्मेलन के बीस वर्षः वैश्विक जलवायु परिवर्तन वार्तायें	श्री विजयराज सिंह रावत	15 – 17
9.	सहजनः महत्त्व एवं पारम्परिक उपयोग	श्री पंकज सिंह, डॉ. संजय सिंह एवं श्री सत्या पी. मिश्र	18 – 20
10.	कृषि वानिकी में बाँस उत्पादन की संभावनायें एवं उपयोग	श्री रामबीर सिंह एवं श्रीमती जयश्री आरडे	21 – 24
11.	अटैवा फैब्रिसिएला स्वेड. *(Atteva fabriciella Swed.)* और एलिग्मा नारसिसस इंडिका *(Eligma narcissus indica)* अडूसा को हानि पहुँचानेवाले कीट तथा उनका नियंत्रण	डॉ. मीता शर्मा, डॉ. एस. आई. अहमद एवं सुश्री नूपुर शर्मा	25 – 26

क्र. सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
12.	सिल्वर बैरीः गांदे (ऐलिगनस अंगस्टीफॉलिया) उत्तर–पश्चिमी हिमालय के शीत मरुस्थलों के लिए एक बहुमूल्य वृक्ष	डॉ. के. एस. कपूर एवं डॉ. आर. एस. रावत	27 – 29
13.	बाँस, हानिकारक कीट एवं नियंत्रण	डॉ. के. पी. सिंह	30 – 32
14.	करंज–एक विलक्षण पेड़	डॉ. के. पी. सिंह	33 – 35
15.	लाख के हानिकारक कीट एवं उनकी रोकथाम	डॉ. अरविन्द कुमार, श्री रामेश्वर दास, श्री एस.एन. वैद्य एव श्री प्रवीन कुमार नाग	36 – 39
16.	जन उपयोगी पलाश	डॉ. ममता पुरोहित	40 – 41
17.	लेन्टानाः हानिकारक खरपतवार	श्री. एस. एल. मीणा एवं डॉ. राजेश कुमार मिश्रा	42 – 43
18.	पारिस्थितिकीय असंतुलन एवं जैवविविधता संरक्षण की चुनौतियाँ	श्री विकास, डॉ. राकेश कुमार एवं डॉ. वाई. सी. त्रिपाठी	44 – 46
19.	कलम विधि द्वारा औषधीय पौधों का प्रवर्धन	श्री रवि शकर प्रसाद एवं डॉ. संजय सिंह	47
20.	कृषि वानिकी की विभिन्न पद्धतियां एवं प्रकार और उनसे लाभ	डॉ. बृज मोहन डिमरी	48 – 49
21.	बाँसः संरचना, जीवन चक्र एवं उपयोगिता	श्री एस. एस. जैन, डॉ. बृजमोहन डिमरी एवं डॉ. सुषमा महाजन	50 – 54

विविधा

22.	वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान में आयोजित किसान मेला	डॉ. एन. कृष्णकुमार एवं श्रीमती पूंगौदै कृष्णन	57 – 58
23.	अतिसार (Diarrhoea) रोग–निदान में औषधीय जड़ी–बूटियों का उपयोग	श्री एस. आर. बालोच	59 – 60
24.	जल ग्रहण क्षेत्र में अभियाँत्रिकी गतिविधियाँ	डॉ. एन. के. बौहरा, डॉ. डी. के. मिश्रा एवं श्री मनीष मेहरा	61 – 62
25.	किसानों के लिए लाभकारी : कम्पोस्ट	डॉ. पी. के. दास	63
26.	लाह के विकास में वन उत्पादकता संस्थान का योगदान	श्री रामेश्वर दास, श्री अरविन्द कुमार एवं श्री एस. एन. वैद्य	64 – 66
27.	मरु–प्रसार के कारण और रोकथाम के उपाय	डॉ. एस. के. शर्मा, डॉ. धर्मेन्द्र वर्मा एवं डॉ. रवीन्द्र कुमार	67 – 71
28.	भारतीय परम्परा में आम्र	श्री जितेन्द्र नाथ मिश्र एवं डॉ. धनन्जय वासुदेव द्विवेदी	72 – 74
29.	प्रदूषण रोकने में वनों की भूमिका	डॉ. ओमकुमार एवं डॉ. अनिल नेगी	75 – 79
30.	जल की एक–एक बूंद जीवन है (जल है तो कल है)	सुश्री रोशनी चौहान	80
31.	प्राकृतिक स्रोतों से स्वास्थ्य एवं पयार्वरण अनुकूल रंग	डॉ. राकेश कुमार एवं डॉ. वाई. सी. त्रिपाठी	81 – 85
32.	अकाष्ठ वन उपज आधारित पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों का विकास की सम्भावनायें	डॉ. अविनाश कुमार शर्मा	86 – 90

क्र. सं.	विषय	लेखक	पृष्ठ
33.	स्फैगनम (मॉस): एक चमत्कारी रोपणी मीडिया	डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, श्री निरेन दास, श्री आलोक यादव एवं श्री पवन कुमार कौशिक	91 – 93
34.	पर्यावरण सुरक्षा एवं वनों के विकास में जनभागीदारी की जरुरत	डॉ. प्रतिमा पटेल	94 – 95
35.	असम में कम लागत वर्मीकंपोस्ट (जैविक खाद) बनाने की विधि	डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, श्री पवन कुमार कौशिक, श्री आलोक यादव एवं श्री नीरेन दास	96 – 97
36.	अनियंत्रित पर्यटनवाद का जलवायु एवं जैविविधता पर प्रभाव	श्री सुरेश चंद्र	98 – 99
37.	वन व्याधि उद्भिजालय	श्रीमती रंजना जुवाठा	100
38.	गुग्गल :कौमीफोरा मुकुल एक "औषधीय पौधा"	श्री महेन्द्र सिंह	101
39.	भारत में पुस्तकालय व सूचना विज्ञान की एक झलक	श्रीमती अनुराधा भाटी	102 – 104
40.	पारिस्थितिकी तंत्र	श्री दिनेश धीमान	105 – 107
41.	धार्मिक एवं अन्य महत्त्व के उपयोगी वृक्ष	डॉ. नवीन कुमार बौहरा, डॉ. डी. के. मिश्रा एव श्री प्रेमसिहं साखंला	108 – 111
42.	आर्गेनिक कार्बन के रुप में मृदा में कार्बन का संचय	डॉ. एम. के. गुप्ता	112
43.	वन उत्पादः गोंद	डॉ. ममता पुरोहित	113 – 116
44.	वनः भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्ब	कुमारी ऋचा त्रिपाठी	117 – 118
45.	पर्यावरण और विकास दोनों जरुरी है	डॉ. देवेन्द्र कुमार	119 – 122

लालित्य

46.	हालात	श्री छत्रपाल सैनी	125
47.	भानुस्तुति	श्री प्रशान्त शर्मा	125
48.	एक पेड़ पुराना था	श्री सर्वेश कुमार सिंह	126
49.	मेरी माँ	कुमारी तनुश्री शर्मा	126
50.	राष्ट्रभाषा का दर्द	श्रीमती सीमा ठाकुर	127
51.	शहीद उत्तराखण्डी	श्री केशव सिंह मन्द्रवाल	127
52.	पेड़ों का महत्त्व	श्रीमती आर.जी.अनिता	128
53.	जिसने बोया बीज उसी ने पाया फल	सुश्री आर. श्री देवी	129
54.	जीवन जीना सीखो	कुमारी साक्षी शर्मा	129
55.	पेड़ और मेरी भावना	सुश्री अनिता पाल	130
56.	रेल यात्रा	श्री लोकेन्द्र सिंह	130
57.	सहायता	कुमारी शालिनी सिंह	131
58.	सच्चा दोस्त पेड़ हमारा	श्री सुरेश रघुनाथ पित्रे	132

राजभाषा

कोई भी देश सच्चे अर्थों में तब तक
स्वतन्त्र नहीं है, जब तक अपनी भाषा नहीं बोलता।

– महात्मा गाँधी

राजभाषा

परिषद् में राजभाषा कार्यान्वयन

श्री राजपाल सिंह
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद् जो वानिकी में एक शीर्ष संस्था है, राजभाषा हिन्दी को प्रगति के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ाने के लिए प्रतिबद्ध है तथा राजभाषा के प्रचार प्रसार के लिए निरन्तर प्रयास करती रही है। अपने प्रयासों को साकार रुप देने के लिए परिषद् हिन्दी समाचार पत्र 'वानिकी समाचार' तथा वार्षिक पत्रिका 'तरुचिंतन' का प्रतिवर्ष प्रकाशन करती है। जिसमे सभी कर्मचारियों तथा उनके परिवारों की प्रतिभाओं का समावेश होता है।

परिषद् के राजभाषा के प्रचार प्रसार के लिए किये जा रहे प्रयासों के अन्तर्गत दिनाँक 14 से 20 सितम्बर 2011 को हिन्दी सप्ताह समारोह मनाया गया। इस दौरान विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें वाद–विवाद प्रतियोगिता का विषय 'पर्यावरण एवं विकास एक दूसरे के पूरक' रहा। इसके अतिरिक्त निबन्ध प्रतियोगिता जिसका विषय 'जलवायु परिवर्तन में वनों की भूमिका' रहा। इसके अतिरिक्त टिप्पणी प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया जिसमे भा. वा.अ.शि.प. के सभी लिपिकीय संवर्ग के कर्मचारियों ने भाग लिया।

सप्ताह भर चले इस आयोजन का समापन स्वरचित काव्य पाठ के साथ सभी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को डॉ. वी. के. बहुगुणा, महानिदेशक, भा. वा.अ.शि.प., देहरादून के करकमलों से पुरस्कार एवं प्रमाण पत्र प्रदान करने के साथ हुआ। इस अवसर पर महानिदेशक महोदय ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि हिन्दी का विकास जारी है तथा यह हम सभी के प्रयासों से यह अवश्य ही प्रगति करेगी। परिषद् तथा भा.वा.अ.शि.प. के संस्थानों में हिन्दी में कार्य करने को सुगम बनाने के लिए एक हिन्दी साफ्टवेयर 'सारांश' का क्रय किया गया था तथा इसको परिषद् तथा इसके संस्थानों के सभी संगणकों में संस्थापित करवाया गया था। परिषद् तथा संस्थानों में इसके कार्यान्वयन को सुगम बनाने के लिए इस पर प्रशिक्षण भी दिया गया। गत वर्ष भी भा. वा.अ.शि.प. में सारांश साफ्टवेयर पर प्रशिक्षण दिया गया था। इसी श्रृंखला में इस वर्ष 24 अगस्त 2011 को भी परिषद् में हिन्दी साफ्टवेयर 'सारांश' के कार्यान्वयन में आ रही कठिनाइयों को दूर करने के लिए एक प्रशिक्षण का आयोजन किया गया जिसमे प्रशिक्षण प्रदान करने हेतु सर्वश्री आर्यन–ई साफ्टवेयर प्राईवेट लिमिटेड नई दिल्ली से दो अभियंता आमंत्रित किये गये और उन्होने इस साफ्टवेयर के बारे में फिर से जानकारी दी तथा प्रशिक्षणार्थियों की समस्याओं का निराकारण भी किया।

हिन्दी सप्ताह समारोह में सम्बोधित करते हुए
डॉ. वी. के. बहुगुणा, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प., देहरादून

श्री सुरेश प्रसाद चौबे, निदेशक, राजभाषा, भारत सरकार
हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला के अवसर पर

श्री शैवाल दासगुप्ता, उपमहानिदेशक (विस्तार)
हिन्दी प्रशिक्षण कार्यशाला के अवसर पर

दिनांक 10 मई 2012 को राजभाषा हिन्दी से सम्बन्धित एक कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमे श्री सुरेश प्रसाद चौबे, निदेशक, राजभाषा तथा श्री भगवान दास पटेरिया, उपाध्यक्ष, केन्द्रीय हिन्दी परिषद्, नई दिल्ली मुख्य वक्ता थे। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. थे। इसमे श्री चौबे तथा श्री पटेरिया जी ने राजभाषा से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर जानकारी दी तथा राजभाषा के कार्यान्वयन में सरकारी कामकाज में आ रही कठिनाइयों को दूर करने के लिए कई उपयोगी सुझाव दिये। इस कार्यशाला में परिषद् मुख्यालय तथा वन अनुसन्धान संस्थान के लगभग 300 अधिकारियों तथा कर्मचारियों ने भाग लिया।

22 मई 2012 को राजभाषा के प्रचार प्रसार को और अधिक जोश तथा रुचि के साथ कर्मचारियों तक फैलाने के लिए एक काव्य गोष्ठी का आयोजन भी लिया गया, जिसमें राष्ट्रीय स्तर के नौ कवियों ने भाग लिया। काव्य गोष्ठी का संचालन डॉ. वीणा पाणी जोशी ने किया। अन्य कवियों ने काव्य के विभिन्न रंगों को बिखरेते हुए समा बांधा तथा इस काव्य गोष्ठी के माध्यम से परिषद् तथा वन अनुसन्धान संस्थान के कर्मचारियों के बीच हिन्दी की मिठास को भरने का सफल प्रयास किया गया।

परिषद्, मुख्यालय एवं देश के विभिन्न प्रांतों में स्थित अपने संस्थानों में हिन्दी में किये गये कार्यों का मूल्यांकन करती है तथा उसी आधार पर संस्थानों से तिमाही आधार पर हिन्दी की प्रगति का संकलन कर मंत्रालय को प्रेषित करती है तथा संस्थानों को हिन्दी में सही प्रकार से कार्य करने के लिए मार्ग दर्शन प्रदान करती है। विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण, कार्यशालाएँ, राजभाषा कार्यान्वयन समिति की नियमित बैठकों का आयोजन, नराकास, देहरादून की बैठकों में भागीदारी तथा समय–समय पर मुख्यालय तथा संस्थानों में उच्च अधिकारियों द्वारा हिन्दी का निरीक्षण किया जाता है। हम सभी के समवेत प्रयासों से कर्मचारियों का राजभाषा हिन्दी के प्रति रुझान बढ़ा है तथा मुझे विश्वास है कि हम अपने प्रयासों को दृढ़ता से आगे बढ़ाते हुए राजभाषा कार्यान्वयन लक्ष्यों को शीघ्र ही प्राप्त कर लेंगे।

हिन्दी काव्य गोष्ठी का शुभारम्भ

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर में आयोजित "हिंदी पखवाड़ा" की रिपोर्ट

श्री कैलाश चंद गुप्ता
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

शुष्क वन अनुसंधान संस्थान (आफरी), जोधपुर में ''हिंदी दिवस'' पर हिंदी पखवाड़ा (14–28 सितम्बर, 2011) की शुरुआत हिंदी में सामान्य हिंदी प्रश्न मंच से हुई। हिंदी दिवस पर संस्थान निदेशक डॉ. टी. एस. राठौड़ ने ''अपील'' जारी कर आग्रह किया कि हमें सरकारी कामकाज में हिंदी को बढ़ावा देकर अपने संवैधानिक दायित्व का निर्वहन करना जरुरी है। हिंदी पखवाड़ा के दौरान विभिन्न हिंदी प्रतियोगिताएँ आयोजित हुई वहीं वैज्ञानिक गोष्ठी भी आयोजित की गई। हिंदी प्रतियोगिताओं के अंतर्गत हिंदी अनुवाद (तकनीकी), हिंदी निबन्ध, हिंदी टंकण (सारांश साफ्टवेयर पर), कामकाजी हिंदी ज्ञान तथा

हिंदी पखवाड़ा समापन समारोह में उपस्थित अधिकारी / कर्मचारीगण

विचार अभिव्यक्ति (सरकारी कामकाज में कार्य कुशलता बढ़ाना) प्रतियोगिताएं आयोजित हुई। दिनांक 27 सितम्बर, 2011 को संस्थान की राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठक का भी आयोजन हुआ।

दिनांक 28 सितम्बर,2011 को हिंदी पखवाड़ा समापन समारोह स्वरचित काव्यपाठ के साथ आयोजित किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. एम.एम.रॉय, निदेशक, काजरी रहे। समारोह में श्री मानाराम बालोच, भा.व.से., श्री आशीष कुमार सिन्हा ने इस अवसर पर सरकारी कामकाज में हिंदी को प्रोत्साहन दिये जाने पर जोर दिया। संस्थान के हिंदी अधिकारी श्री कैलाश चन्द गुप्ता ने इस अवसर

हिंदी पखवाड़ा के समापन समारोह में मंचासीन पदाधिकारीगण

पर संस्थान की वर्ष 2010–11 की राजभाषा प्रगति का प्रतिवेदन पढ़ा तथा राजभाषा के प्रयोग को बढ़ावा देने हेतु उठाये जा रहे कदमों से अवगत कराया। संस्थान निदेशक डॉ. टी. एस. राठौड़ ने राजभाषा के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में प्रयासरत् रहने का आह्वान करते हुए कहा कि हम सभी अच्छी हिंदी जानते हैं तथा हिंदी में काम करना हमारे लिए कठिन नहीं है। मुख्य अतिथि डॉ. एम. एम. रॉय ने अपने सम्बोधन में कहा कि हिंदी में अच्छा काम हो रहा है तथा वैज्ञानिक लेखन मौलिक तौर पर हिंदी में किये जाने की आवश्यकता महसूस हो रही है जो कि जनसाधारण से जुड़ाव के लिए अहम् है।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि ने राजभाषा पुरस्कार तथा हिंदी प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार तथा प्रमाण पत्र प्रदान कर सम्मानित किया।

अन्त में संस्थान के हिंदी अधिकारी ने समारोह में उपस्थित सभी कर्मचारियों का आभार व्यक्त किया।

मुख्य अतिथि को स्मृति चिन्ह भेंट करते हुए संस्थान निदेशक डॉ. टी.एस.राठौड़

वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट की राजभाषा गतिविधियाँ

श्री शंकर शर्मा
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

कार्यशालाएँ

संस्थान के जैवप्रोद्यौगिकी एवं आनुवंशिकी प्रभाग में ''कंप्यूटर पर हिन्दी का प्रयोग'' विषय पर दिनांक 4 मार्च 2011 को एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में प्रभाग के कर्मचारियों और अधिकारियों को यूनिकोड समर्थित फॉन्ट तथा इसकी सुविधाओं के बारे में समझाया गया। कार्यशाला का संचालन श्री शंकर शर्मा, हिन्दी अनुवादक ने किया। देखा गया है कि हिन्दी में काम करने के लिए विभिन्न प्रकार के फॉन्ट का प्रयोग किया जाता है जिससे विभिन्न प्रकार की कठिनाईयाँ सामने आती हैं। एक फॉन्ट में टाइप की गई सामग्री दूसरे फॉन्ट में उपलब्ध नहीं हो पाती। इस समस्या से निजात पाने के लिए अन्य कंप्यूटर में भी उसी प्रकार का फॉन्ट होना जरुरी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के फॉन्ट में प्रेषित ई–मेल फॉन्ट के अभाव में अन्य कंप्यूटरों में वांछित भाषा में नहीं खुलते हैं। इन समस्याओं के लिए एक आसान और सबसे अच्छा तरीका है यूनिकोड समर्थित फॉन्टों का प्रयोग। कंप्यूटरों में यूनिकोड सक्रिय करने से हिन्दी में तैयार/उपलब्ध दस्तावेजों, वैब पृष्ठों, ई–मेल को भेजना तथा प्राप्त करना आदि में फॉन्ट संबंधी समस्याओं से बचा जा सकता है। यह राजभाषा विभाग, गृह मंत्रालय, भारत सरकार के कार्यालय ज्ञापन संख्या 12015/7/2008–रा0भा0 (त0प्र0), दिनांक 16 जनवरी, 2009 द्वारा भी मान्य है।

कार्यशाला के दूसरे सत्र में कर्मचारियों और अधिकारियों को कंप्यूटर की सहायता से यूनिकोड सक्रिय करने का तरीका समझाया गया। किसी अतिरिक्त द्विभाषी कीबोर्ड (अंग्रेजी–हिन्दी) के बिना किस तरह हिन्दी में टाइप किया जा सकता है यह व्यावहारिक रुप में दिखाया गया। इस सत्र में कर्मचारियों और अधिकारियों को हिन्दी में टाइप करने के लिए सामग्री दी गई।

कार्यशाला में उपस्थित प्रतिभागी

कार्यशाला के अंत में प्रतिभागियों ने अपने विचार व्यक्त किए। अनुसंधान अधिकारी डॉ. पापरी शर्मा ने कार्यशाला में प्राप्त जानकारी की सराहना की तथा भविष्य में भी इस तरह की कार्यशाला आयोजन करने के लिए अनुरोध किया। अंत में धन्यवाद ज्ञापन द्वारा कार्यशाला का समापन हुआ।

'सारांश' प्रशिक्षण कार्यशाला: संस्थान में दिनांक 15 जून 2012 एवं दिनांक 16 जून 2012 को 'सारांश' हिन्दी सॉफ्टवेयर पर दो दिवसीय प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया। प्रशिक्षण कार्यशाला में अधिकारियों एवं कर्मचारियों को 'सारांश' सॉफ्टवेयर की उपयोगिता एवं व्यावहारिकता पर प्रस्तुति द्वारा प्रशिक्षण दिया गया। कार्यशाला के प्रथम दिन संस्थान के अधिकारियों एवं वैज्ञानिकों को प्रशिक्षण दिया गया तथा दूसरे दिन अन्य सभी कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया गया। यह प्रशिक्षण कार्यक्रम भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून के पहल में आयोजित किया गया था। कंप्यूटरों में अधिक से अधिक सुगमता से कार्य करने के लिए परिषद् मुख्यालय द्वारा इसके अधीन सभी संस्थानों में इस तरह का प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया गया है। आर्यन ई–सॉफ्ट प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली से उपस्थित श्रीमान कपिल अरोड़ा, प्रशिक्षण प्रधान ने उक्त प्रशिक्षण कार्यशाला का संचालन किया। इस सॉफ्टवेयर में उपलब्ध

व्याख्यान देते हुए डॉ. विजय कुमार वर्मा, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जे. बी. कॉलेज, जोरहाट

'हिन्दी अध्यापक' से इच्छुक कर्मचारी बहुत ही आसानी से हिन्दी पढ़ एवं लिख सकते है। जो हिन्दी के जानकार है वह सारांश की सहायता से अन्य सभी काम कम्प्यूटर में कर सकते है। यह सॉफ्टवेयर यूनिकोड आधारित है, अतः फॉन्ट की समस्या इसमें नहीं है। इसमें टाइप की गई सामग्री दुनिया के किसी भी कंप्यूटर में खुलती है, दिखती है। इससे ई–मेल की सहायता से फाइल का आदान–प्रदान किया जा सकता है। श्रीमान अरोड़ा ने प्रस्तुति उपरान्त कर्मचारियों के प्रश्नों का भी निवारण किया।

संस्थान में दिनांक 12 सितंबर 2011 को एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया जिसमें जगन्नाथ बरुवा महाविद्यालय, जोरहाट के हिन्दी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ. विजय कुमार वर्मा अतिथि वक्ता के रुप में आमंत्रित थें। कार्यशाला में संस्थान के वैज्ञानिक, अधिकारी और शोध कार्य से संबंधित कर्मचारी उपस्थित थे। कार्यशाला में डॉ. वर्मा जी ने उपस्थित कर्मचारियों के समक्ष हिन्दी की सरलता एवं सुबोधता पर एक रुचिकर व्याख्यान दिया।

संस्थान में दिनांक 22 दिसंबर, 2011 के अपराह्न 3 बजे एक हिन्दी कार्यशाला का आयोजन किया गया। कार्यशाला में मुख्य वक्ता के रुप में उत्तर–पूर्व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थान, जोरहाट के हिन्दी अधिकारी श्री अजय कुमार उपस्थित थे। कार्यशाला में संस्थान के वैज्ञानिक, अधिकारी, कर्मचारी, तथा शोध कार्य से जुड़े अन्य व्यक्ति के अतिरिक्त जर्मनी से आये हुए वैज्ञानिक श्रीमान गेडो और उनकी पत्नी श्रीमती गेडो भी उपस्थित थी।

कार्यशाला का उद्घाटन पारंपरिक तरीके से किया गया। श्री आलोक यादव, कार्यकारी हिन्दी अधिकारी ने असमिया ''गामोछा'' से मुख्य वक्ता का स्वागत किया एवं सभा को मुख्य वक्ता से परिचित कराया। इसके उपरान्त श्री अजय कुमार ने पॉवर पॉइन्ट प्रस्तुति द्वारा हिन्दी लिंग संबंधी समस्याओं पर चर्चा की। यह देखा जाता है कि हिन्दीत्तर भाषी के लिए लिंग निर्णय करना बहुत कठिन काम है। हिन्दी में लिंग निर्णय की समस्या के कारण हिन्दीत्तर भाषी लोग हिन्दी में बोलने एवं लिखने में हिचकिचाते है। जिससे उनको लगता है कि वे जो भी बोलेंगे या लिखेंगे वह गलत होगा। श्री कुमार ने इस समस्या को सुलझाते हुए लिंग निर्णय का बहुत ही आसान तरीका उपस्थित सदस्यों के सामने रखा। उन्होंने उपस्थित सदस्यों के प्रश्नों का भी निराकरण किया। प्रस्तुति के बाद संस्थान से हिन्दी शिक्षण योजना के तहत प्रवीण/प्राज्ञ परीक्षा में अच्छे अंकों से उत्तीर्ण कार्मिकों को नक़द पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। कार्मिकों ने पुरस्कार श्रीमान गेडो और उनकी पत्नी श्रीमती गेडो के करकमलों से ग्रहण किया।

हिन्दी सप्ताह एवं हिन्दी दिवस 2011

गत वर्षों की तरह इस वर्ष भी संस्थान में हिन्दी सप्ताह एवं हिन्दी दिवस का आयोजन किया गया। हिन्दी दिवस के अवसर पर आयोजित सभा में संस्थान के निदेशक महोदय श्री एन. के. वासु, समूह समन्वयक (अनुसंधान) श्रीमती एम्तिएन्ला आओ, सभी वैज्ञानिक, कर्मचारी तथा शोध कार्यों से जुड़े व्यक्ति उपस्थित थे। सभा का शुभारम्भ पारंपरिक तरीके से निदेशक महोदय के करकमलों द्वारा द्वीप प्रज्वलित करते हुए किया गया। इसके बाद संस्थान के वैज्ञानिक श्री पवन कुमार कौशिक और डॉ. राजीब

कार्यशाला में उपस्थित प्रतिभागी

बैठक में उपस्थित सभासद

कुमार बोरा ने अपने भाषण में हिन्दी के महत्त्व पर प्रकाश डाला। बैठक में 8 सितंबर से 14 सितंबर तक आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया गया। कार्यकारी हिन्दी अधिकारी

पुरस्कार प्रदान करते हुए श्री एन.के.वासु, निदेशक

श्री आलोक यादव ने सभा को संबोधित करते हुए कहा कि सप्ताह के दौरान संस्थान के कर्मचारियों के लिए श्रुतलेखन, निबंध लेखन, सामान्य ज्ञान आदि प्रतियोगिताएं आयोजित की गई थी। कार्यालय में हिन्दी के प्रति उचित वातावरण एवं जागरुकता लाने के लिए इस तरह की प्रतियोगिताएं बहुत ही लाभदायी होती है। साथ ही स्कूली बच्चों के बीच हिन्दी के प्रति रुचि बढ़ाने के लिए एक आशुभाषण प्रतियोगिता आयोजित की गई। इसमें निकटस्थ स्कूली बच्चों को बुलाया गया था। समापन समारोह में हिन्दी शिक्षण योजना के अन्तर्गत आयोजित परीक्षाओं में उत्तीर्ण कर्मचारियों को प्रमाण पत्र प्रदान किया गया तथा विभिन्न प्रतियोगिताओं में उत्कृष्ट प्रतिभागियों को पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किया गया। माननीय निदेशक महोदय ने अपने भाषण में राजभाषा हिन्दी के प्रति संवैधानिक कर्तव्य के बारे में विस्तृत चर्चा की तथा सभी को हिन्दी में निष्ठा से काम करने के लिए प्रेरित किया।

23 वीं नराकास, जोरहाट की बैठक

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, जोरहाट की 23 वीं बैठक उत्तर–पूर्व विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संस्थान (**NEIST**), जोरहाट के सभागर में दिनांक 7 दिसंबर, 2011 के अपराह्न 3 बजे आयोजित की गई। संस्थान के निदेशक डॉ. पी. जी. राव के अध्यक्षता में आयोजित बैठक में जोरहाट स्थित सभी केन्द्रीय कार्यालय, रक्षा बल के कार्यालय, राष्ट्रीयकृत बैंक आदि के प्रतिनिधि आमंत्रित थें। बैठक में मुख्य अतिथि के रुप में श्री अशोक कुमार मिश्रा, सहायक

बैठक का दृश्य

निदेशक, भारत सरकार, गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग उपस्थित थें। संस्थान से वैज्ञानिक–ई, डॉ. आर. के. बोरा और हिन्दी अनुवादक श्री शंकर शर्मा ने भाग लिया।

बैठक में नराकास सचिव ने "कंप्यूटर/लैपटॉप पर अंतर्निहित (inbuilt) हिन्दी सुविधा को कैसे सक्रिय करें एवं गूगल हिन्दी का प्रयोग" विषय पर एक प्रस्तुति रखी जिसमें उन्होने स्लाइड प्रस्तुति द्वारा सभी को हिन्दी के उपयोग पर जानकारी दी। इसी अवसर पर नराकास की तरफ से सभी सदस्य कार्यालयों को हिन्दी साफ्टवेयर/अध्ययन सामग्री की एक एक सीडी भेंट की गई। प्रस्तुति के उपरान्त सभी सदस्य प्रतिनिधियों ने अपने कार्यालयों में हिन्दी में हो रही प्रगति के बारे में सभा को अवगत कराया।

राजभाषा के प्रयोग तथा वार्षिक कार्यक्रम की प्रगति रिपोर्ट

उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर

संस्थान द्वारा राजभाषा के प्रचार प्रसार के लिए की जा रही गतिविधियाँ एवं वार्षिक कार्यक्रमः–

हिन्दी पखवाड़े का आयोजन : राजभाषा विभाग, भारत सरकार द्वारा जारी दिशा निर्देशों की अनुपालन में उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में दिनांक 05 सितम्बर 2011 से 19 सितम्बर 2011 के दौरान ''हिन्दी पखवाड़ा'' मनाया गया जिसमें हिन्दी को बढ़ावा देने के उद्देश्य से विभिन्न प्रतियोगिताओं

हिन्दी पखवाडा समारोह का आयोजन

का आयोजन किया गया – नामतः हिन्दी प्रश्न मंच प्रतियोगिता, प्रशासनिक हिन्दी भाषा ज्ञान प्रतियोगिता, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली का हिन्दी ज्ञान प्रतियोगिता, हिन्दी टंकण प्रतियोगिता, हिन्दी भाषण प्रतियोगिता, हिन्दी निबन्ध प्रतियोगिता, हिन्दी व्यवहार प्रतियोगिता, हिन्दी में तकनीकी लेखन प्रतियोगिता तथा हिन्दी कविता पाठ प्रतियोगिता।

हिन्दी पखवाड़े का समापन समारोह दिनांक 19 सितम्बर 2011 को आयोजित किया गया जिसमें काव्य पाठ प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था। इस काव्य पाठ में संस्थान के अधिकारियों, कर्मचारियों एवं अनुसंधान अध्येताओं ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

राजभाषा विभाग की हिन्दी में कार्य करने हेतु प्रोत्साहन योजना – संस्थान में राजभाषा विभाग हिन्दी में कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिए नकद पुरुस्कार योजना भी लागू कर रहा है। इस योजना के अन्तर्गत प्रतिवर्ष हिन्दी में किए गए कार्यों के लिए

हिन्दी पखवाडा पुरस्कार वितरण

10 कर्मचारियों को प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय पुरुस्कार एवं 5 सांत्वना पुरुस्कार दिए गए हैं। वर्ष 2010–11 के दौरन हिन्दी में किये गये कार्यों के मूल्यांकन के आधार पर कर्मचारियों को नकद राशि के राजभाषा प्रोत्साहन पुरुस्कार प्रदान किये गये ।

हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन – संस्थान में दिनांक 15 मार्च 2012 को कार्यशाला का आयोजन किया गया था जिसका विषय **''शोध पत्रों में हिन्दी तकनीकी शब्दावली की आनेवाली कठिनाईयाँ एवं उनका समाधान''** था इस कार्यशाला के माध्यम से मुख्य वक्ता ने अपने व्याख्यान में यह भी बताया कि अनुसंधान में आने वाले तकनीकी शब्दों को लिप्यांतर कर हूबहू हिन्दी में लिखा जा सकता है। कार्यशाला में उपस्थित वैज्ञानिकों/तकनीकी कार्यों से जुडे कर्मचारियों द्वारा हिन्दी के प्रयोग में आने वाली समस्याओं से जुडे, पूछे गये प्रश्नों का उत्तर मुख्य वक्ता ने तर्क संगत उत्तर दिये।

उष्ण कटिबन्धीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर में हिन्दी कार्यशाला

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून में हिन्दी कार्य प्रगति

हिन्दी अनुभाग
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

दिनांक 26 अगस्त, 2011 को वन अनुसंधान संस्थान के सूचना एवं प्रौद्योगिकी प्रकोष्ठ में हिंदी सॉफ्टवेयर "सारांश" पर एक दिवसीय प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें आर्यन सॉफ्टवेयर प्रा0 लि0 नई दिल्ली से आमंत्रित श्री गगन शर्मा द्वारा उक्त सॉफ्टवेयर के विषय में विस्तृत जानकारी दी गई। कार्यशाला में विभिन्न प्रभागों/अनुभागों के 26 प्रतिभागियों ने प्रशिक्षण प्राप्त किया।

वन अनुसंधान संस्थान में दिनांक 26 सितम्बर, 2011 से 28 सितम्बर, 2011 तक हिंदी समारोह का आयोजन किया गया। राजभाषा के प्रति जागरुकता बढ़ाने के उद्देश्य से उक्त समारोह में हिंदी टिप्पण एवं प्रारूप लेखन, हिंदी निबंध लेखन, एवं स्वरचित काव्यपाठ प्रतियोगिताएं आयोजित की गईं। मुख्य अतिथि श्री अमित आस्थाना भा0व0से0 द्वारा प्रतियोगिताओं के विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किए गए तथा उन्होंने अपने सम्बोधन में सभी से सरकारी कामकाज में राजभाषा का अधिकाधिक प्रयोग करने की अपील की।

काव्यपाठ प्रतियोगिता का आनन्द लेते हुए
मुख्य अतिथि श्री अमित अस्थाना एवं श्री ए.एस. रावत

29 दिसम्बर 2011 को हिंदी की प्रगति का त्रैमासिक प्रतिवेदन भरने के संबंध में संबंधित कर्मचारियों हेतु प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें प्रतिवेदन भरने में हो रही असुविधाओं का निवारण किया गया।

त्रैमासिक प्रतिवेदन भरने की प्रक्रिया समझाते हुए श्री रमेश सिंह

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर में राजभाषा हिन्दी के कार्यान्वयन पर रिपोर्ट

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर

काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान, बैंगलोर जो अहिन्दी भागी **'ग'** क्षेत्र में स्थित है, में गत वर्ष अपने मुख्यालय भा.वा.अ.शि.प., देहरादून के जरिए प्राप्त राजभाषा विभाग के वार्षिक कार्यक्रम पर पूरी निष्ठा से अमल किया गया।

विगत वर्ष के दौरान संस्थान में आयोजित गणतंत्र एवं स्वतंत्रता दिवस राष्ट्रीय पर्व समारोह के अवसर पर निदेशक द्वारा राष्ट्र ध्वज का ध्वजारोहण करने के बाद समस्त पदाधिकारियों, उनके परिजनों एवं बाल वर्ग द्वारा भाषण, देश भक्ति–गीत तथा सांकृतिक कार्यक्रमों के प्रस्तुतीकरण में पूरे हर्षोल्लास के साथ राजभाषा हिन्दी का प्रयोग किया गया।

विगत वर्ष के दौरान संस्थान में संघ की राजभाषा नीति के अनुसरण में, 14 सितम्बर को हिन्दी दिवस मनाने के साथ–साथ 14 से 28 सितम्बर तक हिन्दी पखवाडा मनाया गया और इस दौरान पदाधिकारियों, शोधछात्रों एवं विविध परियोजनाओं के तहत अस्थायी आधार पर कार्यरत परियोजना सहायकों आदि के लिए हिन्दी की लिखित एवं मौखिक प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं।

सफल प्रतिभागियों को हिन्दी पखवाडा समापन दिवस पर मुख्य अथिति के रूप में सादर आमंत्रित श्री रूपक कुमार दत्ता, भारतीय पुलिस सेवा, अपर पुलिस महानिदेशक (कानून और व्यवस्था), पुलिस मुख्यालय, बैंगलौर के करकमलों से पुरस्कार प्रदान किये गये।

इस अवसर पर मुख्य अतिथि महोदय ने हिन्दी प्रतिभागिताओं के विजेताओं को पुरस्कार प्रदान किये तथा समारोह में उपस्थित पदाधिकारी वर्ग को सरल एवं बोल–चाल की हिन्दी में कार्यालय का काम–काज करने के प्रयास जारी रखने के लिए आग्रह किया।

मुख्य अथिति महोदय ने सभा को हिन्दी में ही संबोधित किया और संस्थान में भारत संघ की राजभाषा नीति के अनुपालनार्थ निदेशक द्वारा किये जा रहे कार्यों की सरहाना की और हिन्दी के बढ़ते वर्तमान को भविष्य में भी बरकरार रखने के लिए उपस्थित पदाधिकारियों को सुझाव दिया।

संस्थान में निदेशक की अध्यक्षता में गठित राजभाषा कार्यान्वयन समिति की तिमाही बैठकें विगत वर्ष में आयोजित की गई। बैठकों में मुख्यालय से राजभाषा हिन्दी के प्रगामी प्रयोग को बढ़ाने की दिशा में जारी किये गये निदेशों पर अमल करने में आ रही समस्याओं का समाधान किया गया।

राजभाषा विभाग से हिन्दी भाषा, हिन्दी टंकण एवं हिन्दी आशुलिपि प्रशिक्षण के लिए तय की गयी समय सीमा के तहत संस्थान में कर्यरत अनुसचिवीय पदाधिकारियों को प्रशिक्षित कराने पर कार्रवाई की गई तथा राजभाषा विभाग द्वारा हिन्दी प्रशिक्षण संबंधी तय कार्यक्रमानुसार 2015 तक हिन्दी टंकण एवं आशुलिपि प्रशिक्षिण पूर्ण करने की दिशा में गत वर्ष से कार्रवाई की गई है।

विगत वर्ष के दौरान, संस्थान में पदस्थ वरिष्ठ अधिकारियों के लिए राजभाषा अभिमुखीकरण तथा अनुसचिवीय पदाधिकारियों के लिए हिन्दी कार्यशालाओं का आयोजन कर उनमे हिन्दी के प्रयोग बढ़ाने की दिशा में महसूस हो रही समस्याओं का समाधान किया गया।

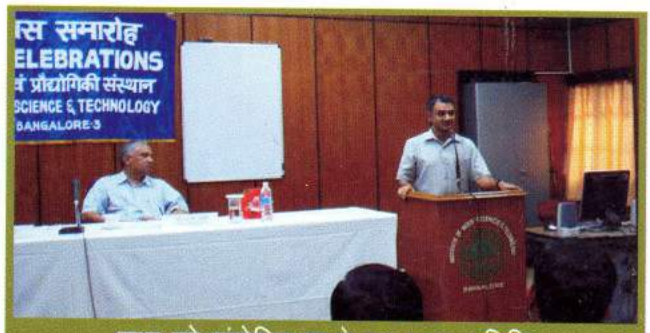

सभा को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि
श्री रूपक कुमार दत्ता, भा.पु.से., अपर पुलिस महानिदेशक
(कानून और व्यवस्था), पुलिस मुख्यालय, बैंगलोर

हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला का राजभाषा कार्यान्वयन विवरण

हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में वर्ष 2011–2012 में भारत सरकार, गृह मंत्रालय द्वारा निर्धारित लक्ष्य को पूरा करने हेतु इस दिशा में अधिक से अधिक कार्य हिन्दी में करने हेतु समय–समय पर परिपत्र जारी किये गये हैं एवं हिन्दी में कार्य करने की आवश्यकता व महत्त्व को बताते हुए हिन्दी में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया गया है।

हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला में दिनांक 14 सितम्बर 2011 को संस्थान के सभागार में 'हिन्दी दिवस' मनाया गया। इस आयोजन में संस्थान के विभिन्न वैज्ञानिकों, अधिकारियों व कर्मचारियों ने भाग लिया। नामित हिन्दी अधिकारी ने उपस्थित समूह समन्वयक (अनुसंधान), वैज्ञानिकों, अधिकारियों एवं कर्मचारियों का स्वागत करते हुए भारत सरकार, गृह मंत्रालय द्वारा समय–समय पर जारी दिशा–निर्देशों के बारे में जानकारी दी।

संस्थान में 12 सितम्बर 2011 से 25 सितम्बर 2011 की अवधि में **'हिन्दी पखवाडा'** मनाया गया। 20 सितम्बर, 2011 को "निबन्ध लेखन" प्रतियोगिता का भी आयोजन किया गया, जिसमें प्रथम स्थान श्री विनोद कुमार, अनुसंधान सहायक, द्वितीय कु0 पूजा, फिल्ड सहायक व तृतीय श्री लाल चन्द, फिल्ड सहायक ने प्राप्त किया। बैठक में उपस्थित सभी अधिकारियों, वैज्ञानिकों एवं कर्मचारियों से सुझाव मांगे गए, तथा वक्ताओं ने विचार व्यक्त किये।

हिन्दी पखवाड़ा

राज्य औषधीय पादप बोर्ड एवं आयुर्वेदिक निदेशालय द्वारा 'औषधीय पौधों का विकास व उत्पादन' पर एक दिवसीय कार्यशाला दिनांक 12 जुलाई 2011 को आयोजित की गई जिसमें शिमला, सोलन, बिलासपुर, किन्नौर व स्पीति मण्डल से आए आयुर्वेदिक चिकित्सा अधिकारियों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में संस्थान के डॉ. संदीप शर्मा, वैज्ञानिक ने शीतोष्ण औषधीय पौधों की पौधशाला में उत्पादकता बढ़ाने की तकनीक पर प्रतिभागियों को अपने विचारों से हिन्दी में अवगत करवाया।

संस्थान द्वारा 5 जून 2011 को **'विश्व पर्यावरण दिवस'** के अवसर पर विद्यार्थियों में वातावरण के प्रति जागरूकता लाने के लिये एक कार्यक्रम का आयोजन हिन्दी में किया गया जिसमें शिमला के विभिन्न विद्यालयों से आये लगभग 110 विद्यार्थियों ने इस कार्यक्रम में बढ़ चढ़ कर हिस्सा लिया। विद्यार्थियों का मनोबल बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन भी किया गया जिसमें विजेताओं को प्रथम, द्वितीय व तृतीय पुरस्कार मुख्य अतिथि द्वारा प्रदान किये गए।

नराकास, शिमला द्वारा हिन्दी को बढ़ावा देने हेतू विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया जिसमें इस संस्थान से श्री आर. के. शर्मा, निजी सहायक निदेशक, श्री दिनेश धीमान, आशुलिपिक एवं श्री जोगिन्दर सिंह, अनुसंधान सहायक–I व श्री ज्वाला प्रसाद, अनुसंधान सहायक–II ने बढ़चढ़ कर भाग लिया व प्रथम / द्वितीय स्थान प्राप्त किए।

हिन्दी में आयोजित कार्यशालाएं / प्रशिक्षण:

आदर्शगांव लाणांबांका में किसानों के साथ कार्यशाला का आयोजन हिन्दी में दिनांक 25 सितम्बर 2011 को किया गया।

औषधीय पौधों की खेती कार्यशाला का आयोजन में दिनांक 28 मार्च 2012 को किया गया।

वार्निकी

वानिकी

पृथ्वी सम्मेलन के बीस वर्ष: वैश्विक जलवायु परिवर्तन वार्तायें

श्री विजयराज सिंह रावत
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

आज से 20 वर्ष पूर्व 3–14 जून 1992 में ब्राजील के रियो डिजिनेरो शहर में पृथ्वी सम्मेलन आयोजित किया गया था। रियो में विश्व के राष्ट्रों ने महत्त्वकांक्षी ऐजेण्डा–21 अंगीकृत किया जिसमें मुख्य रुप में आर्थिक विकास, सामाजिक एकरुपता तथा पर्यावरण से जुड़ें सभी विषयों पर गम्भीरता से विचार हुआ। इसके साथ ही रियो में तीन महत्त्वपूर्ण संधियों (i) संयुक्त राष्ट्र मरुस्थलीकरण रोकने हेतु, (ii) जैवविधिता, तथा (iii) जलवायु परिवर्तन पर सहमति हुई। रियो पृथ्वी सम्मेलन में अपनायी गयी इन तीनों संयुक्त राष्ट्र संधियों में जलवायु परिवर्तन संधि सबसे महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। विश्व समुदाय ने अन्य पर्यावरणीय समस्याओं के साथ–साथ जलवायु परिवर्तन की समस्या को सबसे गम्भीरता से लिया है। संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन संधि (स.रा.ज.प.सं.) जिसे यू.एन.एफ.सी.सी.सी. (UNFCCC) के नाम से जाना जाता है को विश्व के 195 देशों ने हस्ताक्षर करके अनुमोदित किया है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य यह संधि 21 मार्च 1994 से प्रभावी हुई, सं.रा.ज.प.सं. को जिन राष्ट्रों ने हस्ताक्षर कर अनुमोदित किया है वे सभी राष्ट्र इसके पक्षकार (Party) कहलाते हैं, इसके पक्षकारों का पहला सम्मेलन 1995 में बर्लिन में हुआ। तब से अब तक पक्षकारों के 17 सम्मेलन हो चुके हैं। पक्षकारों का सत्रहवां सम्मेलन पिछले वर्ष दिसम्बर 2011 में दक्षिण अफ्रीका के डरबन नामक शहर में सम्पन्न हुआ, जिसमे भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व पर्यावरण एवं वन मंत्री, श्रीमती जयन्ती नटराजन ने किया।

स.रा.ज.प.सं. के पक्षकारों के कुछ महत्त्वपूर्ण सम्मेलनों का विवरण निम्न है:

पक्षकारों का तीसरा सम्मेलन (COP–3): यह सम्मेलन 1997 में जापान के क्योटो नामक शहर में सम्पन्न हुआ जिसमे औद्योगिक राष्ट्र पहली बार वैश्विक गर्मी के लिए उत्तरदायी ग्रीन हाऊस गैस के उत्सर्जन को कम करने को सहमत हुए, क्योटो में पहली बार कार्बन व्यापार की अवधारणा का जन्म हुआ तथा उत्सर्जन कम करने हेतु बाजार आधारित व्यवस्था भी लागू की गई। क्योटो प्रोटोकोल के अंतर्गत विश्व के औद्योगिक राष्ट्र अपने ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को 1990 के स्तर पर 5.2% प्रतिशत कम करने के लिए सहमत हुए तथा यह भी सहमति हुयी कि यह लक्ष्य 2008–12 के बीच में प्राप्त कर लिया जायगा, इस समय के क्योटो प्रोटोकाल को प्रथम प्रतिबद्धता काल भी कहते हैं, क्योटो प्रोटोकाल का प्रथम प्रतिबद्धता काल इस वर्ष दिसम्बर 2012 में समाप्त हो रहा है। क्योटो लक्ष्यों से असहमति जताते हुये अमेरिका क्योटो संधि से बाहर हो गया। यद्यपि वह सं.रा.ज.प.सं. का सदस्य है।

क्योटो प्रोटोकाल वानिकी के लिहाज से भी महत्त्वपूर्ण था। क्योटो में वनों को भी कार्बन व्यापार आधारित बाजार व्यवस्था में सम्मिलित किया गया तथा इसके लिये अलग से नियम बनाने पर सहमति हुई।

मराकेश समझौते (2001): पक्षकारों का सातवाँ सम्मेलन 2001 में साइप्रस के मराकेश नामक शहर में हुआ। इसमे कार्बन व्यापार से सम्बंधित नियमावली को अंतिम रुप दिया गया। भारत ने पक्षकारों का आंठवा सम्मेलन 2002 में नयी दिल्ली में आयोजित कियागया। पक्षकारों का नवां सम्मेलन इटली के मिलान शहर में हुआ। इस सम्मेलन में वनों पर आधारित जलवायु परिवर्तन न्यूनीकरण की क्रिया विधियों को अन्तिम रुप दिया गया।

पक्षकारों का ग्यारहवां सम्मेलन कनाडा के मौन्ट्रियल शहर में 2005 में हुआ। सम्मेलन में प्रोटोकाल के दूसरे प्रतिबद्धता काल हेतु वार्ता प्रारम्भ हुयी तथा "क्योटो प्रोटोकाल पर तदर्थ कार्यदल" की स्थापना की गयी, चूंकि क्योटो प्रोटोकाल का प्रथम

प्रतिबद्धता काल 2012 में समाप्त होना है अतः प्रोटोकाल में यह व्यवस्था की गयी कि सभी पक्ष प्रतिबद्धता काल से सात वर्ष पूर्व दूसरे प्रतिबद्धता काल के लिये वार्ता प्रारम्भ करेंगे।

वानिकी के लिहाज से भी मांट्रियल महत्त्वपूर्ण था। यहाँ पहली बार प्राकृतिक वनों को भी जलवायु परिवर्तन वार्ताओं में शामिल किया तथा रेड्ड (रिड्यूसिग इमिसन्स फ्राम डी फोरेस्टेसन एण्ड डिग्रेडेशन) को विचारणीय विषय के रुप में शामिल किया।

बाली सम्मेलन 2007: पक्षकारों का तेरहवां सम्मेलन इंडोनेशिया के शहर बाली में हुआ। बाली में अतिमहत्त्वकांक्षी बाली कार्ययोजना पारित हुई तथा सं.रा.ज.प.सं. को प्रभावी रुप से लागू करने हेतु एक अन्य कार्यदल "दीर्घकालिक सहयोग पर तदर्थ कार्यदल" स्थापित हुआ। वानिकी के लिहाज से बाली सम्मेलन महत्त्वपूर्ण था कि यहां रेड्ड को रेड्ड प्लस भारतीय पहल पर नाम दिया गया। 'प्लस' का अर्थ है कि जलवायु परिवर्तन कार्यक्रमों में वन संरक्षण, सतत् वन प्रबध, वन कार्बन भडारों का संरक्षण को भी शामिल करना, बाली सम्मेलन के उपरान्त "रेड्ड", "रेड्ड प्लस" के नाम से जाना जाने लगा।

''कोपनहेगन सम्मेलन'' 2009: पक्षकारों का पंद्रहवां सम्मेलन डेनमार्क की राजधानी कोपेनहेगन में दिसम्बर 2009 में सम्पन्न हुआ। इसमे भारत के प्रधान मंत्री ने भारतीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व किया। इस सम्मेलन के महत्त्व का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि न्यूयार्क से बाहर संयुक्त राष्ट्र संघ का यह पहला सम्मेलन था जिसमे विश्व के 130 देशों की सरकारों के मुखिया या राष्ट्राध्यक्षों ने भाग लिया। कोपनहेगन समझौते में महत्त्वपूर्ण रुप से "हरित जलवायु निधि" (ग्रीन क्लाइमेट फंड) की घोषणा की गयी तथा स्वच्छ तकनीक के हस्तान्तरण पर भी सहमति बनी। वानिकी के संदर्भ में कोपनहेगन घोषणा पत्र में "रेड्ड प्लस" कार्यक्रमों को अविलम्ब लागू करने की भी बात कही गयी। कोपनहेगन में विश्व के कई विकसित राष्ट्रों ने अपने ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सजन में कटौती करने हेतु महत्त्वाकांक्षी लक्ष्य भी घोषित किये (विस्तृत जानकारी के लिये देखें तरुचिंतन 2010)।

कानकुन समझौता: पक्षकारों का सोलहवां सम्मेलन मैक्सिकों के कानकुन नामक शहर में 2010 में हुआ। कानकुन में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन संधि को दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में प्रभावी रुप से लागू करने हेतु "कानकुन समझौता" हस्ताक्षरित हुआ। कानकुन में पहली बार रेड्ड प्लस कार्यक्रमों के क्रियान्वयन हेतु भी महत्त्वपूर्ण समझौता हुआ (देखें तरुचिंतन 2011)।

डरबन सम्मेलन: पक्षकारों का सत्रहवां सम्मेलन दिसम्बर 2011 में दक्षिण अफ्रीका के डरबन शहर में हुआ, यद्पि इसके परिणामों पर अभी भी वाद विवाद चल रहा है किन्तु डरबन सम्मेलन कई मामलों में जलवायु परिवर्तन वार्ताओं की दिशा बदलने में महत्त्वपूर्ण हो सकता है। डरबन में विश्व समुदाय ने कई महत्त्वपूर्ण फैसलों को एक "पैकेज" के रुप में स्वीकार किया, जिसमें सबसे महत्त्वपूर्ण था क्योटो प्रोटोकाल के दूसरे प्रतिबद्धता काल पर सहमति, चूंकि क्योटो प्रोटोकाल के अंतर्गत केवल विकसित राष्ट्र ही ग्रीन हाऊस गैसों की कटौती के लिये बाध्य हैं तथा यह बाध्यता भारत, चीन जैसे विकासशील राष्ट्रों पर लागू नहीं होती। विकसित देशों का मत था कि क्योटो को समाप्त कर 2012 के बाद एक नया समझौता लाया जाय जिसके अन्तर्गत भारत, चीन जैसे विकासशील देशों पर भी बाध्यकारी कटौती लागू हो। अतंतः यह तय हुआ कि 2012 के बाद क्योटो–2 (क्योटो प्रोटोकाल का दूसरा प्रतिबद्धता काल) ही लागू होगा। हां इसकी अवधि 2017 (पाँच वर्ष) या 2020 (आठ वर्ष) की होगी, यह इस वर्ष दिसम्बर में पक्षकारों के अठारहवें सम्मेलन में दोहा (कतार) में निर्धारित होगी, क्योटो–2 की समाप्ति के बाद आकलन होगा कि किन किन राष्ट्रों को और कटौती करनी है। जलवायु परिवर्तन पर एक दीर्घकालिक "डरबन मंच" की स्थापना की गयी जिसमे यह तय किया गया कि विश्व के सभी राष्ट्र वैश्विक तापमान में वृद्धि को 2^{0} से. तक रोकने का सामुहिक प्रयास करें। नियत समय से लगभग 36 घंटे अधिक चली इस वार्ता तथा डरबन समझौते के कुछ महत्त्वपूर्ण अंश निम्न हैं।

- **डरबन मंच की स्थापना :** एक नया प्रोटोकाल जिसे 2020 तक स्वीकार कर लिया जायगा, यद्यपि कई विश्लेषकों ने इस फैसले की व्याख्या

करते हुये कहा है कि इस फैसले से विश्व के सभी प्रमुख ग्रीन हाऊस गैस उत्सर्जक राष्ट्र (विकसित तथा विकासशील) 2020 से अपने उत्सर्जन में कमी करना प्रारम्भ करेंगे, लेकिन कुछ का तर्क है कि इस समझौते की भाषा इतनी लचर है कि अन्य परिदृश्य भी सम्भव हैं। डरबन समझौते के तुरन्त बाद जहां विश्व के सभी समाचारों में यह प्रसारित किया गया कि अमेरिका, चीन तथा भारत ने 2020 के बाद उत्सर्जन कटौती स्वीकार कर ली है वहीं भारत का मत है कि यह अभी कोई बाध्यकारी समझौता नहीं है। यह आगे का विषय होगा कि "डरबन मंच" एक नये प्रोटोकाल के रुप में क्या स्वरुप लेता है।

- **2013 से क्योटो के दूसरे प्रतिबद्धता काल की स्वीकृति:** जहां विकसित राष्ट्रों का दबाव था कि 2012 के बाद चीन तथा भारत ग्रीन हाऊस गैस के उत्सर्जन में कटौती को बाध्य हों इसके विपरीत डरबन में यह महत्त्वपूर्ण फैसला हुआ कि क्योटो का दूसरा प्रतिबद्धता काल केवल विकसित राष्ट्रों पर ही लागू होगा तथा यह 2013 से अमल में आयेगा।

  इस प्रतिबद्धता काल की अवधि क्या होगी इस पर अभी मतभेद है। भारत तथा चीन जैसे विकासशील राष्ट्र चाहते है कि यह अवधि 8 वर्ष की हो (2013 से 2020) जबकि विकसित राष्ट्र पांच वर्ष की अवधि (2013–2017) चाहते है। क्योटो–क्योटो का प्रतिबद्धता काल पांच वर्ष या आठ वर्ष का हो यह तो इस वर्ष दोहा में तय होगा परन्तु इससे अंतर्राष्ट्रीय कार्बन बाजार की अनिश्चितता समाप्त होगी तथा भारत में चल रही स्वच्छ विकास परियोजनाओं को बढ़ावा मिलेगा।
- **कोपनहेगन तथा कानकुन समझौतों को आगे बढाना:** सरकारों ने यह भी फैसला लिया कि विकासशील देशों की सहायता हेतु कोपन हेगन तथा कानकुन में लिये गये निर्णयों को प्रभावी तरीके से लागू किया जाय। कोपनहेगन में घोषित "हरित जलवायु निधि" की तुरन्त स्थापना की जाये जिससे विकासशील राष्ट्र स्वच्छ एवं निम्न उत्सर्जक तकनीकों को अपना सकें।
- वानिकी में जहां रेड्ड प्लस परियोजनओं के संचालन के लिए दिशा निर्देश तय किये गये। वहीं साथ ही में रेड्ड प्लस परियोजनाओं के संचालन के दौरान जैवविविधता की सुरक्षा तथा स्थानीय समुदायों के हितों की रक्षा पर भी निर्णय हुये।

इसमे कोई शक नहीं कि डरबन वार्ताओं के दौरान सभी पक्ष यह स्वीकार कर रहे थे कि वर्तमान ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन को कम करने हेतु महत्त्वकांक्षी लक्ष्यों की आवश्यकता है ताकि पृथ्वी के तापमान की वृद्धि को 2° से. तक रोका जा सके। कई लघु तटीय देशों का आग्रह था कि उन्हें डूबने से बचाने के लिये पृथ्वी के तापमान में वृद्धि को 1.5° से. तक रोकना होगा। इस लक्ष्य को प्राप्त करने लिये तो विकसित राष्ट्रों को अपने उत्सर्जन में 40–50% तक की कटौती करनी होगी।

जहाँ भारत चीन, दक्षिण अफ्रीका, ब्राजील आदि प्रमुख विकासशील राष्ट्र दबे स्वर में उत्सर्जन कम करने के महत्त्व की बात को स्वीकारते तो हैं, परन्तु उनका तर्क है कि यह उत्सर्जन "प्रतिव्यक्ति उर्त्सजन" के आधार पर हो तथा संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन संधि की मूल भावना "सर्वनिष्ठ किन्तु विभेदित उत्तरदायित्व" (Common but differentiated responsibility) पर आधारित हो इसका अर्थ यह है कि जो राष्ट्र पृथ्वी के तापमान में वृद्धि के लिऐ ऐतिहासिक रुप से अधिक उत्तरदायी है वे अधिक कटौती करें। भारत तथा चीन जैसे विकासशील राष्ट्र यद्पि आज विकास के मार्ग पर होने से अधिक ग्रीन हाऊस गैसे उत्सर्जित कर रहे है, किन्तु ग्रीन हाऊस गैसे उत्सर्जन में उनका ऐतिहासिक योगदान बहुत कम है। यदि भविष्य में 2020 के बाद कोई उत्सर्जन कटौती को बाध्यकारी नीति लागू होती है तो वह "सर्वनिष्ठ किन्तु विभेदित उत्तरदायित्व" के सिद्धान्त पर लागू होनी चाहिए।

रियो + 20 सम्मेलन

इस वर्ष जून में पृथ्वी सम्मेलन के 20 वर्ष पूरे होने पर ब्राजील के रियो शहर में विश्व समुदाय ने एक बार पुनः आकलन किया कि 1992 के पृथ्वी समझौते के बाद लिये गये निर्णय कितने कारगर सिद्ध हुये। हमने क्या खोया क्या पाया तथा भविष्य में और क्या करने की आवश्यकता है ताकि पृथ्वी पर प्रत्येक जीवधारी सुरक्षित रह सके।

...शेष पृष्ठ 20 पर

सहजनः महत्त्व एवं पारम्परिक उपयोग

श्री पंकज सिंह, डॉ. संजय सिंह एवं श्री सत्या पी. मिश्र
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

प्रस्तावना

मोरिंगा ओलिफेरा प्रायः सहजन के नाम से जाना जाता है। पूरे विश्व में व्यापक रुप से पाया जाने वाले मोरिंगेसी कुल का पौधा है। यह प्राकृतिक रूप से भारत एवं दक्षिण अफ्रीका के लाल सागर में पाया जाता है। आमतौर पर इस पौधे का विस्तार समुद्र तल से 1000 मीटर ऊँचाई तक देखने को मिलता है साथ इसका कुछ विस्तार हिमाच्छादित क्षेत्रों में भी देखने को मिलता है। मुख्यतः यह पौधा वहाँ उगता है जहाँ पर कम से कम 400सी.सी. वार्षिक वर्षा होती है। अनेकों गुणकारी महत्त्व होने के कारण सहजन का पौधा मानव जाति के बीच अत्यंत लोकप्रिय है। सहजन को पानी और मृदा पोषक तत्वों की कमी वाले स्थानों में भी आसानी से उगाया जा सकता है। पूरे भारत में पाये जाने के कारण इसकों भिन्न भिन्न जगहों पर अलग नामों से जाना जाता है, यहाँ पर कुछ पारंपरिक नाम दिये जा रहे।

अंग्रेजी	: रैडिश वृक्ष, ड्रमस्टिक वृक्ष, हॉर्सरैडिश वृक्ष
हिन्दी	: सहजन, मुनगा, सेगरा
बांग्ला	: सजना, सोजना, सुजाना,
गुजराती	: सुरगावों, सरगवों, मिधो–सरगवों
उड़िया	: संजना, सैजना, मुनिघा
उर्दु	: मोरुंगा, मुरुंगाई
मराठी	: सुनदान
मध्य प्रदेश	: मूलका, सैहन

आदिकाल से ही सहजन के प्रत्येक भाग का उपयोग खाने एवं औषधि के रूप में मनुष्यों द्वारा होता आ रहा है क्योंकि सहजन में महत्त्वपूर्ण विटामिन, मिनरल्स आदि पाये जाते है जोकि मानव शरीर के विकास के लिए आवश्यक होते है। इसके प्रत्येक भाग से टोकोफेरोल, फेनोलिक कम्पाउण्ड, बीटा केरोटीन, विटामिन–सी और प्रोटीन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध रहता है इसके साथ ही इनमें आवश्यक सल्फर अमीनो एसिड, सिस्टीन और मेथिओनिन भी उपस्थित होता है। वैज्ञानिक तथ्यों में बताया गया है कि सहजन के फलों का हाइड्रो अल्कोहलिक निष्कर्ष लेने पर जीनोबायोटिक जैसे कार्सिनोजेनिक पदार्थ और विषैले पादप पदार्थों का क्षरण होता है। एपिडिओमिओलोजिक अध्ययन के अनुसार जो लोग सहजन के फल का ज्यादा सेवने करते है उन्हें कैंसर जैसे रोगों की चपेट में आने का खतरा कम रहता है। सहजन के बीजों में प्रोटीन और वसा की मात्रा अन्य दलहनी फसलों जैसे दालें और सोयाबीन की तुलना

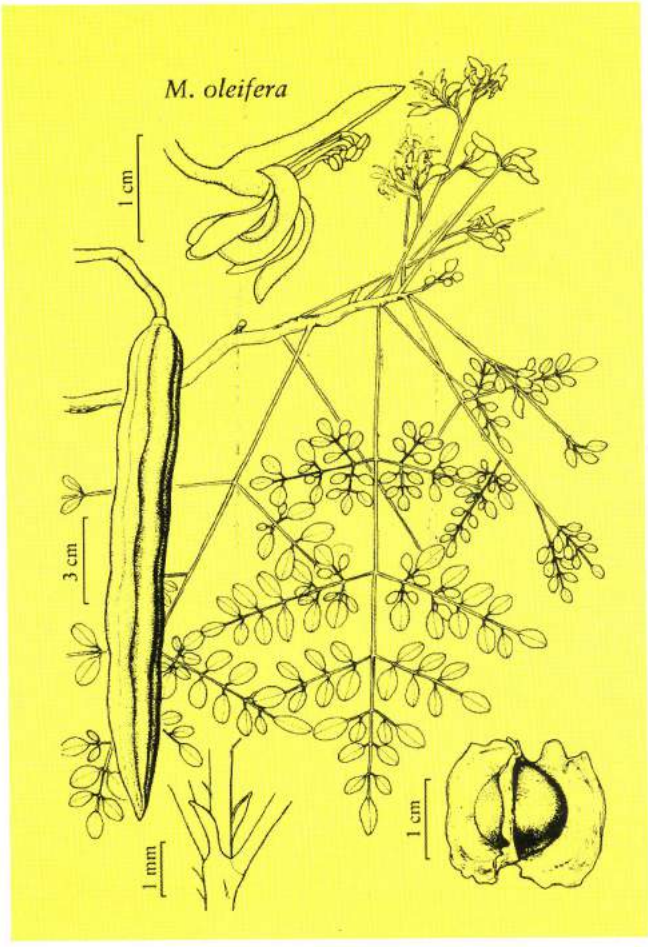

में ज्यादा होती है। सहजन करनेल में 30–40 प्रतिशत तेल उपलब्ध रहता है जिसका उपयोग खाने के तेल और लुब्रिकेंट के रुप में किया जाता है। इसके अतिरिक्त सहजन के बीजों का इस्तेमाल पानी के शुद्धिकरण में भी किया जा रहा है।

सहजन के लगभग सभी भागो; जड़, छाल, गम, पत्ती, फल, फूल, बीज और बीजों से प्राप्त तेलों का उपयोग साउथ एशिया में रोगों के उपचार हेतु घरेलू दवा के रुप में किया जाता है जिसमें जलन, संक्रमण, कार्डिओवस्कूलर, गस्त्रोइंटेस्टीनल, हिमटोलोजिकल, हिमोटोरिनल व्याधियाँ प्रमुख है (वैल्थ ऑफ इंडिया, 1962)। भारत में सहजन पत्तियों का उपयोग हायपोकोलेस्टेरोमिक एजेंट के रूप में और थायराइड हार्मोन के स्राव को नियंत्रित करने में भी किया जा रहा है। एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सहजन की पत्तियों में वृद्धि कारक हार्मोन साइटोक्यनिन पाया जाता है जिसका इस्तेमाल पौधो की वृद्धि बढ़ाकर उनसे अच्छी पैदावार प्राप्त करने में किया जा रहा है।

सहजन का पारंपरिक उपयोग

वन और उसके आसपास के क्षेत्रों में उगने वाले इस पौधे का उपयोग मुख्यतः ग्रामीण और आदिवासी लोगों के द्वारा बहुतायत से होता है क्योंकि वे इसके पोषक और औषधि गुणों से भलीभाँति परिचित होते हैं। हमने अपने तीन साल के अध्ययन में पाया कि उत्तर भारत के गाँवों में निवास करने वाले आदिवासी लोग सहजन की पत्तियों को खाने में इस्तेमाल करते है। इसका इसी बात से अंदाजा लगाया जा सकता है कि सहजन का पौधा गाँवों और उसके पास के क्षेत्रों में आसानी से उपलब्ध रहता है। समान्यतः इसका उपयोग इसकी डाल को काटकर आसानी से किया जा सकता है और इसका रखरखाव भी सरल है।

पारंपरिक औषधीय उपयोग

चिरकाल से ही सहजन के सभी भागों का उपयोग औषधि के रूप में होता आ रहा है जिसका वर्णन आयुर्वेद, सिद्धा, यूनानी और भारतीय औषधि व्यवस्था में भी मौजूद है। आयुर्वेदाचार्य सहजन की पत्तियों के औषधि उपयोगों पर पारंपरिक ज्ञान को संचय करने की आवश्यकता है। उत्तर एवं मध्य भारत में निवास करने वाले आदिवासी लोग सहजन की पत्तियों का प्रयोग सर्परोधी और बिच्छू दंश के उपचार में करते है। अतः इस उद्देश्य हेतु सहजन पौधे का संरक्षण इन आदिवासी लोगों के द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त पारंपरिक घरेलू उपचार में सहजन पत्तियों का लेप पेट पर लगाकर अंतः कृमियों को बाहर निकालने में भी होता है। सहजन की पत्तियों से तैयार रस का उपयोग अस्थमा, ब्रोनकाइटिस और टीबी के प्राकृतिक रोकथाम में भी किया जाता है। एक अध्ययन के अनुसार राजस्थान और उत्तर पूर्वी भारत सहजन की पत्तियों का उपयोग कट जाने, घाव भरने, साँप कुत्ते के काटने से होने वाले घांवों को भरने में किया जाता है। गोंड, पवारा, भील और पारधी आदिवासियों द्वारा सहजन पत्तियों के अर्क का प्रयोग कंजक्टिवाइटिस होने पर आँखों को धोने में किया जाता है। छत्तीसगढ़ के आदिवासी जैसे ऑरोन, बिरहोर, अगारिया, कोरवा, बैगा, नागेसिया गोंडिया आदि द्वारा सहजन की पत्तियों का उपयोग घरेलू और पारंपरिक उपचार हेतु किया जा रहा है। छोटानागपुर (झारखंड) में निवास करने वाले आदिवासी लोग सहजन की पत्तियों का उपयोग उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करने में भी करते हैं।

सहजन की पत्तियाँ और आदिवासी पाक कला

हमने अपने अध्ययन में छोटानागपुर और पूर्वी भारत के दूसरे भागों में निवास करने वाले आदिवासियों के भोजन के बारे में जानकारी को एकत्रित किया और पाया कि झारखण्ड में सहजन तीयन (सहजन के पत्ते की करी) जिसकों घरेलू भाषा में जोकी या सोठी कहते है यहाँ का प्रमुख भोजन है। सहजन पत्तियों का प्याज और लाल मिर्च के साथ सरसों के तेल में बना साग अत्यंत स्वादिष्ठ होता है। ताजी पत्तियों को दाल के साथ मिलाकर खाने में स्वाद तो आता ही है, साथ ही साथ शरीर को प्रचुर मात्रा में प्रोटीन, मिनेरल्स, शर्करा और विटामिन भी मिलता है।

छोटानागपुर के आदिवासी लोगों में सहजन की पत्तियों को चावल के माड़ में मिलाकर पीने का प्रचलन है। इस पाक शैली में लाल मिर्च, राई, पिसी हुई अदरक उबलने तक छोड़ देते है। यह भोज्य विधि पूरी तरह से पोषक तत्वों से भरपूर होने के कारण आदिवासियों के पाकशाला में आसानी से देखने को मिलता है। सहजन थोरन (तली हुई पत्तियाँ) को दक्षिण भारत में विभिन्न मसालों के साथ मिलाकर तैयार किया जाता है। समान्यतः सहजन

की सूखी पत्तियों पूरे साल घरेलू बाजार में उपलब्ध रहती है।

सहजन की क्लोनिंग विधि

आदिकाल से ही पूर्वी भारत में निवास करने वाले ग्रामीण और आदिवासी लोग सहजन पौधे की क्लोनिंग कायिक प्रवर्धन से करते आ रहें हैं। लोग कायिक प्रवर्धन द्वारा उत्पन्न पौधे को ज्यादा महत्त्व देते हैं बजाय बीज द्वारा उत्पन्न पौधे को, इसका प्रमुख कारण यह है कि बीज से प्राप्त पौधे की वृद्धि धीमी होती है और फल भी कम मिलते हैं। इस विषय पर वैज्ञानिकों में भी एकमत हैं। मुख्यतः सहजन के पौधे से फल निकलने के बाद इसकी काँट–छाँट करके 1 मीटर तक की डाल को कायिक प्रवर्धन के लिए इस्तेमाल में आते हैं। कभी–कभी डालों को लगाने से पहले छाया या नमी वाली जगहों पर रखा जाता है। डाल को लगाने के बाद इसके ऊपरी भाग को गोबर से ढक देते हैं। कुछ दिनों के बाद इसमे से जड़े निकल आती है और यह एक सम्पूर्ण वृक्ष में परिवर्तित हो जाता है।

सहजन वृक्ष की वार्षिक काँट–छाँट और प्रबन्धन

वृक्ष की काँट–छाँट के द्वारा शिखर भाग की वृद्धि को कम करके पार्श्व वृद्धि को बढ़या जाता है जोकि वृक्ष की जुवानिलिटी को बनाए रखते हुए जड़ को निकलने में मदद करता है। इसी कारण से क्लोनल मल्टीप्लीकेशन गार्डेन बनाया जाता है। इस बात पर गौर किया जा सकता है कि पूर्वी भारत में बिना काँट–छाँट का सहजन का पौधा मिलना मुश्किल है। ऐसा इसलिए है कि ग्रामीण लोग इस वृक्ष के बार में जानकारी रखते हैं। झारखंड और बिहार में हमारा अनुभव है कि ग्रामीण लोग सहजन पौधे की काँट–छाँट अप्रैल माह के दूसरे सप्ताह में करते हैं जिससे कि इसमें लगने वाले हानिकारक केटेरपिलर प्युपा में बदल जाता है लेकिन इस दौरान यह अपने रोमों को बढ़ता है जोकि हवा में उड़ने पर मानव शरीर में खुजलाहट पैदा करते हैं। यदि इस कीट का नियंत्रण कर लिया जाए तो सहजन की वार्षिक काँट–छाँट एक पारंपरिक कीट प्रबन्धन है।

...पृष्ठ 17 का शेष

13 से 22 जून 2012 तक चले इस दस दिवसीय सम्मेलन में विश्व के 191 देशों की सरकारों के प्रतिनिधि जिसमे 79 राष्ट्राध्यक्ष तथा सरकारों के मुखियां शामिल थे व गैर सरकारी संगठनों के प्रतिनिधियों सहित 44,000 लोगों ने सहभागिता की। सम्मेलन के अध्यक्ष ब्राजील के राष्ट्रपति डिल्मा रोजेफ ने कहा कि रियो+ 20 विश्व इतिहास में सबसे बड़ा सहभागी सम्मेलन था।

सम्मेलन को सम्बोधित करते हुए भारतीय प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह ने कहा कि भारत ने पिछले दो दशकों में अपने प्रयासों से 1994–2007 के बीच उत्सर्जन तीव्रता में प्रति इकाई सकल घरेलू उत्पाद सघनता में 25 प्रतिशत की कमी की है (कृषि को छोड़ कर) तथा भविष्य में भी इसी तरह 2005 तथा 2020 के बीच 20–25 प्रतिशत तक कमी करने का लक्ष्य है। प्रधानमंत्री जी ने कहा कि कई देश कुछ अधिक कर सकते हैं यदि उन्हे धन तथा तकनीक उपलब्ध कराई जाये, पर इस प्रकार की सहायता के बहुत कम प्रमाण हैं। वैश्विक वित्तीय संकट से स्थिति और खराब हुई है। सम्मेलन का मुख्य केन्द्र बिन्दु हरित अर्थव्यवस्था की अवधारणा पर गरीबी उन्मूलन, समानता तथा टिकाऊ विकास पर रहा। सम्मेलन के अंत में पारित प्रस्ताव "भविष्य जो हमें चाहिऐ" (The Future we want), वैश्विक टिकाऊ विकास हेतु एक साझा पृष्टभूमि की स्वीकरोक्ति है। जहां विश्व के राष्ट्रों ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया वहीं गैर सरकारी संगठनों ने इसकी पुरजोर भर्त्सना की। प्रमुख गैर सरकारी सगठनों के अनुसार यह एक अन्य असफल प्रयास रहा जिसमे विश्व की सरकारें मानवता पर आस्था को पुनः प्राप्ति हेतु प्रेरित करने के बजाय अपने निहित स्वार्थों को बचाने में लगी रही।

रियो + 20 सम्मेलन से विश्व को बड़ी आशायें थी लेकिन यह विश्व में टिकाऊ विकास का मार्ग प्रशस्त करने हेतु कोई ठोस निर्णायक कदम नहीं उठा सका। टिकाऊ विकास हेतु विश्व की सरकारों, बहुराष्ट्रीय विकास बैंकों, औधोगिक घरानों ने 50, हजार करोड़ अमेरिकी डॉलर से अधिक सहायता की प्रतिज्ञा तो की लेकिन एक ठोस बाध्यकारी समझौते के अभाव में यह कितना कारगर सिद्ध होगा यह आने वाला समय ही बतायेगा।

लेखक ने संयुक्त राष्ट्र के डरबन जलवायु परिवर्तन सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के सदस्य के रूप में सहभागिता की।

कृषि वानिकी में बाँस उत्पादन की संभावनायें एवं उपयोग

श्री रामबीर सिंह एवं श्रीमती जयश्री आरडे
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वितरण :

बाँस मुख्यतः सभी जगह पाया जाता हैं। एशिया के ट्रापीकल, सब ट्रापीकल एव टेम्परेट रीजन में तथा अफ्रीका एवं दक्षिणी अमेरिका में पाया जाता हैं। विश्व में लगभग कुल 140 लाख हेक्टेयर क्षेत्र में बाँस लगा हुआ हैं।

बाँस :

1. बाँस एक घास कुल का पौधा है। इसका तना लकडी नुमा तथा शाखाऐं लचीली होती हैं। अतः इसमें फूलों का आना अनियंत्रित होता हैं।
2. बाँस अत्यधिक महत्वपूर्ण पौधा है। हल्का वजन, लचीला और सीधा प्रयोग में आने वाला होता है।
3. बाँस भारत में गरीबों की लकड़ी है तथा चीन में लोगो का दोस्त व वियतनाम में भाई की तरह है। अफ्रिका, एशिया, दक्षिणी अमेरिका में लाखों लोगों की जीविका बाँस पर निर्भर है।
4. बाँस की अधिकतर मांग पल्प तथा पेपर, मकान बनाने एवं हैन्डिक्राफ्ट उद्योगों में तथा ज्यादातर ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक है। बाँस की विविधताएँ निम्न प्रकार है।

विविधता :

क). बाँस की टेक्सोनामी बहुत की साधारण है। इसकी सामान्यतः 60 – 90 जेनेरा के साथ–साथ 1100 – 1500 प्रजातियाँ पूरे विश्व में पायी जाती हैं।

ख). 136 – 145 प्रजाति भारत में हैं। जिनमें से 50 प्रतिशत दक्षिण – पूर्वी जोन में हैं।

ग). देश के 12.8 प्रतिशत वन क्षेत्रों में लगभग 100 लाख हेक्टेयर (9.57 मिलियन हैक्टियर) में बाँस उगा हुआ है।

घ). सघन बाँस अधिकतर पश्चिमी घाट एवं उत्तर – पूर्वी भारत में हैं।

ड़). बाँस के लिए नम उष्णकटिबंधीय जलवायु एवं बलुई दोमट मिट्टी उपयुक्त होती है।

बाँस ही क्यों :

- यह जल्दी बढ़ने वाला पौधा हैं। एक दिन में लगभग 15–20 से. मी. तक तथा 4–5 माह में 4 मीटर तक बढ़ सकता है।
- कम अवधि का पौधा है। (3–5 वर्ष में ही आय मिल जाती है)
- लकडी की तुलना (2–3 प्रतिशत) में बढ़ोत्तरी 30 प्रतिशत तक एक साल में उत्पादन लगभग 40–100 टन प्रति हेक्टेयर होता है।
- वातावरण के अनुकूल होता है।
- ऑक्सीजन अधिक देता है तथा कार्बनडाईक्साईड को अधिक ग्रहण करता है।

जीविका का साधन :

- करोडों लोग बाँस के घरों में रह रहे हैं।
- विकसित देश में करोडों लोगों को रोजगार, खाना व घर देता है।
- बाँस से करीब 14 विलियन अमेरिकी डालर प्रति वर्ष की आय है।
- इससे बच्चों व महिलाओं को घर बैठें रोजगाार मिलता है।

बाँस की माँग व उत्पादन :

चीन में लगभग 20–30 मिलियन टन कलम की तथा 3.2–4 मिलियन टन शूट की आवश्यकता पडती हैं। बढ़ती जनसंख्या व अन्य के कारण भारत में वर्तमान में बाँस की माँग लगभग 26.96 मिलियन टन की है तथा उत्पादन/आपूर्ति केवल 13.47 मिलियन टन है जो मांग का लगभग 50 प्रतिशत ही है।

बाँस की पैदावार :

1) एक अकले बाँस की कीमत ₹ 5 से ₹ 100 तक हो सकती है। मूल्य यह उसके आकार–प्रकार एवं गुणवत्ता पर निर्भर करता हैं।

2) 3–4 साल में बाँस निकाल सकते हैं।

आने वाले समय में चालू एवं अनुमानित बाँस बाजार (करोड़ में) कारोबार निम्नलिखित हो सकता हैं।

चालू एवं अनुमानित बाँस बाजार (रू करोड़ में) कारोबार

उत्पादन / उपयोग	अनुमानित बाजार
बाँस (शूट)	300 करोड (2015 तक)
बाँस (लकडी के रूप में)	30,000 (2025 तक)
बाँस के प्लाई बोर्ड	3,908 (2015 तक)
बाँस की छत आदि	1,950 (2015 तक)
बाँस के गल्प व पेपर	2,088 (2015 तक)
बाँस के फर्नीचर (कुर्सी, टेबल)	3,265 (2015 तक)
बाँस की चाली (मकान बनाने के समाग्री के रूप में)	861 (2015 तक)
मकान के लिए	1,163 (2015 तक)
सड़क बनाने के लिए	274 (2015 तक)
बाँस के ग्रिड	1,000 (2015 तक)
लघु उद्योगों में	600 (2015 तक)
कुल	45,409

स्रोत: नेशनल मिशन ऑन बैम्बू टेक. एण्ड ट्रेड डेवलपमेन्ट, प्लानिंग कमीशन डाउन टू अर्थ (2003), 12 (4) : 60

औसत पैदावार : 5 – 12 टन/हेक्टेयर हैं तथा अन्य बाँसों की औसत पैदावार निम्न हैं।

डी. स्ट्रिक्टस	:	3 दृ 4 टन/है0
बी. वुल्गेरिस	:	10 टन/है0 (म.प.) 8 ग 8 मीटर, 5 ग 5 मीटर की दूरी पर
बी. टुल्डा	:	3.1 टन/है0 (आसाम) 6 ग 6 मीटर की दूरी पर
बी. बैम्बूस	:	6 टन/है0 (डंडेली)
डी. गिगेन्टस	:	20 टन/है0 (ताइवान)
पी. पूबीसेन्स	:	90.100 टन/है0 (चीन)

बाँस आधारित कृषि वानिकी पद्धति :

- बाँस कृषिवानिकी के लिए उपयुक्त प्रजाति हैं।
- अंतर फसलोत्पादन के लिए, मृदा संरक्षण, बायुरोधक, रेशें एवं शिल्प कारी के लिए बाँस उपयुक्त हैं।
- जरूरत में चारा भी देता है।
- इसकी पत्तियों से वर्मी कम्पोस्ट खाद बना सकते हैं।
- अन्तर फसलों उत्पादन के अतिरिक्त बाँस चौथे साल में ही अतिरिक्त आय देने लगता है। जो कि अन्य लकड़ी आधारित कृषिवानिकी पद्धतियों से अधिक फायदेमन्द होता है।
- बाँस को एक बार लगाने के बाद प्रत्येक 5 वर्ष से 30 वर्ष तक आय मिलती रहती है।

बाँस पर आधारित कुछ कृषिवानिकी पद्धतियाँ:

1. कृषि वन वृक्ष पद्धति:

वन वृक्ष प्रजाति :– D. strictus, B. bambos, B. balcooa, B. tulda, B. palida, B. nutans, D. asper etc.

कृषि फसलें :– सोयाबीन, उडद, सरसों ,चना, मसूर, मूँग (दालें)। अदरक, हल्दी, मक्का, मिर्ची एवं तिल आदि।

2. वन फलोद्यान पद्धति: वन वृक्ष में बाँस की ही उपरोक्त प्रजातियाँ होंगी।

फलोद्यान फसलें :–

सब्जियाँ – टमाटर, मिर्ची, मटर, हल्दी, अदरक, आदि।

फूल – गेंदा, एवं गुलाब आदि।

फल – लीची, आम, पपीता, नीबू एवं काजू आदि।

3. वन चारागाह पद्धति :

घास – दीनानाथ, Stylo and Dichanthium annulatum (legume), Chrysopogon fulvus, Cenchrus ciliari, Panicum maximum.

4. वन कृषि मछली उत्पादन:

बाँस – *Phyllostachyus bambusoides.*

कृषि फसलें – धान।

मछली उत्पादन – तालाब में।

5. बाँस, चाय बाँस, मशरुम बाँस, औषधीय पौधे (Plantago Ovata)

बाँस आधारित कृषिवानिकी पद्धतियों के कुछ विवरण इस प्रकार हैं:

❖ एन.आर.सी.ए.एफ. झाँसी में बाँस के साथ मूंग एवं उड़द अन्तर फसलों को आदर्श फसल पाया

गया। जिसका बाँस की वृद्धि एवं पैदावार पर अंतर फसलों का कोई विपरीत प्रभाव नहीं दिखा। 5 वर्ष में बाँस के तने की ऊँचाई, केनापी एवं तनों की संख्या अन्तर फसलों के साथ अधिक पायी गयी।

- ❖ कोंकण क्षेत्र में 6 फलोधान फसलों के साथ बाँस अधिक फायदेमंद पाया गया।
- ❖ मध्यप्रदेश (2004) में बाँस आधारित कृषिवानिकी पद्धतियों के द्वारा कृषि अयोग्य भूमि को सुधारने, मृदा की उत्पादकता को बढ़ाने एवं मृदा क्षरण को रोकने में सार्थक रहा।
- ❖ तमिलनाडु (1999) में बाँस को पिजयन पी अन्तर फसल के साथ (3 ग 3 मी. एवं 1:1 कतार में) लगाने पर उच्च आय ₹ 13300 / हे प्राप्त हुई।
- ❖ हरियाणा (1992) में मेड़ पर बी. न्यूटन्स के साथ अदरक, हल्दी, धनियाँ एवं दीनानाथ घास को 11 से 15 मीटर की कतार में उपयुक्त फसल के रूप में पाया गया।

बाँस के मुख्य उपयोग:

1. हस्तशिल्प एवं सजावटी सामानों में
2. भवन निर्माण में
3. बाँस के बोर्ड व पैनल आदि में
4. चटाइयाँ व प्लाई आदि में
5. छत बनाने में सहायक सीढ़ी व चार्ली के रुप में
6. लुग्दी व पेपर आदि बनाने में
7. मिश्रित परतें बनाने में
8. कोयला, तेल व गैस आदि में
9. बाँस (शूट) खाने व अचार आदि में प्रयोग होता है।
10. बाँस के कपड़े आदि बनाने में भी इसका मुख्य उपयोग है।

विभिन्न अनुसंधान केन्द्रों पर बाँस प्रजाति के साथ कुछ अर्न्तफसलों का विवरण निम्न है।

अनुसंधान केन्द्र	बाँस प्रजाति	अन्तर्फसलें
राष्ट्रीय कृषि वानिकी केन्द्र, झाँसी अनुसंधान	डी.स्ट्रिक्टस / बी.टुल्डा / बी.बुल्गेरिस	उड़द / सरसों / चूना / मसूर / मूँग / अरहर / (औषधी)
काही कुची, आसाम	बी.टुल्डा / बी.बालकुआ / एम.बैसीफेरा	अदरक / हल्दी / मक्का / सरसों / मिर्च / सब्जियाँ / तिल
झार ग्राम, पश्चिम बंगाल	बी.टुल्डा / बी.बुल्गेरिस / बी.पोलीमोफा	मिर्च / धान / सरसों / तिल / हल्दी / उड़द / मूंगफली / लोबिया / अदरक
धारवाड़, कर्नाटक	बी.बम्बूसा / डी.स्ट्रिक्टस / बी.बुल्गेरिस	सोयाबीन / जौ / सरसों / तिल / मूंग / उड़द / प्याज / मिर्च
भुवनेश्वर, उड़ीसा	बी.बुल्गेरिस / डी.स्ट्रिक्टस / बी.पोलीमोफा	अरहर / मोंठ / तिल / ओकरा / मूंगफली मिर्च / लोबिया / फुटयाम / हल्दी
दापोली, महाराष्ट्र	ऑस्टॉक्सी / डी.स्ट्रिक्टस / डी.लोंगीस्पाथस	बाजरा / मूगफली / मूग / उड़द / तुअर / तिल / लोबिया / सब्जियाँ / सरसों

बाँस फर्नीचर तथा साज सज्जा

बाँस की चटाइयाँ तथा बोर्ड

चीन में वार्षिक बाँस उत्पादन पैनल 15-20 मिलियन मी² है

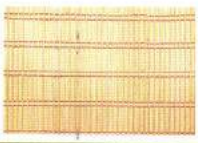

कालाचना- बाँस आधारित कृषि वानिकी तंत्र

गेहूँ- बाँस आधारित कृषि वानिकी तंत्र

बाँस की विभिन्न प्रजातियों के पारिस्थितिकी, ऊँचाई व वितरण के अनुसार सामान्य उपयोग

प्रजाति	पारिस्थितिकी, उचाई एवं वितरण	सामान्य उपयोगों में
बैम्बूसा एफिनिस	नमी युक्त ट्रापीकल क्षेत्र जपुरा	भाला बनाना, नुकीले तीर व फर्नीचर आदि में
बी. बालकुआ	नमीयुक्त, समुद्रतल से 600 मी. ऊँचाई, उत्तर–पूर्वी क्षेत्र पं0 बंगाल, बिहार	भवन निर्माण, अगरबत्ती कड़ी खाने में बुडचिप उद्योगो में
बी. बैम्बूस सिन	नमी, ट्रोपीकल एवं सम– मरूस्थल क्षेत्र, समुद्र तल से 1200 मी.ऊँचाई, उत्तर–पूर्वी दक्षिणी भारत	भवन निर्माण, टेन्ट के खंभे टोकरी, चटाई, तथा कृषि, औजार आदि में
बी. न्यूटस्	नमी ट्रोपीकल 600 से 1500मी. ऊँचाई के हिमालय क्षेत्र व उत्तर–पूर्वी क्षेत्र	मकान बनाने, चटाई, लुग्दी व पेपर, सजावटी व टोकरियाँ आदि में
पी. पैलीड़ा	नमी युक्त, ट्रोपीकल, समुद्र तल से 700मी से 2000 तक मीटर ऊँचाई, उत्तर–पूर्वी उत्तर बंगाल	भवन निर्माण, चटाई टोकरी खाने योग्य, अगरबत्ती कड़ी लुग्दी व पेपर में
बी. पालीमार्फा	ट्रापीकल क्षेत्र, मध्यप्रदेश केरल तमिलनाडु उत्तर–पूर्वी भारत	भवन निर्माण, लुग्दी व पेपर, अगरबत्ती, रेशे के बोर्ड, छत में खाने के शूट आदि
बी. बुल्गेरिस (नमकीन तथा रेतीला)	नमी, ट्रापीकल क्षेत्र, 1200मीं तक ऊँचाई म. प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, यू0पी0	निर्माण में लुग्दी, टोकरी सजावटी, टोपी अनाज भंडारण टंकी में
बी. टुल्डा	नमी, ट्रोपीकल क्षेत्र, उत्तर–पूर्वी क्षेत्र	निर्माण, लुग्दी, टोकरी चटाई, खिलौने व सजावटी सामानो में
डी. एस्पर	ट्रोपीकल क्षेत्र चीन से प्रचलन	खाने के शूट, निर्माण लुग्दी टोकरी आदि में
डी. गिगेनटस	नमीयुक्त ट्रोपीकल क्षेत्र 1200मी. ऊँचाई अरूणाचल, आसाम, मनीपुर, नागालैण्ड व पं.बंगाल	निर्माण में, लुग्दी में
डी. स्ट्रिक्टस	सम–उष्ण क्षेत्र 1000 मी. तक ऊँचाई पूरे भारत मे उत्तर–पूर्वी क्षेत्र छोड़कर	निर्माण में लुग्दी तथा भूमि सुधार व संरक्षण में
मेलोकाना बैसीफेरा	नमी ट्रोपीकल 600मी. ऊँचाई उत्तर–पूर्वी ,आसाम, मनीपुर, मेघालय, मिजोरम, त्रिपुरा, पश्चिम बंगाल	निर्माण, चटाई खिलौने, दीवार पर सजावटी सामानों टोपी, टोकरी, अनाज भंडारण टंकी लुग्दी, पेपर, फल खाने योग्य
आक्सीटिनेनथेरा स्टॉक्सी	ट्रोपीकल क्षेत्र 800 मीं ऊँचाई गोवा, कर्नाटक, दक्षिणी केरला	निर्माण, चटाई व लुग्दी, पेपर आदि में

इस तरह से कृषि वानिकी में बाँस के उत्पादन की अपार संभावनाएं है तथा बाँस के अनेक उपर्युक्त उपयोग भी है। इस प्रकार बाँस को किसान कृषि वानिकी के साथ उगाकर अधिक से अधिक लाभ उठा सकते हैं।

अटैवा फैब्रिसिएला स्वेड. *(Atteva fabriciella* Swed.) और एलिग्मा नारसिसस इंडिका *(Eligma narcissus indica)* अडूसा को हानि पहुँचाने वाले कीट तथा उनका नियंत्रण

डॉ. मीता शर्मा, डॉ. एस. आई. अहमद एवं सुश्री नूपुर शर्मा

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

भारत वर्ष में शुष्क और अर्द्धशुष्क वन शासित प्रदेशों में राजस्थान एवं गुजरात सर्वोपरि हैं। इनमें पादप जगत के सैकड़ों प्रजाति के वृक्ष शामिल हैं जिनमें एलेन्थस एक्जेल्सा (*Ailanthus excelsa*) का बड़ा ही महत्व है।

एलेन्थस एक्सेलसा मुख्यतया जंगली सर्व, महारूख (विशाल आकार) और महानिंब (नीम वृक्ष से समानता के कारण) के नाम से जाना जाता है। गुजरात राज्य में इसे ''अडूसा'' भी कहा जाता है। इसे जन्नत का वृक्ष (Tree of heaven) की उपाधि दी गयी है।

यह मुख्य रुप से एक विशाल पतझड़ी वृक्ष है जिसकी लंबाई 18–25 मीटर और तने का व्यास 60–80 सेन्टीमीटर तक होता है। ये सिमेरूबेसी (Simaroubaceae) कुल से संबंधित है। यह नरम लकड़ी का पेड़ है जिसे बागवानी और सामाजिक वानिकी कार्यक्रमों के रूप में भारतीय महाद्वीप के कई हिस्सों एवं दक्षिण पूर्व एशियाई देशों में उगाया जाता है।

भौगोलिक स्थिति :

यह भारत और श्रीलंका में स्थानीय रूप से पाया जाता है। यह एक नमक सहनशील प्रजाति है जो अर्द्धनम क्षेत्रों में अच्छे से पनपता है जहॉ की वार्षिक वर्षा लगभग 400 मि.मी. है। भारत में प्रमुखतया यह गुजरात, राजस्थान, पश्चिम बंगाल, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तरप्रदेश के शुष्क हिस्सों में पाया जाता है। गुजरात के मेहसाना जिले में इसे बड़ी संख्या में उगाया गया है।

महत्त्व: इसकी पत्तियों का प्रयोग एडल्ट्रेन्ट के रुप में होता है । इस पथ (avenue) वृक्ष के रूप में सिंचित प्रजाति को भूक्षरण विरोधी (एन्टी इरोजन) प्रयोजन के लिए भी इस्तेमाल करते है। जल्दी पनपने की क्षमता एवं चरने उन्मुक्ति प्राप्त करने की वजह से यह नरम लकड़ियों में सबसे पहले चुना जाता है (एनोनिमस, 1956)। आमतौर पर एक वृक्ष की उपज 560–700 किलोग्राम हरी पत्तियाँ वर्ष में दो बार होती है। इसकी लकड़ी केबिनट बनाने में काम आती है। (भंडारी और गुप्ता, 1972)। खेरवा (मेहसाना) में प्लाईवुड फैक्ट्री में इसी की लकड़ी से लोगों को रोजगार प्राप्त होता है।

प्रमुख नाशीकीट (Defoliaters):

अब तक लगभग 30 कीट प्रजातियों का आतंक एलेन्थस पर दर्ज किया गया है। (कोलियोप्टेरा–11, हेमिप्टेरा–9, होमोप्टेरा–1, आईसोप्टेरा–1, लेपिडोप्टेरा–8, थाइसेनोप्टेरा–2) इनमें दो लेपिडोप्टेरन प्रजातियॉ प्रमुख है जो गंभीर रूप से नुकसान पहुॅचाती है । अटैवा फैब्रिसिएला स्वेड. *(Atteva fabriciella Swed.)* नर्सरी और युवा बागानों में मुख्य रूप से नुकसान पहुॅचाता है। एलिग्मा नारसिसस इंडिका (*Eligma narcissus indica*) प्रायद्वीपीय भारत में पाया जाता है।

अटैवा फैब्रिसिएला स्वेड. (*Atteva fabriciella* Swed.)

यह सामान्यतया एलेन्थस वेबवर्म (Ailanthus webworm) के नाम से प्रसिद्ध है। यह एलेन्थस एक्सेलसा पर पाया जाने वाला सबसे गंभीर कीट माना गया है।

नैदानिक लक्षण :

मौथ: वयस्क मौथ मध्यम आकार (10 मि.मी. लंबा) खूबसूरत नारंगी रंग में पाए जाते हैं। आगे के पंख गहरे नारंगी जिन पर सफेद धब्बे होते हैं। पीछे के पंख हल्के नारंगी होते हैं।

जीवन इतिहास: ये रात को उड़ने वाले मौथ है जो दिन में पत्तियों की निचली सतह पर छिप जाते है। इनका जीवनकाल 2–23 दिन का होता है।

हानियाँ: इनके लार्वा (Larvae) युवा पत्तियाँ खाते हैं। इन्हीं पर वे जाल बनाते हैं। एक जाले में 8–15 लार्वा पाए गए हैं ।

खेरवा (मेहसाना) में रोपित एलेन्थस एक्सेल्सा का क्षेत्र

ये कीट न सिर्फ पत्तियाँ बल्कि एलेन्थस की बीज स्थापना को भी प्रभावित करते है। एकत्रित बीज भी लार्वा के आक्रमण से खराब हो जाते हैं जो बीज उत्पादन को भी प्रभावित करता है।

एलिग्मा नारसिसस इंडिका (*Eligma narcissus indica*)

यह भारत में पाई जाने वाली जाति है (भसीन और रूनवाल, 1954)।

मौथ: इसका सिर और शरीर भूरा जबकि उदर सुनहरा पीला होता है जिस पर काले धब्बे पाए जाते हैं। आगे के पंख भूरे और पीछे के पंख सुनहरे पीले होते हैं।

एलेन्थस एक्सेल्सा की पत्तियों पर मौजूद प्यूपा

हानियाँ: सितम्बर से फरवरी तक सक्रिय रहते हैं। इनके लार्वा युवा पौधों और अंकुरों को नुकसान पहुँचाते हैं। प्रौढ़ वृक्षों पर ये प्रायः आक्रमण नहीं करते। युवा लार्वा पत्तियों पर सफेद धब्बे छोड़ जाते हैं। जबकि वयस्क लार्वा पत्तियों का संपूर्ण हरा भाग खा जाते हैं। कई बार 20–40 लार्वा एक पत्ती पर देखे गए हैं। गंभीर रुप से प्रभावित पत्तियाँ पूरी तरह झड़ जाती हैं।

कीटप्रबंधन :

शोधों के आधार पर अटैवा फैब्रिसिएला_कीट अधिकतर नर्सरी पौधों में पाया गया है। प्रायद्वीपिय भारत में ये दोनों कीट महामारी के रूप में मिलते हैं। इसलिए इनकी रोकथाम अतिआवश्यक है।

व्यवहारिक रुप में इसके तीन प्रकार के नियंत्रण बताए जा सकते हैं:

1. मैकेनिकल नियंत्रण: यह मुख्य रुप से एलिग्मा के लिए प्रस्तुत है। इसमें लार्वा को हाथों से पकड़कर केरोसीनयुक्त डब्बों में डालकर मार दिया जाता है। प्यूपा को भी चाकू से हटाकर चूरा कर दिया जाता है

एलेन्थस एक्सेल्सा की पत्तियों पर लार्वा द्वारा बनाया गया जाला

जब तक उनका सफेद द्रव बाहर न निकल आए। यह तरीका उनके भविष्य की जनसंख्या को नियंत्रित करता है।

2. संवर्धनिक नियंत्रण:

क. प्रूनिंग: समय समय पर शाखाओं को काटना जरुरी है ताकि लार्वा को बढ़ोतरी की संभावना ना मिले।

ख. वृक्ष विकास: कमजोर वृक्ष ही आकमण का केन्द्र होते हैं। इसलिए साफ जगहों पर एलेन्थस रोपित किए जाए । कमजोर वृक्षों को हटा देना चाहिए।

अटैवा फैब्रिसिएला स्वेड (वयस्क)

...शेष पृष्ठ 29 पर

सिल्वर बैरी: गांदे (ऐलिगनस अंगस्टीफॉलिया) उत्तर-पश्चिमी हिमालय के शीत मरूस्थलों के लिए एक बहुमूल्य वृक्ष

डॉ. के. एस. कपूर एवं **डॉ. आर. एस. रावत**
हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

वनस्पतिक नाम	: ऐलिगनस अंगस्टीफॉलिया,
कुल	: ऐलिगनेसी,
सामान्य नाम	: शियूलिक (लाहौल); गांदे (स्पित्ति); राल (किन्नौर)
श्रेणी	: आवृतबीजी,
अंग्रेजी नाम	: सिल्वर बैरी

सामान्य परिचय

उत्तर–पश्चिम हिमालय में स्थित राज्यों यानि हिमाचल प्रदेश, जम्मू–कश्मीर तथा उत्तराखण्ड के कुछ सुदूर भागों में ऐसे क्षेत्र हैं, जिनका पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी में अपना अलग ही महत्त्व है। ऐसे क्षेत्र वृक्ष रेखा से ऊपर वाले भागों में स्थित हैं, अतः इन्हें **शीत मरूस्थलों** के नाम से जाना जाता है। मरुस्थलीय स्थितियों के बावजूद इन क्षेत्रों में ऐसी जड़ी–बूटीयां या वृक्ष विद्यमान है या फिर वृक्षों को उगाने हेतु ऐसी परिस्थितियां व्याप्त है, जिससे इस भू–भाग का पारिस्थितिकी संतुलन ठीक से रखा जा सकता है। इसी दृष्टिकोण को लेकर हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला द्वारा एक प्रयास किया गया जो कि तरुचिंतन के माध्यम से हम आपसे साझा कर रहे हैं।

ऐलेग्नस अंगस्टीफोलिया

स्थानीय किसानों का ऐलेग्नस अंगस्टीफोलिया के स्थल रोपण क्षेत्र में प्रशिक्षण के दौरान भ्रमण

ऐलिगनस अंगस्टीफॉलिया, ऐलिगनेसी कुल का एक वृक्ष है, जिसे अंग्रेजी भाषा में **सिल्वर बैरी** कहा जाता है। जहाँ तक पश्चिमी हिमालय के शीत मरुस्थलीय क्षेत्रों, मुख्यतया लाहौल–स्पित्ति जिले के स्पित्ति हिस्से का प्रश्न है, इसे **गांदे** के नाम से जाना जाता है व अति विषम भौगोलिक परिस्थितियों वाले इस भू–भाग में यह वृक्ष धार्मिक, सामाजिक व पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

कुछ वर्ष पूर्व काजा (लाहौल–स्पित्ति) से 40 कि.मी. की दूरी पर स्थित ताबो गाँव में इस प्रजाति के केवल दो या तीन वृक्ष ही हुआ करते थे, परन्तु **हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान के ताबो स्थित अनुसंधान केन्द्र** द्वारा किये गये अथक प्रयासों से इस प्रजाति की पौधशाला तकनीक का विकास कर लोगों में इसका प्रचार व प्रसार किया गया, जिसके फलस्वरूप लोगों ने इस प्रजाति को

फलीय शाखा

अपने खेतों के चारों ओर व बौद्ध मठों के इर्द–गिर्द लगाने में काफी रुचि दिखाई, और आज इसका परिणाम यह रहा कि अब यहाँ इस प्रजाति के पौधों की संख्या काफी बढ़ गई है। ऐसा इस लिए सम्भव हो पाया क्योंकि इस वृक्ष से लोगों की धार्मिक भावनाएं जुड़ी हैं और साथ ही इस वृक्ष का यहाँ की जलवायु के अनुसार उपयुक्त होना इत्यादि भी शामिल है।

भौगोलिक वितरण

वैश्विक स्तर पर यह वृक्ष मध्य एशिया, दक्षिणी यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका में पाया जाता है। भारतवर्ष में इसकी मुख्यतया 14 प्रजातियाँ पाई जाती हैं, जिनमें से ऐलिगनस अंगस्टीफॉलिया, ऐलिगनस लैटिफोलिया, ऐलिगनस अम्बीलेटा व ऐलिगनस फारबीलोरा इत्यादि शामिल है और शीत मरुस्थलीय क्षेत्रों में ऐलिगनस अंगस्टीफॉलिया बहुत ही अच्छा प्रदर्शन कर रहा है।

वानस्पतिक विवरण

ऐलिगनस अंगस्टीफॉलिया का वृक्ष प्रायः 3 मी0 से 5 मी0 तक लम्बा पौधा होता है। इसके पत्ते 3.7X1–2.5 से0मी0 आकार व चाँदी की तरह चमक वाले होते हैं, अतः इसलिए इसे **सिल्वर बैरी** भी कहा जाता है। इसमें छोटे–2 द्विलिंगी पुष्प लगते हैं, जिनमें चार परागकेसर पाये जाते हैं। इसका अण्डाशय एक कोशिकीय होता है तथा फल गुद्देदार होते हैं। फल का आकार 1.5 से 2 से.मी. तक लम्बा होता है। इस प्रजाति में अप्रैल से जुलाई महीने के मध्य ही में पुष्प व फल लगते हैं, और यह वृक्ष तीन से पाँच वर्ष की आयु में फलने व फूलने लग जाता है।

पुष्पीय शाखा

प्रजनन

ऐलिगनस अंगस्टीफॉलिया में लैंगिक व कायिक दोनों विधियों द्वारा प्रजनन करने की क्षमता होती है। किसी बाहत्रय प्रक्रिया जैसेः आग, कटान इत्यादि द्वारा जब भी इसके वृक्ष को कोई नुकसान पहुंचता है तो इस पौधों की जड़ों के हिस्से से बहुत से Root Suckers निकलते हैं, जिनसे यह प्रजाति जल्दी से सवंर्धन कर इसको नुकसान की भरपाई का हर सम्भव प्रयास करती है।

मृदा पारिस्थितकी व पौधशाला तकनीक

ऐलिगनस अंगस्टीफॉलिया पर ताबो अनुसंधान केन्द्र में प्रयोग कर संस्थान द्वारा यह पाया गया कि यह प्रजाति रेतीली व शुष्क किस्म की मिट्टी में अधिक सफलतापूर्वक उगती है। इसके अतिरिक्त यह प्रजाति – 45°C से 46°C तापमान सहन कर सकती है तथा वर्ष में 12 से0मी0 तक की बारिश इस प्रजाति के लिए पर्याप्त होती है। 6–9 के बीच का pH मान इस प्रजाति के लिए बहुत ही उपयुक्त होता है तथा शुरु से ही इसका पौधा मृदा में

शुष्कता की मात्रा को बहुत हद तक सहन कर सकने की क्षमता रखता है।

बीमारियाँ व पीड़क

ऐलिगनस अंगस्टीफॉलिया की शाखाओं, पत्तियों व तने पर नम परिवेश में फफूंद संक्रमण द्वारा धब्बे पड़ जाते है और संक्रमित शाखाओं की पत्तियां भी भूरी हो जाती है। इसके अलावा कुछ अन्य कीटों द्वारा भी इस पौधे को हानि पहुँचाई जाती है। परन्तु ताबो अनुसंधान केन्द्र में इस प्रजाति पर किए गए प्रयोगों के दौरान कोई ऐसा नुकसान दायक कीड़ों का प्रकोप नहीं पाया गया।

उपयोग

- ★ इस पौधे से उत्कृष्ट ईंधन की लकड़ी मिलती है, जिसका उच्च उष्मीय मान होता है।
- ★ इसके पुष्पों से प्राप्त रस का इस्तेमाल बुखार के इलाज में किया जाता है।
- ★ इससे प्राप्त तेल का प्रयोग श्वसन तन्त्र के संक्रमण के इलाज में किया जाता है।
- ★ क्या यह फल भोजन के रुप में प्रयोग होता है। इसके फल में विटामिन–ए0, विटामिन–बी0, विटामिन–सी0 तथा फलेबिनॉयडज काफी मात्रा में मिलते है।
- ★ इसके पत्तों का प्रयोग टयूमर व अलसर के इलाज में भी किया जाता है।
- ★ इस प्रजाति से निकली गोंद कपड़ा उद्योग में भी काम में लाई जाती है।

इन उपयोगों के अतिरिक्त स्थानीय लोग इसके फूलों की मालाएँ बना कर अपने **ईष्ट–देवों पर पूरी श्रद्धा पूर्वक चढ़ाते हैं।** साथ इसके जब इस वृक्ष पर फूल लगते हैं तो इन पुष्पों की सुगन्ध व सुन्दरता से इस क्षेत्र का वातावरण और भी गौरवमयी हो जाता है।

इन्हीं गुणों को देखते हुए इस वृक्ष को और दिशा देने के लिए संस्थान द्वारा समय–समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जाता है। आइए अब हम इस बारे और सोचें तथा इस ओर अपना कुछ योगदान दें।

...पृष्ठ 26का शेष

3. जैविक एवं वनवर्धकीय नियंत्रण

क. कवकीय रोगाणु

वर्मा, 1986 और मोहममद अली एवं वर्मा,1972 के अनुसार इन दोनो कीटों के लार्वा और प्यूपा पर पिसिलोमाइसिस फेरिनोसस (*Paecilomyces farinosus*) नामक कवक का संक्रमण पाया गया है जो इन्हे 72 घंटो में मार देती है । चटर्जी इत्यादि 1969 और बासु चौधरी, 1975 की रिपोर्ट के अनुसार बिवेरिया बासिआना (*Beauveria bassiana*) नामक कवक की वजह से एलिग्मा कीट के लार्वा और प्यूपा में वाइट मस्कारडिन (White muscardine) जैसी बीमारी होती है ।

ख. बैक्टीरिया रोगाणु

बैसिलस फरमस (*Bacillus firmis*) नामक जीवाणु एलिग्मा के विरूद्ध काम करता है । 18–24 घंटों में 80–100 प्रतिशत प्रभाव देखा गया है । (वर्मा,1986)

ग. पराश्रयी

ब्रैकिमेरिया हाइम अटैवे (*Brachymeria hime attevae*) एक पराश्रयी है जो अटैवा फ्रैबिसिएला को नियंत्रण में रख सकता है।

रासायनिक नियंत्रण

एलेन्थस की सुरक्षा के लिए 0.01 प्रतिशत फेनवलरेट 20 ईसी नामक कृत्रिम कीटनाशक सकारात्मक नतीजे देता है । इसे वृक्ष की बढ़ती हुई अवधि में महीने में एक बार आठ महीनो तक दिया जाना चाहिए ।

बाँस, हानिकारक कीट एंव नियंत्रण

डॉ. के. पी. सिंह
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

बांस, भारत में पैदा होने वाली एक मुख्य उपज है। वनस्पति विज्ञान के अनुसार बांस घासकुल का पौधा है। बांस झोपड़ियों की दीवार, छत, टोकरी, चटाई, लाठी, औजारों के हत्थे, बांसुरी, आदि बनाने में बहुत उपयोगी है। बांस से कागज बनाने के लिए उत्तम लुग्दी प्राप्त होती है। अचार बनाने के लिए इसके कोंपलों का उपयोग किया जाता है। बांस की पत्तियां पशुओं के लिए बहुत अच्छा चारा होती हैं। बांस के तने का कुछ हिस्सा जमीन के अन्दर रहता है, उसे 'राइजोम' कहते हैं। हर साल बरसात में राइजोम से नये–नये कल्ले निकलते हैं। जैसे–जैसे उम्र बढ़ती जाती है, वैसे–वैसे राइजोम बाहर की ओर बढ़ता जाता है और नये–नये कल्ले आते जाते है।

बांस का रखरखाव:

बांस की पौध, रोपित करने के उपरान्त 6 से 7 वर्ष में एक बेडी का रुप ले लेती है इसके उपरान्त इस बेड़ी में 3 वर्ष से अधिक आयु के बांस को प्रत्येक वर्ष निकाल लेना चाहिए। कुछ कल्ले बेड़ी में छोड़ देने चाहिए। इन कल्लों को सामान्यतया बाहर की ओर छोड़ा जाता है। एक वर्ष से कम उम्र के अपरिपक्व कल्लों का विदोहन नहीं करना चाहिए। किसी भी दशा में कल्लों को भूमि की सतह से 30 से. मी. से ऊपर नहीं काटना चाहिए। जहाँ सघनता हो गई हो वहां सघनता वाले कल्लों को हटा देना चाहिए, भले ही इसमें वर्तमान वर्ष के कल्ले रह जाएं। यदि कम उम्र के कल्ले टेढ़े मेंढ़ हो गये हो तो उनका मुड़ा हुआ भाग हटा देना चाहिए। जुलाई से अक्टूबर तक कोई भी विदोहन कार्य नहीं करना चाहिए। हल्की छाया में बांस की बढ़त अच्छी देखी गई है।

बांस की कटाई:

बांस का विकास अन्य वृक्षों के विकास के समान नहीं होता है। सबसे पहले भूमिगत गांठ से राइजोम के द्वारा निकला तना (कल्म) बढ़ता है उसके बाद तेजी से इसकी ऊँचाई बढ़ती है। वर्षा से पहले बांस के चारों तरफ मिट्टी चढ़ाई जाती है। अच्छी पैदावार के लिए बांस की कटाई समय पर करनी चाहिए। मजबूती के लिए 6 वर्ष के बांस का उपयोग होता है। अक्टूबर के दूसरे सप्ताह से दिसम्बर तक बांस की कटाई करनी चाहिए। गर्मी के मौसम में बांस नहीं काटना चाहिए।

बांस काटने का तरीका:

बांस की भूमिगत गांठें राइजोम के द्वारा नये बांस उत्पन्न करती है समय बीतने के साथ गांठों की वृद्वि कोठी के किसी एक तरफ अधिक मात्रा में होती दिखाई देती है। ऐसे समय में जहां बांस की वृद्वि कम हो उस स्थान से बांस काटना शुरु करना चाहिए। उसके बाद बाहर की ओर बांस को वैसा ही रहने देना चाहिए व और अन्दर की ओर से बांस काटना चाहिए। इस प्रकार बांस को हरेक झुण्ड के बीच से काटने के कारण घोड़े की नाल की आकृति शेष रह जाती है। हर एक झुण्ड में जितने बांस एक वर्ष की आयु के होते हैं उससे तीन गुना अधिक (अधिकतम दस) बिना काटे हुए रखने चाहिए।

मृदा एवं जलवायु:

सामान्यतया बांस प्रदेश में हर जगह पाया जाता है। मध्य तथा दक्षिणी पठार के शुष्क ढालों पर भी यह पाया जाता है। बांस अधिकतम 46° सेल्सियस तथा न्यूनतम 5° सेल्सियस तापमान सह सकता है। 1000 मि.मी. से अधिक वर्षा वाला क्षेत्र इसके लिए अधिक उपयुक्त है। नरम या उपजाऊ भूमि में भी बांस अच्छा होता है। क्षार युक्त भूमि में बांस नहीं होता है।

बीज:

बांस में प्रतिवर्ष फूल नहीं आते अपितु इसके पूर्ण जीवन काल (20 से 40 वर्ष) में केवल एक ही बार

फूल आते है। क्षेत्र के छोटे– बड़े सभी बांसों में एक ही समय में फूल आते हैं इसे 'ग्रिगेरियस फलावरिंग' कहा जाता है। फूल आने के बाद बांस सूख जाता है। बांस के बीज एक किलो में लगभग 4000 बीज होते हैं। अंकुरण क्षमता 70 से 80 प्रतिशत तक होती है। बीज बोने से पहले ठंडे पानी में 24 घंटे तक भिगोया जाता है। इस अवधि में कम से कम एक बार पानी बदलना आवश्यक है।

बांस का पुनरुत्पादन:

बांस का पुनरुत्पादन बीज, राइजोम व कल्म कटिंग द्वारा किया जाता है। बांस रोपण 30 सेमी.x 30 सेमी. x 30 सेमी. के आकार के गड्ढों में 5 मीटर x 6 मीटर के अन्तराल पर किया जाता है।

उत्पादन एवं लाभ:

बांस के कल्लों का उत्पादन पांचवे वर्ष से प्रारम्भ हो जाता है। 5वें से 10वें वर्ष के बीच औसतन प्रति पुंज प्रतिवर्ष 10 कल्लों का उत्पादन होता है। 11वें से 15वें वर्ष के बीच उत्पादन बढ़कर 15 कल्ले प्रति पुंज प्रति वर्ष हो जाता है। इसके बाद 15वें से 22$^{वें}$ वर्ष के बीच उत्पादन घटकर औसतन पुनः 10 कल्ले प्रति वर्ष हो जाते हैं। वर्तमान बाजार में एक कल्ले की न्यूनतम कीमत ₹ 5/– है। यदि घेरबाड़ न की जाय तो 1 हेक्टेयर क्षेत्र में बांस के 275 पौधें रोपित करने में लगभग ₹ 5000/– का अनुमानित व्यय आता है एवं 5 वें वर्ष से 22 वें वर्ष तक 2500 कल्ले प्रति वर्ष न्यूनतम प्राप्त कर ₹ 12,500/– प्रतिवर्ष की आय होती है।

बाँस के मुख्य कीट एंव नियंत्रण :

ओक्रोफारा मोन्टाना (हेमिप्टरा, पेन्टाटोमिडी):

जब कभी बांस के बहुत से झुण्डो मे फूल आते हैं तब इस नाशि कीट का प्रकोप बहुत बढ़ जाता है। इस कीट के अवयस्क (निम्फ) एवं वयस्क फूल का रस चूसते है जिससे बीज नही बनता। यह कीट बहुत बड़ी संख्या मे होते हैं जिससे संपूर्ण बीज की फसल का विनाश हो जाता है। यह कीट भूमि मे गिरे हुए बीजो का भी रस चूसते हैं जिससे बांस का प्राकृतिक उत्पादन नही हो पाता। जब कीट का प्रकोप हो तब डाइमिथोएट 0.02 प्रतिशत अथवा साइपरमैथ्रिन 0.002 प्रतिशत कीट नाशक का पानी मे घोल बना

बांस का रोपवन

कर छिड़काव किया जाये।

सीटोट्रोगा सिरेलिला (लेपिडोप्टरा गिलीचिडी):

इस नाशी कीट की इल्ली साधारणतः गेहूं, मक्का, ज्वार, जौ आदि के बीजों को हानि पहुँचाती है, इसके साथ ही जब बांस के बीजों का भण्डारण किया जाता है तब इस नाशिकीट का प्रकोप शत–प्रतिशत पाया गया है। बांस के बीजो का भण्डार करने से पहले, उनका धूम्रीकरण इथायलीन डाई ब्रोमाइड या कार्बन डाइ सल्फाइड की 5 एम एल मात्रा प्रति 100 किलो बीज के लिए 48 घण्टों तक किया जाये।

होलोट्राकिया इन्सुलेरिस (कोलियप्टरास्केरेबिडी मिलोलोनथिनी) :

इस नाशी कीट की इल्ली को चेफर ग्रव या सफेद ग्रव या किरमुला भी कहते है। इसकी इल्ली मिट्टी के अन्दर होती है एवं बांस की जड़ों एवं राइजोम को नष्ट कर देती है। मैदानीं क्षेत्रों मे इसका प्रकोप बहुत होता है। इस कीट की रोकथाम हेतु थिमेट 10जी 200 ग्राम या 500 फ्यूराडान 3जी बोने से पहले अथवा जमने के 20 दिन बाद प्रति क्यारी (10 x 1मीं०) को मिट्टी मे मिलायें।

एग्रोटिस इप्सिलोन (लेपिडोप्टरा नोक्ट्यूडी):

इस नाशी कीट की इल्ली को 'कटवर्म' भी कहते हैं। यह इल्ली पौधशाला मे बीज उगने के कुछ दिन बाद पौधों को जमीन की सतह के पास से काट देती है, और कटे हुए पौधें को खींच कर जमीन के अन्दर अपने बिल मे खाने के लिए ले जाती है। बीज बोने से पहले मिट्टी की दो तीन बार गहरी खुदाई

करें जिससे मिट्टी मे छुपी इल्ली एवं शंखी नष्ट हो जाए। इस कीट के नियंत्रण हेतु थिमेट (10जी) 200 ग्राम या फ्यूराडान (3जी) 500 ग्राम प्रति क्यारी (10 X1मीं०) को मिट्टी मे मिलायें।

दीमक :

पौधशाला मे दीमक का प्रकोप बहुत होता है यह प्रकोप तब और अधिक हो जाता है जब कुछ दिन तक पौधशाला को सिंचित न किया जाए। दीमक पौधों की जड़ों को हानि पहुंचाती है। दीमक के नियंत्रण हेतु क्लोरपाइरीफोस या एण्डोसल्फान का पानी मे 0.2 प्रतिशत घोल बना कर मिट्टी मे छिडकाव करें। 10 X1मी. क्यारी के लिए 50ली. धोल का उपयोग करें।

एलगेडोनिया काक्लीसेलिस : (लेपिडोप्टरा पाइरेलिडी):

इस नाशी कीट की सुण्डी बांस की पत्तियों को सबसे ज्यादा हानि करती है। यह पौधशाला, रोपवनों एवं बांस के प्राकृतिक वनों में प्रकोप करती है। इसके अलावा पाइरेस्टा बेम्बूसीवोरा, पायोनिया फ्लेमोफम्ब्रीयाट एवं माजाफा एबसोलूटेलिस की सुण्डी भी बांस की पत्तियों को रोल करती है और उनका निष्पत्रण करती है। कार्बरिल 0.1 प्रतिशत या फोलीथियोन 0.2 प्रतिशत या साइपरमेथ्रिन 0.002 प्रतिशत का घोल पानी मे बना कर छिड़काव करें। नीम के बीज की गिरी दो मुट्ठी लेकर उसे सिल बट्टे या मिक्सी में बारीक पीस कर पानी में उसकी लुग्दी बना ले। इस लुग्दी को 10 ली० पानी में घोल कर बारीक कपड़े से छान लें। इस छने हुए पानी को कीट ग्रसित बांसो पर छिड़काव करें।

तना छेदक:

नये कल्लों के छेदक नाशिकीट सरटोट्रकिलस डस्क व सरटोट्रकिलस लोंगीपिस (कोलियोप्टरा; करकुलियोनिडी) व बांस प्ररोह छेदक इस्टिगमिना चाइनेनसिस (कोलियोप्टराः क्रायसोमेलिडी) बांस को बहुत हानि पहुँचाते हैं। नये कल्लों को छेदक का प्रकोप उन्हे बढ़ने नहीं देता जिससे कल्ले बांस नहीं बन पाते। प्ररोह छेदक के प्रकोप से बांस टेढ़े हो जाते हैं व कमजोर हो जाते हैं, जिससे उनका उचित मूल्य नही मिल पाता। हरे बांस एवं कल्लों की सबसे नीचे की इनटरनोड के ऊपरी भाग पर बारीक गिरमट से छेद कर लें। उस छेद मे डाइमिथोएट कीटनाशक का 0.05 प्रतिशत घोल इन्जेक्शन द्वारा डाल दें।

रस चूसक:

बांस के रस चूसक नाशीकीटों मे सबसे ज्यादा हानि पहुंचाने वाला नाशी कीट ओरेग्मा बम्बूसी (हेमिप्टराः एफिडी) है। यह नये कल्मों, पत्तियों, तनों व टहनियों का रस चूसता है व इनकी संख्या हजारों में होती है। बहुत अधिक रस चूसने के कारण बाँस सूख जाते हैं। जाड़ों के मौसम में इस कीट का प्रकोप बहुत होता है। इस रस चूसक के नियंत्रण हेतु कीट नाशक डाइमिथोएट या मोनोक्रोटोफोस का 0.01 प्रतिशत घोल पानी मे बना कर छिड़काव करें।

कटे सूखे एवं उपयोग में लाये गए बांस के छिद्रक:

सूखे बांस में घुन का प्रकोप अधिक होता है। डाइनोडिरस ब्रिविस, डॉ. माइन्यूटस व डॉ. ओसीलेरिस (कोलियोप्टराः बोस्ट्रीकिडी) बांस डिपो में प्रकोप करती है। इनके प्रकोप से बांस एक बुरादे के ढेर में बदल जाता है। घुन बांस से बनी वस्तुओं को भी हानि पहुंचाता है। घुन निरोधक (प्रोफाइलेक्टिक) विधि द्वारा बांस के डिपो में घुन निरोधक छिड़काव करने से बांस को एक वर्ष तक सुरक्षित रखा जा सकता है। साइपरमेथ्रिन 0.5 से 1.0 प्रतिशत घोल डीजल में बना कर, इस घोल में 20 मि0ली0 प्रति लीटर की दर से गन्ने का सीरा या 2 मि0ली0 प्रति लीटर की दर से ट्राइटोन मिला कर छिड़काव करे।

पाउडर पोस्ट, लिक्टस एफ्रीकेनस (कोलियोप्टराः लिक्टिडी), क्लोरोफोरस एनूलेरिस व स्ट्रोमेसियम बारबेटम (कोलियोप्टरा, सिरेम्बिसिडी) बांस से बनी वस्तुओं को हानि पहुँचातें हैं। यह सब छिद्रक बांस से बनी वस्तुओं को बुरादे में बदल देते हैं। मिथाइल ब्रोमाइड या कार्बन डाई सल्फाइड से किसी बन्द कमरे में 48 घण्टे तक धूम्रीकरण करें या प्रभावित वस्तु को किल्न में 60–70°C तापमान पर 48 घण्टे तक रखें। 3 प्रतिशत बोरिक ऐसिड और बोरेक्स (1:1) अथवा 3 प्रतिशत बोरिक ऐसिड़ जिन्क क्लोराइड को पानी मे धोल कर छिड़काव किया जा सकता है।

करंज-एक विलक्षण पेड़

डॉ. के. पी. सिंह
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

करंज (*Pongamia pinnata*) एक मध्यम ऊँचाई, आर्द्र एवं गरम वातावरण में उगने वाला पेड़ है। यह 500 मि.मी. से 2500 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में अच्छी प्रकार से उग जाता है तथा ऊँचाई 20–25 मीटर एवं मोटाई 80 से.मी. तक होती है। इसकी पत्तियाँ गहरी, हरी, चमकदार तथा एक पत्ती में तीन से सात तक पर्णक होती है। अंतिम छोर की पर्णक सबसे बड़ी एवं कार्यिकीय रूप से अधिक सक्रिय भी होती है। यह पेड़ 0 से 50 डिग्री से. तक तापमान आसानी से झेल सकता है। रेतीले एवं चट्टानी इलाके में भी यह बड़ी आसानी से उग जाता है एवं खारे पानी वाली जमीन में भी उगने में सक्षम है। इसके बीजों को अधिक लम्बे समय तक संग्रहण कर नहीं रख सकते। पौधों को फील्ड में लगाने से पूर्व इन्हें रोपणी (नर्सरी) में तैयार किया जाता है। इस पेड में कापिसिंग क्षमता गजब की होती है अतः उन कोंपलों से कलमें तैयार कर नये पौधे भी तैयार किए जा सकते हैं।

यह एक बहुपयोगी एवं तीव्र वृद्धिवाला पेड़ है, जिससे कि इसको सड़कों के किनारे छायादार पेड़ के रुप में लगाया जाता है। इसकी लम्बी मूसला जडे होने के कारण यह 10 मीटर नीचे जमीन से पानी खींचने में सक्षम है तथा अपने चारों ओर नीचे उगने वाली वनस्पतियों के साथ पानी एवं मिनरल्स के लिये स्पर्धा नहीं करता। अतः इसके इस खास गुण के कारण इसे कृषि वानिकी के प्रयोग में भी लाया जा सकता है, इसका दूसरा खास गुण यह भी है कि यह वातावरण की निष्क्रिय नाइट्रोजन को अपनी जड़ों में एक बेक्टीरिया (राइजाबियम) की सहायता से स्थिरीकरण कर जमीन की उर्वरकता को भी बढ़ाता है। अतः चारागाह प्रबंधन में इस पेड़ का महत्व और भी बढ़ जाता है। शोध में यह पाया है कि इस पेड़ के पौधों को रोपणी में उगाने के लिये बहुत ही कम

करंज

रासायनिक खाद की आवश्यकता पड़ती है। रोपणी में 40 किलो प्रति हेक्टेयर से भी कम मात्रा में यूरिया डालने पर यह अच्छी मात्रा में वातावरण की नाइट्रोजन का स्थिरीकरण कर लेता है जबकि इससे अधिक मात्रा डालने पर स्थिरीकरण कम या बंद कर देता है। करंज का पेड़ 4–5 वर्ष के उपरांत परिपक्व होकर फल–फूल उगाना शुरु कर देता है। एक अनुमान के अनुसार एक अच्छा पेड़ औसतन 9 से 10 किलो तक बीज उत्पन्न करता है जोकि 100 से 1000 किलो बीज प्रति हेक्टेयर हो सकता है इसके बीजों से 25 प्रतिशत तक तेल निकल सकता है। इसके बीजों से बायोडीजल तैयार किया जाता है, वह विषहीन एवं सल्फर एरोमेटिक्स से मुक्त होता है अतः इसे लम्बे समय तक इस्तेमाल हेतु रखा जा सकता है। तेल निकालने के बाद इसकी खली खेतों के लिये अच्छे उर्वरक का काम करती है।

करंज का पेड़ लाख के कीड़े एवं चंदन के पेड़ के लिये उत्तम परपोषी (होस्ट) भी है। जानवर इसकी पत्तियों को खाना कम ही पसंद करते हैं। इसके फूलों को सड़ाकर बाग–बगीचों, घर आंगन में उगने वाले पौधों के लिए खाद के रुप में भी प्रयोग करते हैं। इसकी पत्ती में 3.5 प्रतिशत से 4.5 प्रतिशत

तथा तना एवं जड़ में 3 प्रतिशत तक नाइट्रोजन आंकी गई है। छाल से एक प्रकार का काला गोंद निकलता है जिसे जहरीली मछलियों के काटने वाले घाव पर इस्तेमाल करते हैं। जड़ों से प्राप्त सार को फोडों को ठीक करने में प्रयोग करते हैं। पिसे हुए बीज एवं पत्तियां एंटीसेप्टिक का कार्य भी करती हैं तथा इनकी कोमल डंड़ियों को दातुन के लिये भी इस्तेमाल किया जाता है। अनाज के गोदामों में इसकी सूखी पत्तियाँ रखने से कीड़े–मकोड़े दूर भाग जाते हैं एवं सूखे पेड़ को जलाऊ लकड़ी के काम में लाया जाता है।

मुख्य कीट

करंज के काष्ट, फूल व फल को अनेक प्रकार के कीट हानि पहंचाते हैं, जिसमें से मुख्य निम्न हैं:

बैसिट्रोपिस स्पेसीज: यह कोलियोप्टरा वर्ग व एन्थ्रिबिडी कुल की प्रजाति का कीट है और इसका झुंड करंज के मृत एंव सूखे काष्ट का छिद्रक है। इसकी एक वर्ष में दो पीढ़ियाँ होती हैं। इसकी इमर्जेन्स अप्रैल–अगस्त तक होती है।

लिक्टस एफ्रीकेनस और साइनोक्सीलोन प्रजातियां: यह कोलियोप्टरा वर्ग के लिक्टिडी एवं वोस्ट्राइकिडी जाति के छिद्रक कीट हैं और अनेक पादप के 'सैपवुड' व परिवर्तित काष्ट को नुकसान करता है। यह प्रारम्भ में अप्रैल–मई में निकलते हैं उसके बाद वर्ष भर निकलते रहते हैं, चूंकि ये कीट शुष्क एवं फर्नीचर काष्ट के छिद्रक हैं अतः इनका नियंत्रण करने के लिए हवा रहित कक्ष में कार्बनडाइसल्फाइड अथवा पैराडाइक्लोरोबेन्जीन से धूम्रीकरण किया जाना चाहिए।

स्ट्रोमेसियम बारबेटम: यह कोलियोप्टरा वर्ग के सिरेम्बाइसिडी कुल की प्रजाति है। यह अति नुकसानदायक छिद्रक कीट है, जो लगभग 350 किस्म के सभी स्थानों पर प्रयुक्त शुष्क काष्ट को हानि पहुँचाता है। अति विशिष्ठ परिस्थितियों में इसका जीवन चक्र 10 साल तक है। यह जून–जुलाई में निकलता है।

छिद्रक द्वारा क्षतिग्रस्त काष्ट को छिद्रों मे कार्बनडाइसल्फाइड अथवा पेराडाइक्लोरोबेन्जीन के सन्तृप्त विलियन डालकर पुटीन या गीली मिट्टी से बन्द करके नियन्त्रित किया जा सकता है।

कलैन्ड्रा लिनिएरिस: यह कीट कोलियोप्टरा वर्ग के करकुलिओनिडी कुल की प्रजाति है। इसका लार्वा बीजों को खाता है। बीजो को भण्डार कक्ष अथवा हवा बन्द स्थान में रखकर कार्बनडाइसल्फाइड धुम्रीकरण करके नियंत्रित किया जाता है।

माइलाब्रिस पुस्टुकाटा: यह कीट कोलियोप्टरा वर्ग के मेलौइडी कुल की प्रजाति है। यह कीट फूलों तथा कोंपलों (नये पत्तों) को क्षति पहुंचाते हैं। इसके वयस्क वर्षा ऋतु में अधिक पाये जाते हैं। इसका ''लार्वा'' टिड्डों के अंडों को खाता है। कीटनाशक ''रोगर'' का फूलों व पत्तों पर छिड़काव करने से नियंत्रण किया जा सकता है।

क्रोसोटाररसस सौन्डर्सी: यह कोलियोप्टरा वर्ग ''प्लेटिपोडाइडी कुल'' की प्रजाति का कीट है। यह कीट भारत में, साधारण वर्षा वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। इसका लार्वा सफेद, पगविहीन और बेलन के आकार का लगभग 5 मि.मी. लम्बा होता है। यह कीट सूखने वाले अथवा ताजे गिराये गये वृक्षों को छेदते हुए हार्टवुड की ओर प्रवेश–सुरंग बनाता है। यह सूखे लकडी को क्षति नहीं करता है इसके बीटल्स सितम्बर, नवम्बर और मार्च–अप्रैल में बहुतायत में उडते दिखाई देते है। इनका जीवनचक्र 2–3 माह का है।

(I) जाइलीवोरस वरमानिकस: यह कोलियोप्टरा वर्ग व ''स्कोलेटिडी'' कुल की प्रजाति है। यह करंज के अलावा बहुत से काष्ठ प्रजातियों के ताजा पातन व गिरे हुए काष्ठ को नुकसान करते हैं। इनको 'पिनहोल' अथवा 'सोटहोल बोरर' कहते हैं। यह वुडी टिश्यु या टिम्बर में होते हैं।

एस्पोन्डिलिया पोंगामी: यह डिप्टरा वर्ग व आइटोमिडिटी कुल / सेसिडोमाइडी: प्रजाति का कीट है। इसका मैगेट फूलों में गोलाकार गॉल्स बनाते हैं। 'रोगर' कीट नाशक का छिड़काव करने से नियंत्रित

किया जाता है।

माइक्रोडिप्लोसिस पोंगामी: यह डिप्टरा वर्ग व आइटोमिडिटी कुल / सेसिडोमाइडी: प्रजाति का कीट है। इनके मैगट कोंपलों में वुडी गॉल्स वुडी गाल्स बनाते हैं। रोगर' कीट नाशक छिड़काव नियंत्रण उपाय है।

एल्यूरोल्केवा कम्प्लेक्ष : यह हेमिप्टरा वर्ग व एल्यूरोडिडी कुल का कीट है। यह पत्तियों का रस चूसते हैं। मोनोक्रोटोफास / रोगर कीट नाशक का छिड़काव करने से नियंत्रित होता है।

लेसीफर लैका : यह हेमिप्टरा वर्ग व कोक्सिडी कुल का कीट है। यह करंज के तने व टहनियों का रस चूसते हैं। उपरोक्त मोनोक्रोटोफास / रोगर के कीट नाशक के छिड़काव से नियंत्रित होता है।

(i) **कोप्टोसोमा सेरिब्रेरियम :** हेमिप्टरा वर्ग पेन्टाटोमिडी कुल के इस कीट के वयस्क व अवयस्क (Nymphs) पौधों का रस चूसते हैं। मोनोक्रोटोफास / रोगर छिड़काव से नियंत्रित होता है।

(ii) **साइल्कोपेल्टा सिक्सिसफोलिया :** हेमिप्टरा वर्ग का कीट है। इसके वयस्क व अवयस्क पेड़ की टहनियों का रस चूसते हैं। मोनोक्रोटोफास / रोगर छिड़काव से नियंत्रित होता है।

लेपिडोप्टरा:

I) यूकोस्मा वैलानोप्टिका

यह यूकोस्मिडी कुल का निष्पत्रक कीट है और पत्तियों को हानि पहुंचाता है।

ii) यूकोस्मा डिफेन्सा

यह लिथोकोलेटिस वर्गुलाटा ग्रेसिलाराइडी कुल का कीट है जो पत्तियों को मोडते हुए हानि पहुंचाता है।

नैप्टिस जम्बा जम्बा: यह निम्फैलिडी कुल का निष्पत्रक कीट है और पत्तियों को हानि पहुंचाता है ।

माईलोइस पेक्टिनीकोरनेला: यह पाइरेलिडी कुल का निष्पत्रक कीट है जो पत्तियों को हानि पहुंचाता हैं।

क्लेनिस फालेरिस: यह स्पिन्जिडी कुल की प्रजाति है इसके सुंडी पत्तियों को खाते हैं।

नियंत्रण: निष्पत्रक कीटों का नियन्त्रण करने के लिए मोनोक्रोटोफास / रोगर आदि कीट नाशक रसायन का पत्तों पर छिड़काव किया जाना चाहिए।

लाख के हानिकारक कीट एवं उनकी रोकथाम

डॉ. अरविन्द कुमार, श्री रामेश्वर दास
श्री एस.एन. वैद्य एवं श्री प्रवीन कुमार नाग
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

लाख, जिसका उत्पादन मुख्यतः कैरिया लेका नामक कीट के शरीर के स्राव द्वारा किया जाता जो वर्ग–हेमीटेरा एवं परिवार– लेसीफेरिडी का पेडो का रस चूसने वाला कीट है। लाख कीट को विभिन्न क्षेत्रीय नामों से भी जाना जाता है– बंगाली में गाला; गुजराती में लाक; तेलगु में कोम्मोलका; तमिल में कोमबुरकी; मलयालम में अरक्कु एवं अंबालू; संस्कृत में लाक्षा तथा झारखंड एवं बिहार में इसे लाह नाम से जाना जाता है। लाख एक प्राकृतिक राल है जो कीट के शरीर में फैले छिद्रों से श्रावित होता है तथा हवा के सम्पर्क में आते ही कठोर हो जाता है। यह क्रीम से लालिमा लिए चमकीले रंग का होता है जिससे मुख्यतः लाख, रंग एवं मोम प्राप्त कर विभिन्न वस्तुओं के निर्माणों में उपयोग किया जाता है जैसे पालिश निर्माण, वानिकी, खिलौनों, सौन्दर्य सामग्री, कपड़ों तथा ऊन की रँगाई इत्यादि। लाख का उपयोग आदि काल से होता आ रहा है जिसका प्रमाण पौराणिक कथा महाभारत में मिलता है जिसमे कौरवों द्वारा पांडवों को मारने के लिए षड्यंत्र के फलस्वरुप यातुग्रह या लाक्षागृह का निर्माण किया गया था। लाख का इस्तेमाल भवन की साज सज्जा में उपयोग होने वाली वस्तुओं के निर्माण में रंग के रुप में किया जाता था जिसका विवरण बादशाह अकबर द्वारा रचित "आईने अकबरी" में मिलता है। लाख एक जीव जनित प्राकृतिक राल है अतः इसका मानव अथवा पर्यावरण पर कोई दुष्प्रभाव नहीं होता। इसका उपयोग विभिन्न खाद्य पदार्थों जैसे फल, सब्जी इत्यादि को सुरक्षित रखने के लिए लेप के रुप में भी किया जाता है। प्रमुख रुप से लाख की खेती भारत में ही होती है तथा लाख के उत्पादन में भारत विश्व का अग्रणी देश है। भारत विश्व के लाख उत्पादन में लगभग 80 प्रतिशत की हिस्सेदारी करता है। इसके साथ–साथ थाईलैंड, मलेशिया, चीन, पाकिस्तान, श्रीलंका, एवं बर्मा इत्यादि देशों में भी लाख उत्पादन किया जाता है।

लाख कीट एक बहुत ही नरम शरीर वाला जीव है जोकि बहुत सारे परजीवी, परभक्षी कीटों एवं बीमारियों के प्रति अति संवेदनशील होते है। प्रकृति में लाख कीट के शिशु कीट निकलने से लेकर इसके पूर्ण परिपक्व होकर पुनः अंडे देने तक की विभिन्न अवस्थाओं में कई प्रकार के शत्रु कीट हानि पहुँचते है। इन शत्रु कीटों के आक्रमण से बड़ी संख्या में कीट की विभिन्न अवस्थाएं नष्ट हो जाती है परिणाम स्वरुप लाख उत्पादन में 30 से 40 प्रतिशत तक की भारी हानि हो जाती है। अभी तक के अनुसन्धानों से मिली जानकारी के अनुसार 16 परभक्षी कीट (Predator) की पहचान की जा चुकी है। इन शत्रु कीटों में मुख्यतः तीन ऐसे परभक्षी कीट है जो लाख कीट को सबसे ज्यादा हानि पहुँचते है जिनका विवरण निम्नवत है।

1. सफेद पतंगा (युवलेमा अमेबिलियस): यह कीट भारतवर्ष के सभी उत्पादक क्षेत्रों में पाये जाते हैं। इसका वयस्क कीट बादामी रंग का होता है तथा अगले पंख पर गहरे रंग की धारिया होती है। सफेद तितली लाख कीट ग्रसित डलियों के उपर 0.35 मीमी के अपने अंडे दे देती है। जिनसे सफेद रंग के लार्वा/पिल्लू निकाल कर लाख के कोश में बनाकर अंदर जाकर लाख को क्षति पहुँचाता है। जो बढ़ कर 16 मी.मी. तक लंबे हो जाते है और सीधे तौर पर लाख फसल को खाकर हानि पहुँचाते है। यह कीट

सफेद पतंगा द्वारा बनाया गया निवास छिद्र

युवलेमा वयस्क

अंदर ही अंदर लाख को खाकर खोखला कर देता है। एक सफेद तितली का पिल्लू अपने जीवन काल में लगभग 60 तक लाख कीट कोष को खाकर नुकसान पहुँचाता हैं। यह कीट एक वर्ष में करीब छः बार अपना जीवन चक्र पूरा करता हैं। इस कीट का प्रकोप वर्षा काल में अधिक होता है तथा शीतकाल में यह शुसुप्त अवस्था में चला जाता है तथा वयस्क कीट जनवरी से मार्च माह में बाहर निकलता है।

2. काला पतंगा (सूडोहाइपोटोपा पलवेरिया): काली तितली भी भारत वर्ष के सभी लाख उत्पादक क्षेत्रों में प्रायः पाये जाते हैं। इसका व्यष्क कीट काले रंग का होता है तथा पिछले पंख सफेद रंग के होते हैं। इनके लार्वा/पिल्लू लाख कीट को अन्दर ही अन्दर नुकसान पहुंचाते है। जिससे लाख अन्दर से खोखली हो जाती है। पिल्लू जो काले रंग के 12 मि. मी. तक लंबे होते हैं एक लार्वा अपने जीवन काल में लगभग 45 से 50 परिपक्व कोश को नुकसान पहुँचाता है। यह कीट लाख कटाई के बाद भंडारण में भी लाख को क्षति करते हैं जिससे भंडरण किए गये लाख की मात्रा तथा गुणवत्ता दोनों में भारी कमी आती है। यह कीट एक वर्ष में पाँच बार अपना जीवन चक्र पूरा करते है।

3. हरा पतंगा (काइसोपा प्रजाति): परभक्षी हरा पतंगा लाख लगी डालियों पर या पेड़ो की डालियों पर अंडे देती हैं। शुरुआत में अंडे हल्का हरे रंग का होता है। इसका प्रकोप लाख कीट की शुरु की अवस्थाओं में अधिक होता है। यह छेद नहीं बनाकर इसका लार्वा अपने मुखांगों से सीधे तौर पर लाख कीट के लार्वा को खाकर नुकसान करता है। हरा पतंगा वर्षा काल में अपना जीवन चक्र 27 दिनों में पूरा करता है। परंतु ठंड के मौसम में 54 दिन का समय लगता है।

परजीवी कीट (Parasites): परजीवी कीट मुख्य रुप से मादा लाख कीट अथवा उसके अन्दर विकसित हो रहे अंडों को हानि पहुंचते है। प्रभावित लाख कोश ऊपर से देखने पर उसमे छोटे–छोटे छेद दिखाई देते हैं। परजीवी कीट द्वारा लाख फसल को औसतन 8–10 प्रतिशत नुकसान होता है। परंतु कभी–कभी वातावरण का बदलाव तथा परजीवी के प्रकोप से 50 प्रतिशत तक फसल नस्ट हो जाती है।

काला पतंगा (सूडोहाइपोटोपा पलवेरिया) की विभिन्न अवस्थाएं

वयस्क पतंगा

लाख पर लगा लार्वा और प्यूपा

अभी तक पूरे भारत में 25 से भी अधिक परजीवी कीटों की पहचान की जा चुकी है जिनमे से प्रमुख परजीवी कीट जो प्रमुख लाख उत्पादक क्षेत्रों में बहुतया में पाये जाते है के बारे में विवरण निम्नलिखित है:

वर्ग- हायमेनोटेरा: एनसेरटिडी

(Hymenoptera: Encyrtidae)

1. अतरोपाटेस हौत्तेफल्ली (Atropates hautefeuilli)
2. अनिसीटस डोडोनिया (Anicetus dodonia)
3. एरेनेसेर्टस डेविटजी (Erencyrtus dewitzi)
4. परागिनीयस्पिस इंडिकस (Parageniaspis indicus)
5. परिक्थोड्रिनस क्लाविकोर्निस (Parechthrodryinus clavicornis)
6. टक्रिडिफेगस टेकरिडी (*Tachrdiaephagus tachrdiae*)
7. टेक्रिडिफेगस सोमेरविलली (*Tachrdiaephagus somervilli)*

वर्ग-हायमेनोटेरा: यूलोफिडी

(Hymenoptera: Euluphidae)

1. यूपोलमस टेकरिडी (*Eupelmus tachrdiae*)
2. टेट्रास्टिकस परप्युरियस (*Tetrastichus purpureus*)

वर्ग-हायमेनोटेरा: ब्रकोनिडी

(Hymenoptera: Braconidae)

1. अफ्रस्तोब्रेकोन फ्लाविपेन्नीस (*Aphrastobracon flavipennis*)

परजीवी कीट द्वारा बनाए गए छिद्र

हरा पंतगा (क्राइसोपरला) कीट की विभिन्न अवस्थाएं

वयस्क पतंगा

लार्वा

अण्डे

2. ब्रकोन ग्रीन (*Bracon greeni*)
3. कामपायलोनूरस इंडिकस (*Campyloneurus indicus*)

वर्ग-हायमेनोटेरा: एफलनिडी

(Hymenoptera : Aphelinidae)

1. **कोक्कोफेगस निग्रोप्लुरोन** (*Coccophagus nigropleurum*)
2. **कोक्कोफेगस स्कुटेटस** (*Coccophagus scutatus*)

3. **कोक्कोफेगस तिसकिरकी**
(*Coccophagus tscirchii*)

4. **यूरेमयकोनेमा एफेलेनोडेस**
(*Eurymyiconema aphelinoides*)

5. **मरीयत्ता जवेन्सिस** (*Marietta javensis*)

6. **मरीयत्ता लेओपरडीना**
(*Marietta leoperdina*)

कीट ग्रस्त लाख फसल की पहचान

1. जिन लाख या लाख फसल पर छिद्र दिखते हो वह लाख बीज परजीवी कीट ग्रस्त होता है।
2. जिन लाख बीजों में जहाँ – तहाँ जाले बने हो तथा हटाने पर लाख के टुकड़े निकले तो वह परभक्षी कीट द्वारा ग्रस्त रहता है।
3. लाख कोश में यदि गुम्बद नुमा उठा रहे तो उस लाख कोश के अंदर परभक्षी कीट हो सकता है।
4. यदि लाख फसल काले रंग का हो तथा छूने पर आसानी से टूट जाए तो वह कीट ग्रस्त है।

इन परभक्षी एवं परजीवी कीटों की रोकथाम के लिए निम्न उपाय करने चाहिए:

क) यांत्रिक विधि

ख) व्यवहारिक विधि

ग) रासयानिक विधि

(क) यांत्रिकी विधि: इस विधि में 60 मेस के न्यालोन (10" X 4") की जाली में लाख बीहन भरकर संचरण करना चाहिए। ऐसा करने से लाख कीट, नायोलान जाली से निकालकर लाख पोशक डलियों पर बैठ जाते हैं परन्तु दुश्मन के लार्वा/पिल्लू, डिम्क या वयस्क जाली के अंदर रह जाते हैं। इस प्रकार इस विधि द्वारा बीहन लाख के अंदर शत्रु कीट नष्ट हो जाते है तथा आगामी नयी फसल पर दुश्मन कीट का प्रकोप नहीं हो पाया है। यह विधि परजीवी एवं परभक्षी कीटों के लिए बहुत ही कारगर साबित हुई है। क्रायसोपेर्ला परभक्षी के रोकथाम के लिए इसके अंडों को इकट्टा कर नष्ट कर देना चाहिए तथा इसके लार्वा को भी चुन कर नष्ट कर सकते हैं।

(ख) व्यवहारिक विधि :

1. परिपक्व बीहन लाख को एक सप्ताह पूर्ण (गर्मी में) काट कर संचारण करना चाहिऐ। ऐसा करने पर लाख कीट का लार्वा निर्गमन के पूर्व शिशु कीटों के वयस्क, डिम्मका बाहर नहीं आते और लाख की पैदावार या लाख फसल को दुश्मन कीटों से बचाया जा सकता है।
2. लाख संचारण के पश्चात् सही समय फूंकी उतरकर तुरंत छील देने से फूंकी में स्थित शत्रु कीट के अंडे, लार्वा शंखि बहुत हद तक नष्ट हो जाते हैं और अगली फसल में इनका संक्रमण नहीं होगा।
3. बचे हुए बीहन लाख, खरीफ/बीहन लाख (Rejected Lac) तथा फूंकी लाख को छीलकर या कारखाने में भेजें या प्लास्टिक के बोरी में भरकर रखें। इस प्रकार शत्रुकीटों के प्रकोप से आगामी फसल को बचाया जा सकता है।
4. खण्ड प्रणाली विधि द्वारा दुश्मन कीटों के प्रकोप से बहुत हद तक निजात पाई जा सकती है, खासकर अरी खण्ड के माध्यम से आगामी फसल दुश्मन कीटों से कम प्रभावित होती है।

(ग) रासायनिक विधि:

1. लाख या लाख फसल पर लगे कीटों का निवारण कीटनाशक द्वारा किया जा सकता है। रासायनिक कीट नाशक दवा प्रोफेनोफोस 40 ई सी (12.5 मि. ली/10 ली) या ईथोफेन्प्रोक्स (नुकील) 0.02% (20 मी. ली/10 ली) संचारण के एक माह बाद या फूंकी उतारने के एक सप्ताह बाद देने से बहुत हद तक दुश्मन कीट से निजात पाई जा सकती है।
2. आवश्यकता पड़ने पर एक माह बाद दोबारा भी छिड़काव किया जा सकता है।
3. लाख फसल पर हरा पतंगा का प्रकोप हो तो रासयानिक कीटनाशक दवा डाईकलोरोवास 76 ई सी (नुवान) का 0.03% घोल के प्रयोग से हरा पतंगा से निजात पाई जा सकती है। डाईकलोटोवास कीटनाशक दवा का छिड़काव संचारण के 40–45 दिन बाद करनी चाहिए।

जन उपयोगी पलाश

डॉ. ममता पुरोहित
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

मैदानी क्षेत्रों में सिंदूरी पुष्प–गुच्छों से ऋतुराज बसंत के आगमन की सूचना देने वाला पलाश फेबेसी कुल का अति प्राचीन वृक्ष है जिसका उल्लेख 'वेदों' में अनेक स्थानों पर मिलता है। इसे फ्लेम आफ दि फारेस्ट नाम रक्त वर्ण पुष्पों के कारण ही मिला है क्योंकि पलाश जब फूलता है तो पूरे जंगल में लालिमा छा जाती है। आयुर्वेद के जनक चरक और सुश्रुत ने पलाश के समूचे वृक्ष की उपयोगिता पर प्रकाश डाला है। महाकवि कालीदास, रहीम, हर्ष, हरिभद्र, ईसुरी एवं अन्य अनेक कवियों ने पलाश के माध्यम से अपने उद्‌गार व्यक्त किये हैं। भारत में राजे–रजवाडों के समय राजा और प्रजा दोनों पलाश के पुष्पित होने पर हर्ष और उल्लास के साथ पलाश पर्व मनाकर वर्ष को खुशनुमा बनाने के लिए संकल्प लेते थे। पलाश की तो पहचान ही सिंदूरी रंग के पुष्प है। पलाश में सफेद व पीले रंग के फूल भी पाये जाते हैं परन्तु इन वृक्षों की संख्या बहुत ही कम है। प्रस्तुत आलेख में पलाश वृक्ष के विभिन्न भागों के उपयोग का वर्णन किया गया है।

नामावली: पलाश का वैज्ञानिक नाम ब्यूटिआ मोनोस्पर्मा है। संस्कृत में इसे ब्रम्ह पादप, किंशुक, क्षार श्रेष्ठ तथा रक्त पुष्पक आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। हिन्दी में इसे पलाश, टेसू, ढाक आदि नामों से जाना जाता है। कहीं–कहीं ग्रामीण इसे हैला कहकर भी बुलाते हैं।

आकारकीय: पलाश लघु या मध्यम आकार का पर्णपाती वृक्ष है जिसकी ऊँचाई 20 से 25 मीटर तक होती है। इसके फूल बाहर से मखमली नारंगी पीले रंग के गंधहीन तथा पेपिलियोनेसियस प्रकार के होते हैं जिसमें 5 पाँच पंखुड़ियाँ 1 ध्वजक, 2 नोतल तथा 2 पंख होती है। फल 10 – 20 से.मी. लम्बी 2 – 4 से0मी0 चौडी, एक बीजीय अस्फुटित फल्लियाँ होती है जो मार्च अप्रेल में पक जाती हैं। बीज लाल–कत्थई रंग के चपटे, अंडकार या गुर्दाकार होते हैं। पत्ती में एक लम्बा पत्र वृन्त तथा तीन पत्रक होते हैं। मूसला जड़ रेशेदार होती है।

वास स्थान: पलाश भारत के विभिन्न जलवायु वाले लगभग सभी क्षेत्रों में पाया जाता है। जड़ चूसकों द्वारा पुनरूत्पादित होने के कारण तथा नवोदभिदों की विभिन्न प्राकृतिक दशाओं में अद्‌भुत स्थापन क्षमता के कारण यह अत्यधिक चराई के स्थानों तथा कृषि के लिए अधिकृत भूमि में भी तीव्रता से वृद्धि करता है। इसके बीजों में बिना किसी उपचार के शत–प्रतिशत अंकुरण पाया जाता है।

उपयोग: आदि काल से पलाश मानव समाज की सत्त सेवा कर रहा है। इसके विभिन्न भागों के उपयोग इस प्रकार है:–

लकड़ी: इसकी लकड़ी में इमारती गुण बहुत कम होता होता है।

1. ईधन के रुप में।
2. हवन की समिधा के रुप में।
3. बाड़ी के खम्बों के रुप में।
4. कृषि उपकरण बनाने में।

छाल: वृक्ष के तने से छाल पट्टियों के रूप में निकलती है।

1. छाल से प्राप्त अर्क नजला व खांसी के उपचार में

पलाश वृक्ष

पत्ती से निर्मित दोना पत्तल

काम आता है ।

2. छाल लकड़ी का गट्ठा (जलाऊ लकड़ियों का गट्ठा) बांधने के काम आती हैं।

पत्ती: पत्तियां शीतल, रूक्ष, ग्राही व कफवात शामक होती हैं।

1. दोना पत्तल बनाने में।
2. चारे के रुप में।
3. फोड़े, मुहाँसे, गिल्टी व हीमोराइड्स के उपचार में।

फूल: फूल गन्धहीन होने के बाद भी आकर्षक होने के कारण परागण के लिए कीटों को आकर्षित करते हैं।

1. फूलों से पीले रंग की डाई प्राप्त की जाती है जो खाद्य पदार्थ, कपड़ा व लकड़ी का सामान रंगने के काम आती है।
2. चेचक, पीलिया तथा चर्म रोग होने पर इस डाय से रंगे कपड़े पहनने से रोग नहीं बढता है।
3. होली पर्व पर पलाश के फूलों का रंग उपयोग करते है।

बीज: बीजों में 8–10 प्रतिशत काइनों आइल, 18 प्रतिशत एल्युमिनाइड तथा शर्करा होती है।

1. बीज ज्वर, मलेरिया, गोलकृमि व फीता कृमि के उपचार में।
2. बीज व इसके तेल में कृमिनाशक गुण होता है।
3. खली प्रोटीन से भरपूर होती है।

गोंद: इसमें कार्नेटिक अम्ल व गॉलिक अम्ल 50 प्रतिशत, पिच्छिल द्रव्य व क्षार 2 प्रतिशत होते हैं। इसे पुनिया गोंद या कमरकस कहते हैं। व्यापारिक नाम बंगाल कीनों है।

1. यह मुख रोग, अतिसार, पेचिस, उदर संबंधी रोग, त्वचा रोगों व स्त्री रोगों में उपयोगी है।

वृक्ष: यह पर्णपाती होता है एवं इसकी नयी पत्तियां मार्च–अप्रैल में निकलती है।

1. पलाश का वृक्ष लेसीफर लेक्का नामक कीट का आश्रय स्थल होता है जो लाख (रेजिन) स्त्रावित करता है। यह लाख खिलौने, ग्रामाफोन रिकार्ड, गहने व खोखले स्वर्ण आभूषणों में भरने के काम आती है।

अपेक्षित कार्य: पलाश की उपयोगिता तथा सफेद एवं पीले रंग के फूलों वाले वृक्षों की सीमित संख्या को देखते हुए वन विभाग व अनुसंधान संस्थानों को चाहिए कि इन वृक्षों से बीज एकत्र कर पौध तैयार करवायें जिन्हें पड़ती भूमि, खेतों की मेढ़ आदि स्थानों पर लगाने से पर्यावरण हरा भरा होगा तथा दोना–पत्तल व लाख व्यवसाय से रोजगार के अवसर बढेंगे।

पलाश वृक्ष लाख कीट का आश्रम स्थल

लेन्टानाः हानिकारक खरपतवार

श्री एस. एल. मीणा एवं **डॉ. राजेश कुमार मिश्रा**
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

लेन्टानाः लेन्टाना (कामनी–धामनी) जंगली झाड़ी को सन् 1809–1810 के आसपास अंग्रेजो द्वारा सुंदर रंग–बिरंगे फूलों के कारण आस्टेलिया से भारत लाया गया था। परन्तु आज यह अवांछित प्रजाति के रूप में पूरे देश में फैल गया है। इसकी उपस्थिति राजस्थान, महाराष्ट, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, पंजाब, जम्मू–कश्मीर, बिहार, असम एवं बिहार के विभिन्न भागों में दर्ज की गई है। गांव, शहर, पहाड़, मैदान सभी जगह यह अच्छी तरह फल–फूल रहा है। भारत में इसकी 8–9 प्रजातियां पायी जाती है।

नामावलीः लेन्टाना को हिन्दी में पंचफूली बूटी, पहाड़ी में फुलनू, तमिल में उन्नीचाडी, मलियालम में एरिप्पू, मराठी में धनेरी, तेलगू में पुलीखुमपा तथा कन्नड में हेसिका के नाम से पुकारा जाता है। इसका लेटिन नाम लेन्टाना कमारा है।

परिचयः यह वरबीनेसी कुल का खरपतवार है, जो बहुवर्षीय तथा झाड़ीनुमा होता है। इसकी लंबाई 2 फीट से 10 फीट तक पायी जाती है। कभी–कभी यह पेड़ों के सहारे से 15 फीट की उंचाई तक भी पहुंच जाता है। इसका तना एवं शाखाऐं काष्ठीय तथा कांटेदार होती है। कुछ प्रजातियों में तना एवं शाखाओं पर रोए भी पाये जाते है। इसकी पत्तियां सामान्यतः छोटी खुरदरी एवं गहरे हरे रंग की होती हैं। फूल, पीले, लाल, गुलाबी, सफेद, बैगनी एवं क्रीम रंग के होते है। हरे रंग के छोटे–छोटे फल गुच्छे में लगते हैं जो पकने पर काले बैंगनी तथा कुछ, प्रजातियों में कत्थाई रंग के होते है । पके फलों को ग्रामीण स्वाद से खाते है। इसकी सतही जडें ज्यादा गहरी नहीं जाती है। परन्तु पार्श्व शाखायें शाखित होकर अधिक दूरी तक फैली रहती है। इसकी उत्तम बढवार फरवरी के अंतिम सप्ताह से जून के अंतिम सप्ताह तक देखी गई है। फूल एवं फलों का समय जून से अक्टूबर के द्वितीय सप्ताह तक है । अक्टूबर के द्वितीय सप्ताह के बाद यह पौधा सुशुप्तावस्था में चला जाता है। सामान्यतः यह झाड़ी खाली जगहों पर रेलवे लाईन के किनारें, नहरों के किनारे, सडकों के किनारे आदि स्थानों पर देखने को मिलती है।

वास स्थानः यह प्रजाति उपजाऊ भूमि, बंजर भूमि तथा निचली भूमि से लेकर 1700 मीटर उंचाई तक भी पायी जाती है । गर्मी के अधिक तापमान (40° C- 47° C) का इस पर कोई प्रभाव नहीं पडता है । यह 100 मिलि. से 1447 किमी. वर्षा वाले स्थानों में फलता–फूलता रहता है।

प्रसारः

पक्षियों द्वाराः पक्षी इसके मीठे फलों को खाते समय बीज भी निगल जाते है। अपशिष्ट के साथ निकले बीज अनुकूल अवस्था आने पर अंकुरित होकर अपना वास स्थान बना लेता है।

पशुओं द्वाराः यह पशुओं के चारे के रुप में भी उपयोग किया जाता है फलस्वरूप अपशिष्ट के साथ इसके बाहर आकर अनुकूल अवस्था प्राप्त होने पर अंकुरित हो जाते है। इसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने वाले मुख्य पालतू पशु हैं – बकरियां, भेड़े, गाय, बैल, भैंस आदि तथा जंगली जानवर – हिरन, सांभर, बारहसिंगा, नीलगाय, खरगोश आदि।

मनुष्य के द्वाराः लाल, नारंगी, बैगनी, सफेद, पीले एवं गुलाबी रंगों के आकर्षक फूलों के कारण मनुष्यों द्वारा इसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जाता है। टहनियों के माध्यम से खेतों की मेडों पर, घरों के सामने हेज के रुप में, शासकीय एवं निजी बगीचों में सुंदरता बढ़ाने के लिए लगाया जाता है। हानि– लेन्टाना पशुओं और वृक्षों के लिए हानिकारक है।

पशुओं पर प्रभाव

1. इसकी पत्तियां स्वादिष्ट होने के कारण पशुओं का रुचिकर चारा है। रासायनिक विश्लेषणों से ज्ञात हुआ है कि इसमें विषाक्त तत्व जैसे लेटडिन, लैनकेमेटेन आदि होते हैं जिनके कुप्रभाव से पशुओं में भूख का न लगना, पीलिया, मुंह से अधिक लार का गिरना आदि रोग हो जाते है। रोगावस्था में यदि पशुओं को पशु चिकित्सक को नहीं दिखाया जाये तो पशुओं की मृत्यु तक हो जाती है।
2. यह विषाणुओं एवं हानिकारक कीटों को भी आश्रय देता है । जिसके कारण जंगली वृक्ष प्रजातियों पर रोग बढने लगते हैं।

उन्मूलन: लेन्टाना के विस्तार पर निम्नलिखित विधियों द्वारा रोक लगायी जा सकती है –

1. यांत्रिक विधि: झाडी को जडों सहित निकलवाकर जलाकर नष्ट किया जाता है। परन्तु इसकी कापिसिंग क्षमता अत्यधिक होने के कारण पुनः झाडी में विकसित हो जाता है। यदि थोडी सी भी जड़ या टहनी आदि रह जाती है तो यह पुनः झाडी में विकसित हो जाता है। चूंकि इस विधि में अधिक समय एवं पैसा अधिक लगता है तथा सतही जड़ों के कारण जो लंबाई में दूर–दूर तक फैली रहती है के टूट जाने से उसी स्थान पर कापिसिंग हो जाती है, इसलिए इस विधि द्वारा पूर्ण रुप से उन्मूलन संभव नहीं है।

2. रासायनिक विधि: भिन्न–भिन्न रसायनों से इसके विस्तार पर नियंत्रण पाया गया है। परन्तु उष्णकटिबंधीय वन अनुसंधान संस्थान, जबलपुर द्वारा विकसित ग्लायको फोरेट के 2.50 किगा. को 500 ली. पानी में घोलकर प्रातरूकाल छिड़काव करने से इसका पूर्ण रुपेण उन्मूलन किया जा सकता है। इस रसायन का छिड़काव करते समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि छिड़काव से 12 घंटे के दौरान तक वर्षा न हो अन्यथा पुनः छिड़काव करना आवश्यक होता है। छिड़काव से पहले जुलाई अगस्त के प्रथम सप्ताह के दौरान लेन्टाना को 2.5 फीट उपर से काट दिया जाता है। कटिंग की झाड़ी से अगस्त–सितम्बर में निकली कापिस के उपर लिखी मात्रा में ग्याकोफोरेट का छिड़काव कर दिया जाता है, जिससे इसकी झाड़ियाँ सूखकर पूर्णतः नष्ट हो जाती है। परन्तु रासायनिक विधि द्वारा उन्मूलन में पर्यावरण हितैशी पेड़–पौधे, घास प्रजातियाँ कीट आदि भी नष्ट हो जाते है साथ ही यह विधि खर्चीली भी होती है।

3.जैविक विधि: इस विधि में लेन्टाना को खरपतवार नाशक कीटों, पशुओं एवं पेडों के द्वारा नष्ट किया जाता है । UNDP, यूनाइटेड नेशन्स डेवलपमेंट प्रोग्राम के तहत इमली खेड़ा, छिन्दवाड़ा में लगाये गये बांस प्लान्टेशन में लेन्टाना अधिक मात्रा में था परन्तु जैसे–जैसे बांस ने अपनी बढ़ोत्तरी शुरु की वैसे–वैसे लेन्टाना जड से ही समाप्त हो गया। अर्थात् इसका नियंत्रण बांस भी है। अनुसंधान से यह पता चला कि बांस की पत्तियों में अधिक मात्रा में सिलिका होती है, जो कि लेन्टाना एवं इससे संबंधित दूसरी प्रजातियों का अपने नीचे पनपने नहीं देती है। कुछ पत्तियां खाने वाले कीडे जैसे टेकलियोनेमिया स्कुपुजेसा (टिड्डी) इसकी पत्तियों को खाकर इसे नष्ट करने में पूर्णतः सक्षम है। यह कीडा प्रारंभ में पत्तियों का रस चूसता है जिसके फलस्वरूप पत्तियां पीली पडकर गिर जाती है। बाद में पौधा धीरे–धीरे– सूखकर नष्ट हो जाता है।

4. उपयोग: लेन्टाना के निम्नलिखित उपयोग हैं –

1. गरीब लोग सूखी लकडियों को ईंधन के रूप में उपयोग में लाते है।
2. पत्तियों से कम्पोस्ट बनाया जा सकता है।
3. पौधो को सुंदरता के लिये बगीचों एवं सडको के किनारे लगाया जाता है।
4. यह खेतों में खरपतवार को नष्ट करता है, इसकी पत्तियों को खाद के रूप में धान के खेतों में डाला जाता है। जो नाइटोजन की कमी को दूर करने के साथ–साथ ही खरपतवार पर भी नियंत्रण करती है ।

पारिस्थितिकीय असंतुलन एवं जैवविविधता संरक्षण की चुनौतियाँ

श्री विकास, डॉ. राकेश कुमार एवं डॉ. वाई. सी. त्रिपाठी
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

प्रस्तावना

प्रकृति की व्यवस्था स्वयं में पूर्ण है। प्रकृति के सारे कार्य एक सुनिश्चित व्यवस्था के अतंर्गत होते रहते हैं। मानव ने अपनी सुख, सुविधा और अर्थ के विकास के लिए धरती का अत्याधिक दोहन कर दिया है। समुद्र, आकाश और भूगर्भ में आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप आज धरती की हालत पहले की अपेक्षा अधिक खराब हो चली है। बिगड़ते पर्यावरण से अस्त–व्यस्त होते पारिस्थितिकी तंत्र के भीषण परिणाम सामने आ रहे हैं। एक अनुसंधान रिपोर्ट के अनुसार भूकंप आदि आपदाओं के कारण धरती अपनी धूरी से 2.50 से 3 डिग्री तक खिसक गई है जिसके कारण भी जलवायु परिवर्तित हो गया है। हवा दूषित होती जा रही है। खाद्यान संकट बढ़ रहा है। जनसंख्या विस्फोट से पशु, पक्षियों और जलचर जंतुओं का अस्तित्व खतरे में हो चला है। परिस्थितिकी तंत्र में व्यक्तिक्रमों के लिए स्वाभाविक रूप से मानव खुद ही जिम्मेवार है।

ग्लोबल वार्मिंग जनित जलवायु परिवर्तन

शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा प्रकृति से हो रही दिन रात छेड़ छाड़ शनैः शनैः अपना कुप्रभाव बढ़ते प्रदूषण के रूप में तो दिखा ही रही है, परन्तु इन सबका सबसे गम्भीर कुप्रभाव धरती के क्रमशः बढ़ते तापक्रम के रूप में सामने आ रहा है। औद्योगिकरण और वनों के कटने से हो रही ग्लोबल वॉर्मिंग के चलते दुनिया के ग्लैशियर लगातार पिघल रहे हैं और जलवायु परिवर्तन हो रहा है। उल्लेखनीय है कि समुद्र, जंगल और ग्लेशियर तीनों मिलकर धरती की 90 प्रतिशत गर्मी को तो रोक ही लेते हैं साथ ही धरती के मौसम और पर्यावरण को जीवन जीने के लायक बनाए रखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतीत और वर्तमान के आँकड़े के आधार पर पता चला है कि धरती का तापमान पूरे एक डिग्री बढ़ चुका है। हिमालय के ग्लेशियरों के पिघलने की गति बढ़ती जा रही है, समुद्र का जल स्तर 1.5मिलीमीटर प्रतिवर्ष बढ़ रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण तेज हवाएँ चलने से बड़ी मात्रा में पुरानी बर्फ के टुकड़े अपने मूल क्षेत्रों से बहकर पश्चिमी क्षेत्र जो अपेक्षाकृत गर्म है, की ओर जा रहे हैं। पहाड़ पर हिम नदियाँ कम हो रही हैं और नीचे पानी कम होता जा रहा है। फिलहाल अंटार्कटिका की बर्फ पिघल रही है जिसका सीधा दुष्प्रभाव वहाँ की स्थानीय प्रजातियों पर पड़ रहा है। कहीं सुनामी तो कहीं भूकंप और कहीं तूफान का कहर जारी है। हाल ही में जापान में आई सुनामी ने दुनिया को प्रलय की तस्वीर दिखा दी।

घटते ओजोन परत के दुष्परिणाम

ओजोन परत के बारे में लोग आम तौर पर भले ही ज्यादा न जानते हों लेकिन यह पृथ्वी और पर्यावरण के लिए एक सुरक्षा कवच का कार्य करती है तथा इसे सूर्य की खतरनाक पराबैंगनी (अल्ट्रा वायलेट) किरणों से बचाती है। धरती के ऊपर ओजोन परत का जो जाल बिछा हुआ है उसमें लगभग ऑस्ट्रेलिया बराबर का एक छेद हो चुका है। जिसके कारण धरती का तापमान 1 डिग्री बढ़ गया है। बिना ओजोन परत के हम जिंदा नहीं रह सकते क्योंकि इन किरणों के कारण कैंसर, फसलों को नुकसान और समुद्री जीवों को खतरा पैदा हो सकता है और ओजोन परत इन्हीं पराबैंगनी किरणों से हमारी रक्षा करती है। आस्ट्रेलिया का उदाहरण हमारे सामने हैं, जहां ओजोन परत को काफी नुकसान पहुंचा है। इसी नुकसान की वजह से सूर्य की पराबैंगनी किरणों से बड़ी संख्या में वहां लोग त्वचा के कैंसर का शिकार हुए हैं। एक अन्य खतरा इसके कारण ध्रुवों के पिघलने का है। अंटार्कटिका में ओजोन में एक बड़ा छेद हो गया है। अंटार्कटिका क्षेत्र में बड़े हिमखंड हैं। यदि ये हिमखंड पिघलते हैं

तो तटीय क्षेत्रों में बाढ़ सहित कई खतरे पैदा हो सकते हैं। इसके अलावा गर्मी भी बढ़ेगी जो नुकसानदायी होगी। ओजोन परत क्षरण के लिए क्लोरीन और ब्रोमीन के अणु जिम्मेदार हैं। जब इन अणुओं से युक्त गैसें पर्यावरण में छोड़ी जाती हैं तो ये कालांतर में ओजोन परत के क्षरण का कारण बनती हैं। ओजोन को नुकसान पहुंचाने वाली सबसे आम हैलोजन गैस क्लोरोफ्लोरो कार्बन है जिसे सीएफसी के नाम से भी जाना जाता है। इसे बचाने के लिए जरुरी है कि लोग ओजोन परत और इसके संरक्षण को लेकर जागरुक हों। सभी लोगों को उन पदार्थों और उनके नुकसान को लेकर जागरुक रहना चाहिए जो इस परत को नुकसान पहुंचाते हैं। कई आसान तरीके हैं जिन्हें अपनाकर ओजोन परत को बचाया जा सकता है जैसे पर्यावरण मित्र उत्पादों का इस्तेमाल करना, एयरोसोल और अन्य सीएफसी से युक्त चीजों के उपयोग से बचना, पौधारोपण को बढ़ावा देना, यदि फ्रीजर और एसी काम नहीं कर रहा तो उसे ठीक करवाना आदि। इस तरह की कई छोटी छोटी बाते हैं जिनका ध्यान रखकर ओजोन परत को बचाने में योगदान दिया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि ओजोन परत तकरीबन 97 से 99 प्रतिशत तक पराबैंगनी किरणों का अवशोषण करती है। इसके संरक्षण को बढ़ावा देने के लिए मांट्रियल प्रोटोकॉल के अनुसार 16 सितंबर को ओजोन दिवस के रूप में मनाया जाता है।

जैवविविधता का छीजता भण्डार

पृथ्वी विविध एवं अद्भुत जैवसम्पदा का एक प्राकृतिक स्रोत है। इस असीम विविधता के अन्तर्गत नाना प्रकार की वनस्पतियों एवं जन्तुओं का समावेश है। चाहे पादप हो या जन्तु समुदाय प्रत्येक वर्ग की अपनी एक विशिष्ट पहचान है। पृथ्वी पर लाखों प्रजाति के जीव व वनस्पति हैं। इन सबकी अपनी–अपनी विशेषताएं होती हैं और रहने के लिए अलग अलग किस्म के आवास। जब हम जैव विविधता कहते हैं तो हम इस पृथ्वी के हर उस जीव की बात करते हैं जो यहाँ सांस लेता है, छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा, जमीन या पानी में रहने वाला पशु, पक्षी या फिर पेड़–पौधे। इस विविधता में डी०एन०ए० में पाए जाने वाले जीन को भी शामिल करते हैं, क्योंकि इन्हीं जीन के परिवर्तन से नयी जातियाँ, प्रजातियाँ पैदा होती हैं और जीवन का विकास होता है। तीसरी चीज जो हम जैव विविधता में जोड़ते हैं वह है प्रकृति का पूरा परितंत्र, जिसमें जीव जंतु रहते हैं; जैसे सागर, जंगल, नदियाँ, रेगिस्तान, आदि। इसे समष्टि रूप में इकोसिस्टम कहते है जिसका अर्थ वह पूरी प्रणाली जो हमें जीने के साधन देती है। इसी जैव विविधता से हमें भोजन, दवाइयां एवं जीवन के अनेक उपादान प्राप्त होते हैं।

हमारा देश जंगल, वन्य जीवों के लिए प्रसिद्ध है। हमारे देश में भी वनस्पतियों एवं वन्य जीवों की विभिन्न और विचित्र प्रजातियाँ पाई जाती हैं। बढ़ती आबादी, बदलती जलवायु, आवासीय ह्रास और मानवीय हस्तक्षेप के परिणमस्वरूप पेड़–पौधों एवं जीव जन्तुओं की अनेक प्रजातियाँ संकटापन्न स्थिति में आ चुकीं हैं तथा उनमें से कई तो लुप्त भी हो चुकी हैं। बढ़ती आबादी की जरुरतों को पूरा करने के लिए जंगल काटे जा रहे हैं और देश के वन क्षेत्र लगातार सिमटते जा रहे हैं। खेतों की जगह तेजी से कालोनियाँ ले रही है। शहरी और ग्रामीण विकास के चलते अंधाधुंध वृक्ष काटे जा रहे हैं। यही स्थिति विश्व के कमोबेश अन्य हिस्सों की भी है। इक्वाडोर, मलेशिया, इंडोनेशिया, ब्राजील और श्रीलंका में पौधों की प्रजातियों की संख्या तेजी से कम होती जा रही है। इसी तरह इसमें ध्यान देने वाली बात है कि कई वनस्पतियाँ बाहरी प्रजातियों के हमले के कारण गायब हो रहीं हैं। विश्व की वन्य प्रजातियों के संरक्षण के लिए काम करने वाली स्विट्जरलैंड के एक संस्था इंटरनेशनल यूनियन फॉर द कंजर्वेशन ऑफ नेचर ने वन्य प्राणियों और पौधों की 12 हजार से भी अधिक प्रजातियों की सूची जारी की है जिनके आने वाले कुछ वर्षों में लुप्त हो जाने का खतरा है। इस वर्ष की सूची में 2000 और प्रजातियों को इसमें शामिल कर लिया गया है। अब तक एकत्र किए गए आँकड़ों से पता चलता है कि पिछले 500 सालों में वनस्पति और प्राणियों की 762 से अधिक प्रजातियाँ लुप्त हो चुकी हैं। ध्यान देने वाली बात है कि अभी तक सिर्फ ज्ञात प्रजातियों में से ही 12,259 प्रजातियों को खतरे में घोषित किया गया है। दुनिया के निर्जनतम स्थान के नाम से मशहूर त्रिस्तान डॉ. कुन्हा और फॉकलैंड द्वीपों पर स्थानीय प्रजातियाँ बड़ी तेजी से लुप्त होती

जा रही हैं। हवाई द्वीप पर पौधों की 125 प्रजातियाँ खतरे में हैं। एशेंसन नाम के द्वीप पर कभी प्रचुरता से पाई जाने वाली पौधों की चार प्रजातियाँ आज लुप्त हो चुकी हैं। हवाई द्वीप पर पौधों की 125 प्रजातियाँ खतरे में हैं। नेशनल इंस्टीट्यूट फॉर स्पेस रिसर्च, ब्राजील के आँकड़े बताते हैं कि बढ़ती आबादी के कारण अमेजन के जंगल के 25,000 वर्ग किलोमीटर से भी अधिक हिस्से के पेड़ मनुष्य के रहने और खेती के लिए पिछले एक ही साल में काट दिए गए हैं। धरती के फेफड़े कहे जाने वाले ब्राजील के वर्षावनों में आज भी हजारों ऐसी प्रजातियाँ हैं जिनकी पहचान की जानी अभी बाकी है।

जलवायु परिवर्तन के कारण पक्षियों के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है और ऐसा अनुमान है कि आने वाले 100 साल में पक्षियों की 1183 प्रजातियां विलुप्त हो सकती हैं। 128 प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं। हजारों–लाखों की तादाद में पशु, पक्षी और मछलियों के किसी अनजान बीमारी से मरने की खबर से दुनिया सकते में हैं। समुद्री तट पर लाखों मरी हुई मछलियों की खबर आए दिन आती रहती है। हाल ही में अमेरिका के एक छोटे से गांव बीबे में नए साल की सुबह लोगों को सड़कों पर, घरों के आंगन में और पूरे गांव में 5000 ब्लैकबर्ड्स मरे हुए मिले। कुछ जगहों पर बंदरों की कई प्रजातियाँ लुप्त होने के कगार पर आ गई हैं। दक्षिण अमेरिका में बंदरों की कुछ प्रजातियों को लगभग लुप्तप्राय ही मान लिया गया है। मैक्सिको के "ब्लैक हाउलर" बंदर को विलुप्ति के कगार पर मान लिया गया है। इस रेडलिस्ट में तेजी से बढ़ती अर्थव्यवस्था और आबादी वाले देश इंडोनेशिया, भारत, ब्राजील, चीन और पेरु की प्रजातियों की संख्या सबसे ज्यादा है। मानव जैसी संरचना वाले इन जीवों का लुप्त होना एक बड़ी चेतावनी है जिसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। जलवायु परिवर्तन के कारण दुनिया के निर्जनतम स्थान के नाम से मशहूर त्रिस्तान डॉ. कुन्हा और फॉकलैंड द्वीपों पर स्थानीय प्रजातियाँ बड़ी तेजी से लुप्त होती जा रही हैं।

मछलियों की कई प्रजातियों की संख्या में लगातार कमी आ रही है। अवैध शिकार के चलते दुनियाभर में शार्क मछलियों की संख्या भी तेजी से घट रही है। दक्षिण अमेरिकी नदियों में प्रजनन करने वाली कई मछलियाँ प्रदूषण के कारण पर्याप्त संख्या में अंडे नही दे पा रही हैं, जिस वजह से भी उनकी संख्या में गिरावट आ रही है। एशिया में मेकांग बेसिन की कैटफिश, यूरोप और अफ्रीका में स्वच्छ जल में रहने वाली मछलियों की कई प्रजातियाँ भी इस बार रेड लिस्ट में आ गई हैं। विश्व में पहली बार ध्रुवीय भालू (पोलर बियर) और दरियाई घोड़े को लुप्त हो रहे जानवरों की सूची में शामिल किया गया है। इतना ही नहीं ध्रुवीय भालू के बारे में इस रिपोर्ट में कहा गया है कि अगले 50 से 100 वर्षों में उनके लुप्त हो जाने की आशंका है। अफ्रीका में अकाल, भुखमरी की वजह से अवैध शिकार धड़ल्ले से जारी है। गृहयुद्ध से झुलसे डेमोक्रेटिक रिपब्लिक ऑफ कांगो में तो दरियाई घोड़ों को माँस के लिए मारा जाता है। पिछले 10 सालों में अफ्रीका के दरियाई घोड़ों की संख्या लगभग 90 प्रतिशत कम हुई है।

उपसंहार

यह तथ्य अब आम हो चुका है कि विकास की मौजूदा अवधारणा और इस अवधारणा के तहत बनाई गई नीतियों के चलते हमारे पर्यावरण को गंभीर नुकसान पहुँच रहा है। प्रदूषित पर्यावरण का प्रभाव पेड़ पौधे एवं फसलों पर पड़ा है। समय के अनुसार वर्षा न होने पर फसलों का चक्रीकरण भी प्रभावित हुआ है। प्रकृति के विपरीत जाने से वनस्पति एवं जमीन के भीतर के पानी पर भी इसका बुरा प्रभाव देखा जा रहा है। जमीन में पानी के स्त्रोत कम हो गए हैं। इस पृथ्वी पर कई प्रकार के अनोखे एवं विशेष नस्ल की तितली, वन्य जीव, पौधे गायब हो चुके हैं। जैव विविधता में लगातार कमी आ रही है और अगर जैव विविधता में इसी प्रकार कमी जारी रही तो यह मानव जाति के लिए एक बड़े खतरे की शुरुआत हो सकती है क्योंकि इन प्रजातियों के लुप्त होने का प्रभाव पूरे पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र पर पड़ता है। इसके लुप्त होने के लिए जलवायु परिवर्तन को दोषी ठहराया जा सकता है लेकिन इसके साथ ही साथ मनुष्य भी इस विनाश में समान रूप से दोषी है। ऐसा माना जा रहा है कि जिस रफ्तार से जातियां कम हो रही हैं, उससे आने वाले सौ साल में पृथ्वी की अधिकतर जातियां समाप्त हो जायेंगी। जरुरी है कि इसकी तरफ सबका ध्यान आकर्षित किया जाए ओर इस सुन्दर संसार की सुन्दर धरोहर को बचाने के

कलम विधि द्वारा औषधीय पौधों का प्रवर्धन

श्री रवि शंकर प्रसाद एवं डॉ. संजय सिंह
वन उत्पादकता संस्थान, रांची

आदिकाल से मानव वनों से प्राप्त होने वाले विभिन्न प्रकार के औषधीय पौधों का इस्तेमाल स्वास्थ रक्षा तथा रोगों के निदान के लिए करता आ रहा है क्योंकि यह आम आदमी को आसानी से प्राप्त हो जाता है। परन्तु भौतिकवाद एवं औधोगिक विकास के नाम पर वनों पर इतना दबाव पड़ रहा है कि अब यह महत्वपूर्ण औषधियां सर्वत्र उपलब्ध नहीं रहीं।

आज की इस आधुनिक जीवन शैली ने मनुष्य के स्वास्थ पर इस कदर प्रभाव डाला है कि वह आसानी से गंभीर रोगों की चपेट मे आ जाता है और इसके उपचार हेतु प्रसंस्कृत दवाओं के ऊपर निर्भर रहता है जिसका दुष्प्रभाव भी देखने को मिल रहा है। ऐसे में मानव का एक बार पुनः पारंपरिक औषधियों की ओर रुझान होना स्वभाविक है विश्व स्वास्थ संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार विकासशील देशों की 80 प्रतिशत जनता प्राथमिक इलाज के लिए औषधीय पौधों पर निर्भर है। जिसके फलस्वरूप औषधियों पौधों की माँग में दिनों–दिन वृद्धि होती जा रही है। ऐसे में औषधीय पौधा का प्रवर्धन न केवल औषधीय उपयोगों के लिए वरन जैव– विविधिता के संरक्षण के लिए भी महत्वपूर्ण है।

वन आच्छादित झारखण्ड में औषधीय पौधों की विविधिता के संरक्षण हेतु वन उत्पादकता संस्थान राँची ने वर्ष 2009–10 में औषधीय उपवन की स्थापन की है जिसमे कुल 300 प्रजातियों के औषधीय पौधे उपलब्ध है एवं उनका समय– समय पर उत्पादन पौधशाला में तैयार पौधों की सहायता से किया जाता है।

यहाँ हम झारखण्ड में पाए जाने वाले ऐसे औषधीय पौधों की चर्चा करेंगे जिनका उत्पादन ज्यादातर कलम विधि द्वारा किया जाता है जैसे स्टीविया, हड़जोड़, गिलॉय, गुड़मार, गुगल, जगतमदन, लालविशालकरनी, काँताविशालकरनी, भुगराज, ब्राह्मनी, मल्टीविटामिन पुदीना, मिन्ट, सतावर इत्यादि।

कलम द्वारा पौधे तैयार करने की वैज्ञानिक विधि

सबसे पहले हम स्वस्थ पौधों का चुनाव करते है ताकि उसके द्वारा तैयार पौधे रोगमुक्त तथा उन्नत किस्म के हो। इस विधि से तैयार पौधे अपने मातृ पौधो से पूरी तरह समान रहते है। तथा इनमें मातृ पौधे के सभी गुण विद्यमान रहते है तथा इनका विकास भी तेजी से होता है। इस विधि द्वारा तैयार पौधे बीज द्वारा तैयार पौधे से उन्नत होते है।

इस विधि में सबसे पहले मातृ पौधे से कलम काटते है जिसके लम्बाई 4–6 इंच रखी जाती है कलम हमेशा तेज धार वाले चाकू से ही किया जाता है। फिर उसे 1–2 ग्राम वेविस्टिन (Bevistin) / लीटर के हिसाब से उपचार करते है ताकि फंगस का प्रकोप ना हो, इस घोल में कलम को 5–10 मिनट के लिए छोड़ देते है उसके बाद उसे 100 PPM वाले IBA के घोल में 2 मिनट के लिए छोड़ देते है। उसके बाद उसे हाइकोपौट मे धुंधकक्ष मे साल के किसी भी समय मे तैयार कर सकते है। 25–30 दिनों में इस में जड़ निकल आती है। इसमें विभिन प्रजाति के जड़ निकलने में कुछ अन्तर पाया जाता है।

सामान्य दिनों में कलम लगाने के बाद दिन मे दो बार तथा गर्मी के दिनों में तीन बार सिंचाई की जाती है ताकि अन्दर की नमी बरकरार रहें।

विभिन्न प्रजातियों की कलमों में मूल विकास

...शेष पृष्ठ 54 पर

कृषि वानिकी की विभिन्न पद्धतियां एवं प्रकार और उनसे लाभ

डॉ. बृज मोहन डिमरी

कृषि वानिकी:

कृषि वानिकी "कृषि एवं वन" दो शब्द का मेल है, जिससे कि अभिप्राय कृषि/खेती बाड़ी एवं बागवानी के साथ–साथ आर्थिक महत्व के वन वृक्षों को उगाने से है। अर्थात जिससे खेत या कृषि जमीन में कृषि फसलों के साथ–साथ आर्थिक महत्त्व के वन वृक्ष भी उगाए जाते है उसे आजकल नये नाम "कृषि वानिकी" से जाना जाता हैं। कृषि के साथ वन वृक्षों को उगाने का तरीका हमारे देश में प्राचीन समय से है लेकिन इसके महत्त्व का अध्ययन आजकल घटते वनों एवं कृषि उपज से किसानों का आर्थिक समपन्ता नहीं मिलने के कारण काफी बढ़ गया है। आजकल किसानों को मजदूरी, मँहगाई एवं पर्यावरण के बदलाव से कृषि में अधिक सफलता न मिलने के कारण किसानों की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए "कृषि वानिकी" की बहुत आवश्यकता है।

पिछले 25 वर्षों के अनुसन्धान से पता चलता है कि कृषि वानिकी से किसानों को अत्यधिक जैविक उत्पादों की प्राप्ति हो सकती है। यह एक लाभकारी प्रक्रिया है। केवल "वानिकी" या "खेतीबाडी वाली कृषि" से कृषि वानिकी अधिक पैदावार देने वाली पद्धति है।

कृषि वानिकी क्यों की जाय:

कृषि वानिकी एक लाभकारी प्रक्रिया है यह किसान को अनाज के साथ–साथ आर्थिक मजबूती भी देता है। कृषि वानिकी केवल कृषि की तुलना में अधिक पैदावार देने वाली पद्धति है। इससे अन्य कई प्रकार के लाभ भी प्राप्त होते है। यदि व्यक्तिगत वन व कृषि को अलग–अलग करके खेती की जाए तो उससे अलग अधिक लाभ नहीं होगा, जबकि इन दोनों को एक साथ वन वृक्ष व खेती की जाए तो उससे अधिक लाभ की प्राप्ति हो सकती है।

कृषि वानिकी को आधुनिक समय में कृषि प्रणाली में सम्मिलित करने के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष कई कारण है जैसे कि जनसंख्या का बढ़ना, खेती योग्य भूमि एवं प्राकृतिक वनों पर दबाव, खाद्यान्न के अभाव की सम्भावना, मरुस्थल में उत्पादन कम तथा क्षेत्रफल अधिक होना, जलाऊ लकड़ी की कमी, पशुओं की संख्या अधिक होने से, चरागाह की कमी, भूमि कटाव एवं क्षरण इत्यादि।

कृषि वानिकी से पहले, वन वृक्षों का चयन एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। वृक्षों का चयन इस प्रकार करना चाहिए कि वह कृषि फसल के साथ मेल खा जाए, कृषि की पैदावार को प्रभावित न करे।

कृषि वानिकी की विभिन्न पद्धतियाँ एवं प्रकार:

हमारे देश में मुख्यतः छः प्रकार के तरीके कृषि वानिकी के लिए उपयुक्त हैः

1. कृषि के साथ वन वृक्षों को लगाना: कृषि के साथ इस प्रकार के वन वृक्ष लगाये जाए, जो फसल तैयार होने के समय पतझड़ हो तथा फसल वाले खेतों पर उस समय पूर्ण रुप से सूर्य की रौशनी पड़े जिनसे कि पैदावार अच्छी हो। जैसेः गेहूँ, मटर, आलू की फसलों के साथ पॉपलर की पौध लगाना। कुल मिलाकर वृक्ष, भूमि की ऊपरी सतह के भाग फसलों के लिए सूर्यप्रकाष पोशक तत्व तथा नमी के लिए कम से कम प्रतिस्पर्धा करें।

2. कृषि के साथ वन वृक्ष एवं फलदार वृक्ष को लगाना: कृषि के साथ वन वृक्ष एवं फलदार वृक्षों का लगाना एक ओर आर्थिक मजबूती देता है तथा दूसरी तरफ कृषि भूमि की उर्वराशक्ति को भी बढ़ता है। यदि वन वृक्ष वह भी फलदार हो तो बहुत ही उपयोगी होता है यह हमारे देश के रेगिस्तानी क्षेत्र के लिए बहुत ही फायदा मन्द होता है। इससे एक तो गर्मियों के मौसम में, फसल को सीधे धूप से बचाता है। दूसरा हर मौसम में पशुओं के लिए चारा प्रदान करता है।

क्षेत्र के लिए तथा भीमल, खडीक, मोलू इत्यादि पहाडी क्षेत्रों के लिए। रेगिस्तानी क्षेत्र में खेजड़ी वृक्ष के पत्ते चारे के लिये तथा फालियां सब्जी के लिए और पोध की खाल दवाईयां बनाने के काम आती है। इसी प्रकार लसाडो (गोंद व कुमटा) का फल सब्जी के लिए उपयोग होता है।

3.कृषि के साथ फलदार वृक्ष लगाना: यदि कृषि यानि खेती के साथ फलदार वृक्ष जैसे आम, लीची, अमरुद, बेर, आँवला, लगाया जाए तो कृषि फसल के साथ फलदार पेड़ों से नगदी आमदनी प्राप्त होगी जिससे किसानों की आर्थिक स्थित मजबूत होगी। कृषि बागवानी प्रणाली में फलदार पेड़ों को या तो कतारों में या खेत की सीमाओं पर लगाते है जिनके मध्य में फसल उत्पादन किया जाता है।

4. वन वृक्ष के साथ घास लगाना: जो कृषि जमीन खेती के लिए उपयुक्त नहीं होती उसमे वन वृक्षों के साथ चारा वाले घास लगाई जाती है जिससे पशुओं के चारा समय समय पर प्राप्त होता रहता है। चारा घास स्थानीय घास को महत्त्व देना चाहिए अन्यथा में पियर घास व वर्सिन घास लगाई जानी चाहिए।

5. बागवानी वृक्ष के साथ घास लगाना: जिन खेतों में बागवानी व फलदार वृक्ष लगाये जाते है उनके साथ भी यादि चारा वाली घास लगाये जाए तो काफी उपयुक्त होता है इससे एक तो पशुओं के लिए चारा प्राप्त होता है तथा दूसरा फलदार वृक्षों को अच्छी घास लगाने से मृदा की उर्वराशक्ति भी बढ़ाई जा सकती है। जो (Green manure) का कार्य करती है। जिससे फलदार वृक्ष में अधिक पैदावार होती है और किसानों के लाभांष में वृद्धि होती है।

6. कृषि/खेती की मेढ़ पर वन वृक्ष लगाना: इस प्रणाली से वन वृक्ष खेत की मेढ़ पर लगाया जाता है जिससे यह वृक्ष तेज हवाओं को रोकने का कार्य करती है और फसल को नुकसान होने से बचाते है साथ ही साथ एक निश्चित समय में इन्हे कटवा कर लकड़ी को बेचने से एक आर्थिक मजबूती किसानों को मिलती है। इनमे जैसे पॉपलर, यूकेलिप्टस, बांस, खैर इत्यादि।

कृषि वानिकी/बागवानी से लाभ:

- यह पानी के बहाव को रोकता है जिससे मिट्टी को कटाव खेतों में कम होता है जिनसे मृदा की पौष्टिकता बनी रह सके और फसल की पैदावार अच्छी होती है।
- मृदा की जैविकता पौधा लगने से बनी रहती है जिससे मृदा की उर्वराशक्ति बढ़ाती है।
- कृषि की तुलना में मृदा की शारीरिक गुणधारिता को सुदृढ़ करता है क्योंकि वृक्षों के पत्ते गिरने से उर्वरकता बनी रहती है।
- अधिक वर्षा में भूमि का कटाव होने से बचाता है।
- कृषि फसलों की तुलना में इनसे अधिक पौष्टिक तत्वों की प्राप्ति होती है।
- इससे मृदा की विषालुता पर रोक लग सकती है अथवा वर्तमान विषालुता कम की जा सकती है। इससे भूमि की अम्लता एवं लवणता पर अंकुश लगाया जा सकता है तथा प्रदूषित मृदा में सुधार करके वृक्षों को विकसित किया जा सकता है।
- कृषि वानिकी से नाशीकीटों का प्रकोप तथा अन्य प्रकार की बीमारियां के प्रकोप में कमी लाई जा सकती है।
- कृषि वानिकी से एक स्वस्थ पर्यावरण की संरचना की जा सकती है जिससे मृदा, जल, हवा, पशु एवं मानव संसाधनों को बढाया जा सकता है।
- वृक्ष होने से रोजमर्रा के प्रयोग जैसे गाय भैंस के लिए छप्पर आदि के लिए लकडी भी सुगमता से उपलब्ध हो जाती है तथा घर में जलाऊ लकड़ी भी आसानी से उपलब्ध हो जाती है।
- कृषि वानिकी में कई ऐसे पौधे होते है जो नाइट्रोजन की उर्वराशक्ति बढ़ाती है।
- कृषि वानिकी से वृक्ष मृदा में क्षितिज एवं मौसमी परिवर्तनों द्वारा पोशक तत्वों में वृद्धि कर सकते है तथा नीचे के पोषक तत्वों को ऊपरी सतह पर कुछ तत्वों को ला सकते हैं।
- वृक्षों के पत्तों के अपघटन से प्राप्त होने वाले पोषणों से सहायक फसल में पौष्टिक तत्वों की वृद्धि हो जाती है। इसमें समय का बडा महत्त्व है। पत्तों के गिरने का समय तथा फसल लेने का समय एक ही हो तो उर्वरा शक्ति पर काफी प्रभाव पड़ता है।
- उसर भूमि एवं ढालदार भूमि पर कटाव व भूमि में सुधार लाया जा सकता है।

बाँस: संरचना, जीवन चक्र एवं उपयोगिता

श्री एस. एस. जैन, डॉ. बृज मोहन डिमरी एवं डॉ. सुषमा महाजन
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

भूमिका: बाँस अर्थात वृक्षीय घास – घास कुल – ग्रैमिनी अथवा पोएसी की सब फैमिली बैम्बूसोइडी का सदस्य है। उपयोगिता की दृष्टि से मनुष्य ने बाँसों को अनादि काल से ही, विशेष महत्व दिया है। बाँस उष्णकटिबंधीय क्षेत्रों में समुद्र तल से लेकर शीतोष्ण क्षेत्रों में ४000 मीटर की ऊँचाई तक पाये जाते हैं। भारत सहित सम्पूर्ण दक्षिण–पूर्व एशियाई संस्कृति का बाँस एक अभिन्न अंग हैं। बाँस की बहुमुखी उपयोगिता के कारण, बाँस को अनेक नामों से पुकारा जाता है जैसे भारत में प्रचलित "बाँस संस्कृति" (बैम्बू कल्चर), "हरा सोना" (ग्रीन गोल्ड), "गरीब आदमी का काष्ठ" (पूवर मैन्स टिम्बर), "व्यक्तियों का साथी" चीन में प्रचलित "लोगों का मित्र" (पीपल्स फ्रैन्ड) तथा वियतनाम में "भाई" (माई ब्रदर) के रुप में जाना जाता है। बाँस का उल्लेख हमारे देश के पुरातन धर्म ग्रन्थों में भी मिलता है। समस्त विश्व में, विगत कई वर्षों से बढ़ती जन संख्या और पर्यावरण बदलाव के कारण प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं विकास पर जोर दिया जा रहा है। इस परिप्रेक्ष्य में बाँस का महत्व निरन्तर बढ़ रहा है। बाँस एक नवीकरणीय प्राकृतिक संसाधन है जो कि अन्य वृक्षों की तुलना में तेजी से बढ़ता है और मात्र ४–५ वर्षों में ही उपयोग के लिए तैयार हो जाता है।

बाँसों की संख्या के बारे में वैज्ञानिकों की अलग–अलग राय है, एक गणना के अनुसार पूरे संसार में बाँसों की लगभग ८४0 प्रजातियाँ (स्पीशीज) तथा ४६ जेनेरा हैं; अन्य आँकलन के अनुसार यह संख्या क्रमशः १२00 तथा ७0 है। भारत में बाँस कश्मीर घाटी को छोड़ कर प्रायः सभी प्रदेशों में प्राकृतिक रुप से वनों में पाये जाते हैं। उत्तर–पूर्वी राज्यों, पश्चिमी बंगाल, अण्डमान द्वीप, छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र तथा देश के पश्चिमी घाट में बाँस प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं। हमारे देश में ८९.६ लाख हैक्टेयर क्षेत्र में बाँसों के २३ जेनेरा तथा १४५

प्रजातियां पायी जाती हैं जिनमें से ११५ प्रजातियाँ प्राकृतिक रुप से भारत की हैं। एक नवीन अनुमान के अनुसार भारतीय बाँस विविधता की यह संख्या क्रमशः २० तथा ११५ बताई गयी है।

संरचना: बाँस एक आसानी से पहचाना जाने वाला पौधा है। अन्य वनस्पतियों की तरह बाँस के पौधे में भी जड़ें, तना, शाखाएं तथा पत्तियां होती हैं। बाँसों में दो प्रकार के तने होते हैं। बाँस में भूमि के अन्दर रुपान्तरित तना होता है जिसे प्रकन्द (राईज़ोम) कहते हैं। प्रकन्द में पर्व व गाँठें, शल्कपत्र (स्केल लीव्स), कलियाँ तथा शाखाएँ होती हैं। यह पौधे की बढ़वार के लिए भोजन संग्रह करता है। प्रकन्द से ही असंख्य रेशें नुमा जड़ें (फाइब्रस रुट्स) पैदा होती हैं जो जमीन के अन्दर जाल फैला देती हैं। तने का दूसरा प्रकार भूमि के बाहर होता है जिसे नाल, काण्ड अथवा सन्धि स्तम्भ (कल्म) कहते हैं। आम आदमी इसे ही बाँस (बैम्बू) के नाम से जानते हैं। साधारणतया बाँस गांठों (नोड्स) पर ठोस तथा पर्वों या पोरियों (इटंरनोड्स) पर खोखले होते हैं। तथा इन पर भी कलियाँ, शाखाएं तथा पत्तियाँ होती हैं। प्रकन्द की गाँठों पर उपस्थित कलियाँ वर्षा ऋतु शुरु होते ही तेजी से बढ़कर जमीन के ऊपर निकल आती हैं तथा ३–४ महीनों के अन्दर पूरी ऊचाँई तक बढ़कर बाँस का रुप ले लेती हैं। युवा बाँस विशेष प्रकार के सुदृढ़ कवचों (कल्म शीथ्स) से ढँका होता है, ये आवरण इसे सुरक्षित रुप से वृद्धि करने मे सहायक होते हैं। कुछ प्रजातियों में बाँस की ऊँचाई ३५–४० मी0 तथा व्यास ३० से.मी. तक हो जाता है।

बाँसों के प्रकार : वृद्धि और प्रकृति के आधार पर बाँसों को सरलता पूर्वक निम्न दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

1. एक स्तम्भ वाले (एकांक्षी अथवा मोनोपोडियल) बाँस इनमें बाँस एक–एक करके फासले पर उगते हैं। ये बीड़ा (क्लंप) नहीं बनाते।

   उदाहरणार्थः अरूंडीनेरिया, फाइलोस्टेकिस आदि बाँसों की प्रजातियों में एकांक्षी प्रकन्द (लेप्टामॉर्फ राईज़ाम) होते हैं। भारत वर्ष में बांसो की कुछ पहाड़ी प्रजातियाँ (रिगांल) इस श्रेणी में आती हैं।

2. बीड़ा (क्लंप) बनाने वाले (संयुक्ताक्षी अथवा सिम्पोडियल) बाँसः बीड़े में साथ–साथ सटे हुए बहुत सारे बाँस होते हैं।

उदाहरणार्थः बैम्बूसा, डेन्ड्रोकेलेमस आदि की प्रजातियों में संयुक्ताक्षी प्रकन्द (पैकीमॉर्फ राईज़ोम) होते हैं। हमारे देश के मैदानी व उप–पर्वतीय क्षेत्रों में मिलने वाले बाँस इस श्रेणी में आते हैं।

जीवन चक्रः बाँस का जीवन चक्र अनाज की फसल–गेहूँ, धान इत्यादि जैसा ही (मोनोकार्पिक) होता है। अन्तर यह हैं कि जहाँ गेहूँ या धान 3–4 महीने मे ही बीज बोने से बीज पैदा होने तक का चक्र पूरा कर लेते हैं, बाँस को इसी प्रक्रिया में सालों–साल, प्रायः ७–१२० साल तक लग जाते हैं। फूलने एवं फलने के पश्चात बाँस का पौधा भी मर जाता है।

बाँसों में फूल आना अथवा पुष्पन (फ्लॉवरिगं) एक जटिल प्रक्रिया है जो कि अभी तक बाँस विशेषज्ञों के लिए एक अनसुलझी पहेली बनी हुई है।

बाँसो की प्रजातियाँ एक निश्चित अवधि जैसे २, ७, ११, १५, ३०, ४५, ४८, ६० या १२० वर्षों के पश्चात् सामूहिक रुप से फूलती हैं। इस प्रकार के पुश्पन को सामूहिक (ग्रिगेरियस) पुष्पन कहते हैं। पूरा बीड़ा तथा एक ही बीज से उत्पन्न सभी बीड़े एक निश्चित अवधि पर, चाहे वह देश के किसी भाग में हो, फूलों से लद जाते हैं। पुष्पण के पश्चात भारी मात्रा में बीज बनते हैं, बीजीकरण (सीडिगं) के पश्चात 2–3 साल के भीतर बाँस के पौधे मर जाते हैं, तथा बीज से नयी फसल की शुरुआत होती है। इन बाँसों में प्रति वर्ष अथवा दूसरे तीसरे साल कुछ नालों पर, जो संख्या मे बहुत कम होती हैं, थोड़े–बहुत फूल आते हैं जिसे छुट–पुट (स्पोरेडिक) पुष्पन कहते हैं, कभी कभार इनमे थोड़े–बहुत बीज बन जाते हैं। फूलने वाली नालें (बाँस) बाद मे सूख जाती हैं।

सामूहिक बाँस पुष्पन के पश्चात् बहुत अधिक मात्रा में बीज बनते हैं जो जमीन पर गिर जाते हैं। बीजों से आकर्षित होकर दूर–दूर से चूहे बीज खाने के लिये वहाँ पहुँच जाते हैं तथा बीज खाकर मोटे हो जाते हैं और साथ ही चूहों की संख्या मे अप्रत्याशित वृद्धि हो जाती है। बीज खत्म हो जाने के बाद चूहों के समूह किसानों के घरों तथा खेतों की ओर रुख करते हैं तथा खड़ी फसलों को बर्बाद कर देते हैं और घरों तथा गोदामों में रखे हुए अनाज को भी खा जाते हैं, जिससे अन्न संकट पैदा हो जाता है। इसी के

साथ चूहे प्लेग जैसी बीमारियाँ भी फैलाते हैं। इस लिए बाँस फूलना अशुभ माना जाता है क्योकि इससे भुखमरी, बीमारी तथा अकाल की स्थिति पैदा हो सकती है। परन्तु उचित प्रबन्धन द्वारा इसे समस्या का समाधान किया जा सकता है।

उपयोगिता: बाँस एक बहुउपयोगी पौधा है जिसके १५०० उपयोग तथा ४००० से ज्यादा उत्पाद प्रलिखित हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक (क्रैडल टू कौफिन) बाँस मनुष्य के काम आता है। परन्तु इतने सारे उपयोग होने पर भी हमारे देश के उत्तरी तथा उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों में रहने वाले लोग बाँस लगाने से कतराते हैं। इस क्षेत्र में कहा जाता है कि बाँस लगाने से वंश वृद्धि रुक जाती है। इन क्षेत्रों में बाँस के प्रति प्रचलित भ्रांतियों के विपरीत पूर्वी तथा उत्तर–पूर्वी प्रदेशों में बाँस लोगो की जीवन शैली में इस तरह रच–बस गये हैं कि घर–घर में बाँस अनिवार्य रुप से लगाये जाते हैं।

- चीन बाँस उत्पादन और व्यावसायिक उपयोग की दृष्टि से विश्व में प्रथम स्थान पर है और जन संख्या के लिहाज से भी विश्व में प्रथम स्थान चीन का ही है, वहाँ तो वंश वृद्धि रोकने पर भी नहीं रुक रही है। इस लिये इस भ्राँति को भूल कर उत्तरी और उत्तर–पश्चिमी भारत के लोगों को भी खुली बाँहो से बाँस को अपनाना चाहिए।

परम्परागत रुप से बाँसों का इस्तेमाल कृषि उपकरण, खूँटे, तीर–कमान, टोकरियाँ, चारपाई, सिरकियाँ, नाँव, पुल, झाड़ू, ब्रुश मकान, टोपी, कुर्सी, मेज, मूढ़े, स्टूल, पालना, अरथी , कंघे, अनाज व सामान रखने के पात्र, भोजन पदार्थ, रस्सी, पंखे, बाड़, मछली पकड़ने की लग्गी, ध्वजदण्ड, बीड़ा, बाँसुरी, पिचकारी, लाठी, हुक्के, पतंग, सीढ़ियाँ, अगरबत्ती की सींके, माचिस की तीलियाँ, दन्त कुरेदनियाँ (टूथपिक्स), चटाइयाँ, संगीत उपकरणों, कीलों, सजावटी बागवानी, खम्बे, कागज कलम, रेयान पल्प, जूते, पेड़ बाँधने, सड़क, हस्तशिल्प, सजावटी वस्तु निर्माण, पशुओं को दवा पिलाने की नाल, खेलकूद का सामान, खिलौने, औजारों के हत्थे, इत्यादि के रुप में होता है। कुछ दुर्गम स्थानों पर बाँसों को जोड़ कर पानी सप्लाई की नालियाँ बनाई जाती हैं। कुछ आदिवासी जन जातियाँ हरे बाँस के पोरों को में चावल आदि भरने के बाद बन्द कर के आग में डाल देते हैं जिससे उनके लिये स्वादिष्ट खाना पक जाता है। मोटे बाँसो की नालों का बरतनों के रुप में भी इस्तेमाल किया जाता है।

बाँस के मुख्य उपयोग:

- बाँस का फर्श (ब्लॉक फ्लोरिंग) बाँस की ज्यमितीय आकार की पट्टियों को जोड़कर बनाया जाता है।
- बाँस प्लाई तथा बाँस बोर्ड बनाये जाते हैं।
- बाँस प्रतिबलित कन्क्रीट बनाये जाते हैं जो हल्के, मजबूत तथा भूकम्प रोधी मकानों के लिए बहुत उपयोगी होते हैं।
- कागज उद्योग, बाँस का उपयोग कच्चे माल के रूप में कागज की लुग्दी (पेपर पल्प) बनाने के लिए होता है।
- औषधिः विभिन्न बाँसों में बँसलोचन या तबाशीर पाया जाता है यह दमा, खाँसी व अन्य बीमारियो के इलाज में काम आता है।
- बाँस का कोयला बैटरियों में प्रयुक्त होता है तथा बाँस का विशेष कोयला एक्टिवेटेड कार्बन औषधीय उपयोगों में भी लाया जाता है।
- जटिल प्रकन्द तन्त्र तथा रेशें दार जड़ों के कारण बाँस भूमि संरक्षण के लिए बहुत उपयोगी हैं।
- बाँसों को अधिक हवा वाले क्षेत्रों में, फसल बचाव के लिए हवा रोधक पट्टियों (विंड ब्रेक्स) और शरण पट्टियों (शैल्टर बैल्ट्स) के रुप में लगाया जाता है।
- औद्योगिक क्षेत्रों में बाँस हरित पट्टी (ग्रीन बैल्ट्स) के रुप में पर्यावरण सुरक्षा के लिए लगाये जा सकते हैं।
- सौन्दर्य परक के रुप मे कुछ बाँस गार्डन, पार्क, सामूहिक स्थलों के परिवेश (लैंडस्केप), आदि को सुन्दरता प्रदान करते हैं।
- पहाड़ों मे पाये जाने वाले रिगांल बाँस स्थानीय लोगों के लिए दस्तकारी के लिए महत्वपूर्ण हैं, तथा इस क्षेत्र में रोजगाार की अपार सम्भावनाएँ हैं।
- बाँस से आकर्षक, मजबूत, भव्य तथा भूकम्प रोधी घर, होटल रिजॉर्ट, पार्क, सामुदायिक केन्द्र, पर्यटक झोपड़ियो आदि का निर्माण किया जा रहा

है। इसके अलावा सड़क, पुल, पाइप लाइन निर्माण में भी बाँस का इस्तेमाल हो रहा है। इसमें रोजगार की अपार सम्भावनाएं हैं।

- बाँस फर्नीचरः मुख्यत अलमारी, सोफा सेट, डाईनिंग टेबल सेट, गार्डन चेयर, आराम दायक कुर्सियाँ, इत्यादि आजकल कार्यालयों रिजॉर्ट, रेस्तराओं, होटलों, घरों व स्कूलों में खूब प्रचलित हैं।
- फर्श की टाईलें, मैट बोर्ड, नालीदार छत, सीलिंग आदि के निर्माण मे नवीन तकनीक से बाँस का उपयोग हो रहा है।
- स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ जैसे अचार, मुरब्बा, चिप्स, बीयर, चटनी व सब्जी, इत्यादि बाँस की कोमल कोंपलो से बनाये जाते हैं।
- इंधन के रुप में बाँस का प्रयोगः बेकार बाँसो से कायेला तथा ब्रिकेटस बनाये जाते है, जो बाये गैस उत्पादन तथा ईंधन के रुप में उपयोग मे लाये जाते है।
- बाँस से बिजली भी पैदा की जा सकती है।
- पशुधन के लिये बाँस हरे चारे के लिए बहुत ही उपयोगी है। बाँस व रिगांल पूरे वर्ष हरा चारा देते हैं।
- किसान बाँस को नकदी फसल के रुप में बंजर भूमि पर उगा कर वार्षिक तौर पर लाभ देने वाली फसल की तरह लाभ कमा सकते है। इसमें बाँस की कोपलों और बाँस की नालों की महत्वपूर्ण भूमिका है।
- बाँस भूमि कटाव (सॉयल इरोजन) रोकने के साथ–साथ जल स्त्रोतों (वॉटर सोर्सेज) के संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान करके पर्यावरण सुधारने का महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

अभी तक बाँसों की उपलब्धता केवल वनों तक ही सीमित रही है। निजि क्षेत्रों में बाँसों का रोपण प्रायः मृदा कटाव, निजि उपयोग तथा तेज हवाओं से फसल की सुरक्षा के उद्देश्य से किया जाता है।

राष्ट्रीय बाँस मिशनः बाँस की बहुरूपी उपयोगिता को देखते हुए भारत सरकार ने बाँस की उत्पादकता, गुणवत्ता, रोपण क्षेत्र, अर्थव्यवस्था तथा आपूर्ति को सन्तोषजनक स्तर तक पहुँचाने के लिए, कृषि मंत्रालय, भारत सरकार के अर्न्तगत राष्ट्रीय बाँस मिशन (नेशनल बैम्बू मिशन) नामक केन्द्रीय वित्त पोषित परियोजना की स्थापना की है, जिस का उद्देश्य क्षेत्रीय स्तर पर बाँस के संर्वधन, रोपण, विपणन और बाँस आधारित उद्योग जैसे हस्तशिल्प, फर्नीचर निर्माण एवं कुटीर उद्योग इत्यादि को चरणबद्ध तरीके से प्रोत्साहित करना है।

हमारे देश में बाँस की उत्पादकता ३–४ टन प्रति है0 / वर्ष है जो कि अन्य अग्रणी देशों की तुलना में बहुत कम है। व्यावसायिक दृष्टि से देश में बाँस की आपूर्ति और माँग में लगभग १४0 लाख टन का विशाल अंतर है। महत्वपूर्ण संसाधन होने के बावजूद, घरेलू बाँस आधारित उद्योग उचित गुणवत्ता वाले बाँस की कमी से जूझ रहे हैं। इसलिए राष्ट्रीय बाँस मिशन की चुनी हुई बाँस प्रजातियों का रोपवन (प्लाटेंशन) क्षेत्र बढ़ाकर उन का प्रति हैक्टेयर उत्पादन को जोकि इस समय लगभग ३ टन है, को लगभग 18 से 20 टन तक सघन प्रबन्धन द्वारा सुधारने की योजना है।

मिशन के उद्देश्यों को प्रतिबद्ध तरीके से पूरा करने के लिए वज्ञैानिक एवं तकनीकी सहायता के लिए बासँ तकनीकी सहायता दल (बैम्बू टे्क्निकल सपोर्ट ग्रुपः बी0 टी0 एस0 जी0) स्थापित किए गये हैं जिनका कार्य राज्यों के बासँ मिशनों फील्ड कार्यकर्ताओं (फील्ड फंक्शनरीज) एवं किसानों को बासँ सवंधर्न, कृषि एवं प्रबन्धन पर प्रशिक्षण देना तथा अनसुंधान एवं विकास सम्बधित जानकारी प्रदान करना है।

उत्तरी तथा पश्चिमी क्षेत्र के लिए बाँस तकनीकी सहायता दल, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् (बी0 टी0 एस0 जी0 – आई0 सी0 एफ0 आर0 ई0), देहरादून के अर्न्तगत स्थापित किया गया है। इस सहायता समूह का कार्यक्षेत्र ग्यारह राज्यों अर्थात जम्मू व कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, राजस्थान और गुजरात तक फैला हुआ है तथा नीति, संगठनीय और प्राविधिक मामलों में मार्ग दर्शन का कार्य तत्परतापूर्वक किया जा रहा है।

वन एवं गैर वन क्षेत्र दोनों राष्ट्रीय बाँस मिशन योजना के कार्य क्षेत्र के अंतर्गत आते हैं। इस

योजना के तहत सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्रों में केन्द्रीकृत नर्सरियों का विकास, निजी क्षेत्र में किसान एवं महिला नर्सरियों का विकास, वन एवं गैर वन क्षेत्रों में बाँस रोपण कार्य, वर्तमान बाँस क्षेत्रों में बाँस वर्धन, किसानों हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम, बाँस से जुड़े उद्यमियों एवं फील्ड कार्मिकों (फील्ड फंक्शनरीज) हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम, अर्न्तराष्ट्रीय, राष्ट्रीय, राज्य एवं जिला स्तरीय सेमीनार/कार्यशालाओं का आयोजन, हस्तशिल्प क्षेत्र का विकास, बाजार सर्वेक्षण, बाँस हेतु विपणन की संभावनाओं का विकास, बाजार विकास एवं निर्यात हेतु संभावनायें विकसित करना आदि सम्मिलित हैं। योजना की सफलता हेतु राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत विभिन्न संस्थाओं, स्वयं सहायता समूहों, वन विकास अभिकरणों, संयुक्त वन प्रबन्ध समितियों, किसान समितियों सहकारी संस्थाओं एवं विपणन परिषदों को भी सम्मिलित किया गया है।

राष्ट्रीय बाँस मिशन के उद्देश्य इस प्रकार है:

(1) क्षेत्र आधारित क्षेत्रीय भिन्नता वाली समरनीतियां अपनाते हुए बाँस सेक्टर की वृद्धि प्रोत्साहित करना।

(2)सम्भावनाओं वाले क्षेत्रों में बाँसों की उपयुक्त जातियां लगाकर उन का उत्पादन बढ़ाते हुए बाँसों का क्षेत्रफल बढ़ाना।

(3)बाँसों और बाँस आधारित हस्ताउद्योगों की बाजार बिक्री प्रोत्साहित करना।

(4)बाँसों के विकास के लिए हितधारियों में परस्पर सहयोग और सहकारिता स्थापित करना।

(5)पारम्परिक ज्ञान और आधुनिक वैज्ञानिक जानकारी को भली भांति मिश्रित कर उपयुक्त तकनीक, प्रोत्साहित, विकसित और प्रचारित करना।

(6)कुशल और अकुशल कारीगरों, विशेषकर बेरोजगार युवाओं के लिए रोजगार के अवसर उत्पन्न करना।

देश में बाँस आधारित उद्योग एवं कृषि को प्रोत्साहित करने के लिए विशेषकर कृषकों एवं क्षेत्रीय कार्यकर्ताओं को बाँस की उन्नत कृषि, प्रबन्धन एवं विकास के सम्बन्ध में प्रशिक्षित करना अनिवार्य है। इसलिये किसान भाइयों बाँस लगाने मे फायदा ही फायदा है। इसलिए आप भी बाँस की खेती अपनांए तथा जीवन को खुशहाल बनायें।

राष्ट्रीय बाँस मिशन द्वारा चयनित आर्थिक महत्व की विभिन्न बाँस प्रजातियाँ:

बैम्बूसा बैम्बौस, बैम्बूसा बालकुआ, बैम्बूसा न्यूटेन्स, बैम्बूसा पैलिडा, बैम्बूसा टुल्डा, बैम्बूसा वल्गेरिस, डैन्ड्रोकेलेमस एस्पर, डैन्ड्रोकेलेमस जाईगेन्टियस, डैन्ड्रोकेलेमस स्ट्रिक्टस, मैलोकाना बैक्किफेरा, ऑक्लेंड्रा ट्रेवनकोरिका और ऑक्सीटेनेन्थेरा पार्वीफ्लोरा।

...पृष्ठ 47 का शेष

धुंधकक्ष के अन्दर का तापमान 30–32 डिग्री सेंटिग्रेट तथा आर्द्रता 70–80 प्रतिशत रखा जाता है। जड़ के अच्छी तरह निकल जाने पर इसे कुछ दिनों के लिए हाडनिग चैम्बर में रखी जाती है ताकि खेतों मे लगाने के लिए अच्छी तरह तैयार हो जाए।

इस प्रकार वैज्ञानिक विधि से तैयार स्वस्थ पौधे किसानों के लिए काफी लाभदायक होते है तथा उनका उत्पादन भी अच्छा होता है जिससे किसानों को उसका उचित मूल्य मिल जाता है। आजकल बहुत सारी कम्पनियां औषधीय पौधों की खरीद सीधे किसानों से करती है तथा गैर सरकारी संस्थान भी इस उत्पाद को बिक्री करने में सहायता करती है। जिससे किसानो की आय में वृद्धि हो रही है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वैज्ञानिक विधि द्वारा कलम से तैयार औषधीय पौधों के द्वारा किसान अपने खेतो मे औषधीय पौधों की अच्छी खेती कर सकते हैं और अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं। हमारा भी यही प्रयास है कि हम इन बहुमूल्य औषधीय पौधें के महत्व को पहचान और उसे अपना कर जीवन स्वस्थ बनाएँ।

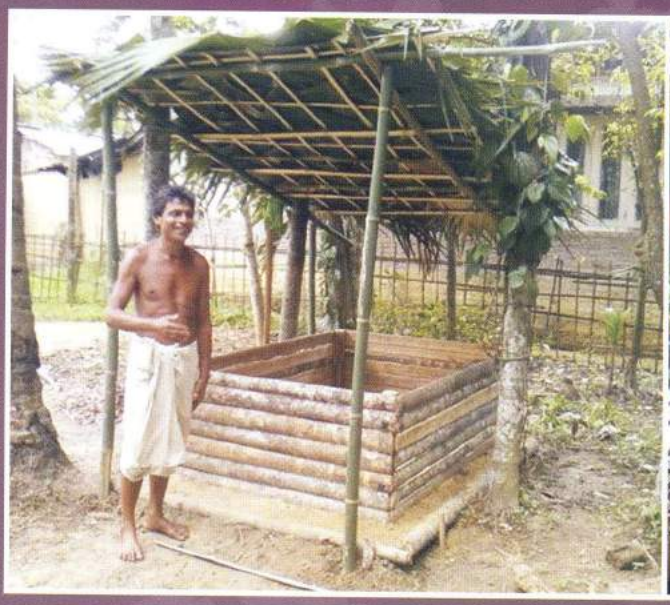

විවිධා

विविधा

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान में आयोजित किसान मेला

डॉ. एन. कृष्णकुमार एवं श्रीमती पूंगोदै कृष्णन
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर पिछले चार वर्षों से वृक्ष उत्पादक मेला का आयोजन करता है। वृक्ष उत्पादक मेला का मुख्य उद्देश्य किसानों, काष्ठ पर आधारित उद्योगों एवं वानिकी अनुसंधान संगठनों की एक बडी संख्या को एक साथ एक ही मंच पर लाना जिससे सभी को पेड़ खेती से सम्बन्धित मुद्दों को समझने और अपने–अपने विचारों एवं अनुभवों को आदान प्रदान करने में सहायता मिले।

इस वर्ष किसान मेला 23 और 24 फरवरी 2012 को कोयम्बटूर में आयोजित किया गया। 23 फरवरी 2012 को श्रीमती जयन्ती नटराजन, माननीय राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार), पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार ने इसका उद्घाटन किया। इस कार्यक्रम के दौरान माननीय मंत्री जी ने वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान के द्वारा प्रकाशित ''वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान की एक झलक'', ''उष्णकटिबन्धीय वन संरचना की कार्यवाही'', ''विलायती सारूँ संगोष्ठी की कार्यवाही'', ''जैव उर्वरक एवं जैव खाद पर पुस्तक'', ''मलीना अर्बोरिया एवं फ्रेंकिया पर कृषि मार्गदर्शिका'', ''वन अरिवियल– तमिल त्रैमासिक न्यूजलेटर'', ''संस्थान की हिन्दी विवरणिका'', ''विलायती सारूँ की उपज तालिका'' आदि प्रकाशनों को रिलीज किया। उन्होंने दो उत्पाद जैसे ''वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान के द्वारा विकसित जैव उर्वरक'' एवं ''पौधे निरुपण पर आधारित कीटनाशक'' को भी रिलीज किया। उन्होंने संस्थान में सराहनीय सेवा करने वाले कर्मचारियों को पुरस्कार भी दिये।

व.अ.वृ.प्र.सं. के विभिन्न प्रकाशनों का विमोचन करते हुए श्रीमती जयन्ती नटराजन, माननीय पर्यावरण एवं वन मंत्री डॉ. वी.के. बहुगुणा, महानिदेशक, भा.वा.अ.शि.प. तथा अन्य उच्चाधिकारी गण

न्यूजलेटर'', ''संस्थान की हिन्दी विवरणिका'', ''विलायती सारूँ की उपज तालिका'' आदि प्रकाशनों को रिलीज किया। उन्होंने दो उत्पाद जैसे ''वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान के द्वारा विकसित जैव उर्वरक'' एवं ''पौधे निरुपण पर आधारित कीटनाशक'' को भी रिलीज किया। उन्होंने संस्थान में सराहनीय सेवा करने वाले कर्मचारियों को पुरस्कार भी दिये।

उत्पादक मेला 2012 के भाग के रुप में ''स्थाई आजीविका के लिये वृक्ष खेती'' पर एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसमें वैज्ञानिकों, शिक्षाविदों, काष्ठ पर आधारित उद्योगों, वन विभागों एवं किसानों ने आजीविका वृद्धि के लिये वृक्ष खेती में सुधार, शुष्क भूमि में वृक्ष खेती करने की तकनीकियाँ, काष्ठ पर आधारित उद्योग एवं संस्थान, बाजार की माँग एवं आपूर्ति सम्बन्धित ऊर्जा वृक्षारोपण एवं ग्रामीण आजीविका और वृक्ष खेती में सर्वोत्तम प्रथा आदि बिभिन्न विषयों पर सभी ने अपने–अपने अनुभव व्यक्त किये। इस कार्यशाला में वन विभाग के प्रतिनिधियों शैक्षणिक एवं अनुसंधानिक संस्थाएँ, काष्ठ पर आधारित उद्योगों और स्वैच्छिक संगठनों के अलावा 1000 किसानों ने भी भाग लिया। माननीय मंत्री जी ने यह घोषणा की कूडलूर, विलुपुरम, पुदुचेरी क्षेत्रों में आये तूफान से प्रभावित किसानों की आपूर्ति हेतु 15 लाख विलायती सारूँ गुणवत्ता रोपण के उत्पादन के लिये 1 करोड रुपये अनुदान दिया जाये और इन क्षेत्रों के किसानों को कार्यक्रम के शुभारम्भ के एक प्रतीकात्मक संकेत के रुप में अंकुरों को वितरित किया जाये। उन्होंने वन

आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान को वन आनुवंशिक संसाधन एवं वृक्ष सुधार के विषय पर एनवीएस केन्द्र के रुप में घोषित किया। उन्होंने भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् को इस बात के लिये बधाई दी कि वह हितधारक उत्तरदायी संगठन के रुप में कार्यरत है और यह सुझाव दिया कि इन प्रयासों को भविष्य में भी निरन्तर करने की आवश्यकता है। उन्होंने कहा कि "विशिष्ट क्षेत्रों में अनुसंधान एवं विकास से अंततः कृषि आय में वृद्धि" विषय पर चर्चा व निर्णय करने हेतु इस तरह के कार्यों को आदर्श मंच के रुप में सेवा करनी चाहिए।

माननीय मंत्री श्रीमती जयन्ती नटराजन ने कहा कि वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, वन संसाधन प्रबन्धन के लिये नोडल एजेंसी के रुप में कार्य करेगा और अंततः यह राष्ट्रीय वन आनुवंशिकी संसाधन ब्यूरो की स्थापना हेतु नेतृत्व करेगा। उन्होंने 2013 में एफएओ के द्वारा रिलीज होने वाले विश्व वन आनुवंशिक संसाधन के लिये कन्ट्री रिपोर्ट तैयार करने में वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान के द्वारा किये गये प्रयासों की सराहना की। उसके बाद माननीय मंत्री जी ने किसानों एवं अन्य हितधारकों को सहायता देने हेतु 4.60 करोड रुपये कीमत से बनने वाले वन आनुवंशिक संसाधन प्रबंधन परिसर व विस्तार सभागार को बनाने के लिये आधारशिला रखी।

वृक्ष उत्पादक मेला के भाग के रुप में आयोजित प्रदर्शनी में वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान एवं काष्ठ विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान ने भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद का स्टाल लगाया। माननीय मंत्री जी ने कृषि वानिकी एवं कृषि वानिकी प्रौद्योगिकी पर भी प्रदर्शनी का उद्घाटन किया जिसमें 30 से भी अधिक वानिकी अनुसंधान संगठनों, काष्ठ पर आधारित उद्योगों, जैव खाद एवं जैव उर्वरक उद्योगों, कृषि उपकरण एवं औजार, जैविक उत्पाद, सिंचाई एजेंसियाँ वृक्ष उत्पादक, शेयर रोपण उत्पादन में शामिल हाई टेक नर्सरियाँ और स्व सहायता समूह आदि ने भाग लिया।

डॉ. वी. के. बहुगुणा, महानिदेशक, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद ने अपने अध्यक्षीय भाषण में भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं

श्रीमती जयन्ती नटराजन, माननीय पर्यावरण एवं वन मंत्री, भारत सरकार वन आनुवंशिकी एवं संसाधन काम्पलैक्स तथा विस्तार सभागार का शिलान्यास करते हुए।

शिक्षा परिषद की उपलब्धियों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि लोगों की आजीविका में सुधार लाने एवं हितधारकों की जरुरतों को पूरा करने के उद्देश्य से भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद ने अपने सभी अनुसंधान गतिविधियों को कार्यान्वयन में लाना शुरू कर दिया है। उन्होंने कृषक समुदाय के हित हेतु इस तरह के महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों के आयोजन के लिये वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान को बधाई दी।

डॉ. एन. कृष्णाकुमार, निदेशक, वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान ने अपने संबोधन में किसानों एवं अन्य हितधारकों के लिये संस्थान के द्वारा किये गये कार्यकलापों पर प्रकाश डाला। उन्होंने कहा कि सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताओं के अलावा प्रत्येक जिले से सम्बन्धित पर्यावरण एवं वानिकी मुद्दों की चर्चा करने हेतु तमिलनाडु, केरला, पांडुचेरी आदि प्रत्येक जिले के लिये एक–एक वैज्ञानिक को नियुक्त किया गया है।

के. रविचन्द्रन, प्रमुख, वन अर्थव्यवस्था एवं विस्तार प्रभाग ने माननीय मंत्री जी का स्वागत किया। उन्होंने वृक्ष उत्पादक मेला के महत्त्व को बताते हुए कहा कि इसका मुख्य उद्देश्य किसानों, काष्ठ पर आधारित उद्योगों एवं वानिकी अनुसंधान संगठनों की एक बडी संख्या को एक साथ एक ही मंच पर लाना है जिससे सभी को पेड़ व खेती से सम्बन्धित मुद्दों को समझने और अपने–अपने विचारों एवं अनुभवों को आदान प्रदान करने में सहायता मिले।

टी.पी.रघुनाथ, समूह समन्वयक (अनुसंधान) ने सभी को धन्यवाद देते हुए इस कार्यक्रम का समापन किया।

अतिसार (Diarrhoea) रोग-निदान में औषधीय जड़ी-बूटियों का उपयोग

श्री एस. आर. बालोच
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

मनुष्य सदियों से औषधीय जड़ी–बूटियों का उपयोग अपने तथा पालतू जीवों के रोग–निदान के लिए करता चला आ रहा है। प्रारम्भ में मनुष्य द्वारा सिर्फ एक या अधिक पौधों के जड़ी–बूटियों का प्रयोग किया जाता था लेकिन कालान्तर में इसमें सुधार लाकर जड़ी–बूटी के साथ कुछ अन्य पदार्थ मिलाकर इनका शोधन कर नया पदार्थ तैयार कर उपयोग किया जाने लगा। जड़ी–बूटियों के शोधन में इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि उनका उपयोग केवल रोगों के निदान के लिए ही नही बल्कि मनुष्य एवं उसके पालतू जानवरों के स्वास्थ्य को उन्नत करने हेतु मूल्यवान स्वास्थ्यपूरक भोजन पदार्थ बनाने के लिए के लिए भी किया जाय। जड़ी–बूटियों का प्रयोग केवल वैद्य एवं हकीमों तक सीमित नहीं रहकर जनसाधारण तक पहुँचे इसके लिए महत्वपूर्ण जानकारी जन–जन के बीच प्रचार एवं प्रसार करना जरूरी है। किसी भी रोग उपयोग जड़ी–बूटी के गुणों, ऋतु एवं वातावरण तथा उपयोग के तरीके पर गंभीरता से विचार करने पर ही वांछित फल की प्राप्ति हो सकती है। पौधों से औषधीय उत्पाद की प्राप्ति से पहले उसकी परिपक्वता पर विचार करना भी जरूरी है क्योंकि यदि अपरिपक्व जड़ी–बूटियों से औषधि का उत्पादन कर उपयोग किया जायेगा तो मनोवांछित फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अतः औषधीय उत्पाद को पौधों से संग्रहण के समय यह ध्यान रखना जरूरी है कि वे ताजी एवं पूर्णतया परिपक्व हों। पौधों के औषधीय प्रयोज्य भागों का संग्रहण उस मास में करना चाहिए जिसमें वे पूरी तरह उपयोग के लिए परिपक्व हो गये हों। सामान्यतः पौधों के प्रयोज्य अंगों का संग्रहण प्रातः काल में स्वच्छ स्थान से करना उत्तम माना गया है। ऐसा देखा गया है कि अधिकांश पौधे नवम्बर एवं दिसंबर माह में पूर्णतया परिपक्व होते हैं एवं उनमें औषधीय गुण सबसे ज्यादा उपस्थित रहते हैं। कुछ पौधे मई एवं जून माह में परिपक्व होते हैं। अतः परिपक्वता का विचार कर ही संग्रहण करना श्रेयस्कर है। संग्रह किये गये अंगों को औषधीय रूप में उपयोग से पहले उनकी प्रयोग विधि पर ध्यान देना जरूरी है। इसके अंतर्गत निम्नलिखित तरीका अपनाया जाता है :–

स्वरस : परिपक्व पौधों से इकट्ठे किये गये ताजे अंगों को कूटने या पीसने के पश्चात् तथा उसे सफेद स्वच्छ कपडे में रखकर निचोड़ने से प्राप्त रस को स्वच्छ बर्तन में इकट्ठा किया जाता है। इसी स्वच्छ रस को स्वरस कहा जाता है। यदि सूखी वनौषधि का स्वरस बनाना हो तो उसे चूर्णकर उसमें दुगुना भाग जल मिलाकर मिट्टी के घड़े में लगभग 12 घंटा भिगोंकर रखने के पश्चात छानकर जो जल प्राप्त किया जाता है उसका उपयोग स्वरस के रूप में किया जाता है।

चूर्ण : परिपक्व पौधों से संग्रहित उपयोगी अंग को अच्छी तरह साफ स्थान पर सुखाने के पश्चात उसको बारीक कूट या पीसकर तथा साफ कपड़े से छानकर जो चूर्ण प्राप्त होता है उसे चूर्ण कहा जाता है।

क्वाथ : वनौषधियों को एक साथ मिलाकर कूट लें। इस कूटे हुए पदार्थ का चार तोला में 64 तोला जल मिलाकर एक बर्त्तन में रखकर तब तक उबालें जब तक आठ तोला जल रह जाय। इसे छानने के पश्चात प्राप्त जल को क्वाथ कहा जाता है।

कल्क : यदि वनौषधि ताजी हो तो उसे महीन पीसकर चटनी की तरह बना लें। यदि वनौषधि सूखी हो तो उसमें थोड़ा जल मिलाकर खरल में खूब घोंटें। इस तरह से प्राप्त गीला पदार्थ कल्क कहलाता है।

पाक : सबसे पहले वनौषधि को चूर्ण बनाकर उसमें लगभग 20 गुना दूध डालकर, आग पर गर्म कर मावा के रूप में बना लें। इस दानेदार पदार्थ में उतना ही मात्रा की चीनी से तैयार तीन तार की चासनी

मिलावें। एक स्वच्छ थाली में घी लगाकर तैयार पदार्थ को ढालकर सूखने के पश्चात बरफी या लडडू के रूप में बनाकर औषधीय रूप में उपयोग किया जाता है।

फांट : पौधों के औषधीय अंग को खूब बारीक चूर्ण कर गर्म जल में मिट्टी या शीशे के बर्तन में दो घंटे तक भिगाकर रखें। इस जल को छानकर पुनः ठंडे जल में 12 घंटा रखने पर फांट तैयार हो जाता है।

पुटपाक : पौधों के ताजे औषधीय अंग को खूब महीन पीसकर गोला के रूप में बना लें। इस गोले को बड़, जामून या एरण्ड के पत्तों में लपेटकर उस पर कपड़ा लपेटें। इस गोले पर एक इंच मिट्टी का स्तर चढ़ाकर गोबर के कण्डे की आग में रखकर जलायें। जब गोला लाल हो जाय तब मिट्टी का स्तर हटाकर गोले का रस निचोड़ें। इस निचोड़े रस को पुटपाक कहते हैं।

क्षार : औषधीय पौधे के पंचांग को एक बर्तन में जलाकर राख बना लें। इस राख में 64 गुना जल मिलाकर 24 घंटे तक छोड़ दें। ऊपर से जल को दूसरे बर्तन में निथारकर रख लें जिसे उबालने पर काले रंग का क्षार तैयार हो जाता है।

आसव : पौधों के औषधीय प्रयोज्य अंग को जल में उबालें। उबले जल को कलई किये हुए पीतल के बर्तन में रखे ठंडे जल में मिलाकर रखने से एक से दो माह में आसव तैयार हो जाता है।

प्राक्कथन

अयोग्यः पुरूषो नास्ति, नास्ति द्रव्य मनोषम।
सर्वाणि सुलभाः यतः, योजकस्तत् दुर्लभम।।

नानौषधिभूतं जगति किंचिद्द्रव्य मुपलम्यते तां तां युक्तिमर्ये च तं तमभिप्रेप्य।।

पूरे संसार में लगभग 270000 प्रजाति के पौधे पाये जाते हैं। जलवायु एवं जगह विशेष तथा वातावरण के कारण कई स्थानों पर इनमें से अधिकतर प्रजाति उपलब्ध होती हैं तो कई अनुपस्थित। भारत में भी लगभग 47000 प्रजाति के पौधे उपलब्ध हैं लेकिन किसी भी स्थान पर सभी प्रजाति एक साथ उपलब्ध नहीं हैं। इनमें से लगभग 8000 प्रजातियों के पौधों का औषधीय महत्त्व पहचाना गया है जिनसे लगभग 10000 प्रकार की औषधियाँ बनाई जाती हैं।

उपरोक्त में से लगभग 7000 पौधे आयुर्वेदिक, 700 यूनानी, 600 सिद्ध, 450 होमियोपैथिक और 30 पौधों का आधुनिक औषधि बनाने में उपयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कई पौधों के विभिन्न प्रायोज्य भाग मनुष्य एवं जानवर के पूरक आहार तथा मनुष्य की सुंदरता बढ़ाने में प्रयोग किये जाते हैं। संसार में औषधीय पौधों से प्राप्त उत्पाद का बाजार लगभग 76 मिलियन डालर प्रतिवर्ष आंका गया है जिसमें लगभग 7 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी प्रति वर्ष दर्ज की जा रही है। इतने बड़े विश्व बाजार में भारत का हिस्सा मात्र 0.3 प्रतिशत है।

अतिसार/दस्त लगना (Diarrhoea)

बहेड़ा के गिरी को जलाकर चूर्ण के रूप में बना दें। इस चूर्ण को नमक के साथ मिलाकर खाने से फायदा होता है।

- ❖ आँवला के ताजा फल का रस दो से पॉच मिलिलिटर की मात्रा में प्रतिदिन तीन से चार बार पीने से अतिसार में लाभ होता है।
- ❖ पीपल के अंकुरों के साथ पतली खिचड़ी बनाकर दस्त के रोगी को खिलाने से लाभ होता है।
- ❖ कत्था चूर्ण 5 ग्राम को छाछ में घोलकर पीने से अतिसार में फायदा होता है।
- ❖ बबूल की पत्तियों का स्वरस छाछ में मिलाकर पिलाने से अतिसार में काफी लाभ होता है।
- ❖ अडुसा के पत्तों का स्वरस अतिसार में लाभकारी होता है।
- ❖ प्याज कन्द के रस में रत्तीभर अफीम मिलाकर पीने से अतिसार में लाभ होता है।
- ❖ जिमी कंद के कंद को सूखाकर उसका चूर्ण बना लें। इस चूर्ण में चीनी मिलाकर सेवन करने से अतिसार में लाभ होता है।
- ❖ कदम्ब के छाल का रस, जीरा एवं मिश्री के साथ सेवन करने से अतिसार में लाभ होता है।
- ❖ सुपारी के चूर्ण के सेवन से रक्ताअतिसार में लाभ होता है।
- ❖ कटहल के मूल का सेवन अतिसार में लाभ देता है।
- ❖ शतावर का 3–4 ग्राम ताजा चूर्ण बकरी के दूध में सेवन करने तथा चावल का सेवन बकरी के दूध के साथ करने से रक्तातिसार में लाभ होता है।

...शेष पृष्ठ 74 पर

जल गृहण क्षेत्र में अभियाँत्रिकी गतिविधियाँ

डॉ. एन. के. बौहरा, डॉ. डी. के. मिश्रा एवं श्री मनीष मेहरा

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

विकास कार्यों में भूमि एवं जल संरक्षण हेतु विभिन्न प्रकार की यांत्रिक विधियाँ प्रयुक्त होती है। जो कि विभिन्न प्रकार की भूमि के लिए उपयुक्त होती है:

1. कृषि योग्य भूमि पर उपचार – संरक्षण उपाय, उत्पादन पद्धतियां
2. अकृषि भूमि पर उपचार – संरक्षण उपाय, उत्पादन पद्धतियां
3. जल निकास नालियों का उपचार

आवश्यक अभियांत्रिकी उपाय

1. कृषि योग्य भूमि पर उपचार

(अ) कन्टूर खेती : इसमें टोपोग्राफिकल सर्वेक्षण के आधार पर निर्धारित कन्टूर लाईन लगाकर पानी को छोटे–छोटे अवरोधों से रोका जाता है। इस विधि से पानी की गति कम रहने से भूमि का कटाव नहीं होता तथा भूमि में नमी का संरक्षण भी होता है। इस प्रकार की विधि में मशीन/उपकरणों का रख–रखाव भी नहीं करना पडता तथा यह विधि 2 से 7 प्रतिशत ढ़लान पर अधिक उपयोगी है।

(ब) कन्टूर बण्डिग: इसमें ढ़ाल के विपरीत दिशा में मिट्टी के डोलों का कन्टूर लाईन पर निर्माण कर उस पर खस/मूंजा/धामण आदि का रोपण करते है। इस विधि में लम्बे समय तक जल एवं मृदा का संरक्षण होता है। इस विधि में बण्ड की ऊँचाई एवं आकार विभाग के डिजाइन मेन्यूअल के आधार पर ज्ञात करते हैं। बण्ड पर वानस्पतिक आवरण क्षेत्र के किसानों की पसन्द, वातावरण के प्रकार व भूमि के आधार पर करते हैं।

अकृषि भूमि पर उपचार

(1) खडीन : यह सामान्यतः रेगिस्तानी क्षेत्रों में बहुतायत से प्रयुक्त होती है। इसमें कम ढ़ाल वाले खेतों पर वर्षा जल संग्रहित किया जाता है। जिससे भूमिगत जलस्तर में बढ़ोत्तरी होती है। खडीन के लिए स्थान का चुनाव, उसकी डिजाइन एवं प्लानिंग भी विभाग के मैन्यूल एवं क्षेत्र की स्थिति के आधार पर किया जाता है।

(2) फार्म पोण्ड : इसमें खेत में उपयुक्त स्थान पर फार्म पोण्ड का निर्माण करते है जिसमें भूमिगत जलस्तर में वृद्धि होती है तथा उपलब्ध पानी सिंचाई पेयजल आदि के रुप में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार के निर्माणों में गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वालों एवं सामुदायिक/जनभूमि को उचित आधार पर प्राथमिकता दी जानी चाहियें।

(3) खाई एवं डोल की बाड : इसमें मिट्टी की खुदाई कर उससे निकलने वाली मिट्टी से डोल बनाते है। इस प्रकार खाई एवं डोल का निर्माण कर उस पर वृक्षों/झाड़ियों के बीजों का रोपण अथवा खस–मूंजा का रोपण किया जाता है जिससे ये खाई एवं डोल अधिक समय तक सुरक्षित एवं स्थिर रहे।

(4) वी. डिच निर्माण : वी.डिचों का निर्माण सामान्यतः 10 प्रतिशत ढ़लान वाले क्षेत्रों में किया जाता है तथा इस कार्य में बहने वाले पानी की मात्रा, विभाग के मैन्यूअल, वी. डिच की अनुप्रस्थ काट आदि का निर्धारण क्षेत्र विशेष के आधार पर किया जाता है।

(5) स्टेगर्ड ट्रेंच : अधिक ढ़ाल वाले पहाडी क्षेत्रों में वर्षा जल की हानि रोकने एवं भूमि के कटाव से बचने के लिए पंक्ति में खड्डे की बण्ड पर वनस्पति का रोपण करने से बण्ड अधिक समय तक स्थिर रहते है। इन खड्डों के द्वारा पानी के बहाव की गति कम होती है तथा प्राकृतिक रुप में नमी का संरक्षण होता है।

(6) अपवर्तक नालियां : जल ग्रहण क्षेत्रों में कभी–कभी ऊँचाई पर स्थित क्षेत्रों की अपेक्षा नीचे वाले क्षेत्रों में अधिक कार्य करना पडता है। असाधारण वर्षा के कारण निचले क्षेत्रों में बहुत पानी बहकर आ जाता है जो हानि पहुचां सकता है अतः ऐसे क्षेत्रों हेतु अपवर्तक नालियों का निर्माण करते है। इन नालियों का मुख्य उद्धेश्य ऊपरी क्षेत्र से आने

वाले अपवाह जल को प्राप्त कर सुरक्षित रुप से दिशा परिवर्तन कर बाहर निकालना हेाता है।

(7) चैक डेम : क्षेत्र के नाले के ऊपरी भाग पर छोटी गलीमुना क्षेत्रों में भूमि का कटाव रोकने एवं पानी के बहाव को कम करने में इनका निर्माण होता है। इसमें नालों के बीच जगह–जगह रुकावट डालकर पानी को रोका जाता है। पानी का वेग कम होने से बहती मिट्टी भी वहाँ रुक कर जमा हो जाती है।

स्थानीय उपलब्ध सामग्री तथा स्थल की आवश्यकता के अनुसार चैक डेम निम्न प्रकार से बनाया जा सकता है :

(अ) ब्रश बुड चैक डेम : लकडी के डंडे की दो लाइनें गाडकर उनके बीच में स्थानीय झाड़ियों, पेड़ों की शाखाओं एवं लकड़ियों को जमाकर ब्रशबुड चैक डेम बनाते है। इनके साइड में एवं तल में भूसा एवं मिट्टी भर देते है।

(ब) पत्थर चैक डेम : सूखे पत्थरों की मोटी दरार नाले में बनाकर पानी की रुकावट तैयार की जाती है। जहाँ तक हो सके बड़े आकार के पत्थर काम में लिये जाने चाहिए।

(स) वानस्पतिक चैक डेम : मिट्टी का चैक डेम बनाकर क्षेत्र में उपलब्ध वानस्पतिक झाडियां यथा खस/मूंजा, ग्वारपाठा, रामबांस आदि की तीन चार लाईनों का रोपण नाले के बहाव के विपरीत कर दिया जाता है। इनके निर्माण में कम जगह में पानी की व्रीवता रोकी जा सकती है।

(द) गेबियन चैक डेम : ये मध्यम ढ़लान वाली नालियों में अर्ध चन्द्राकार आकृति में बनाए जाते है जहाँ पानी का वेग अधिक होता है वहॉ गेबियन चैक डेम का निर्माण किया जाता है इसमें सूखे पत्थरों की चिनाई से निर्मित चैक डेम को तार की जाली से बांध दिया जाता है। यह चैक डेम अधिक क्रियाशील तथा रिचर होता है।

(य) मिट्टी के चैक डेम : सिमेन्ट के खाली थैलों में मिट्टी भर थैलों को बांध दिया जाता है तथा थैलों को नाले में एक के ऊपर एक जमाकर रुकावट बना दीं जाती है। यह चैक डेम कम लागत के व अधिक क्रियाशील होते है। परन्तु इनकी स्थिरता सामान्य होती है।

नाले के अन्तिम भाग का उपचारः– जल ग्रहण क्षेत्र में नाले के अन्तिम बिन्दु पर क्षेत्र बड़ा ओर गहरा हो जाता है अतः उसी अनुसार भूमि व जल संरक्षरण के लिए बडे पक्के स्ट्रक्चर के निर्माण की आवश्यकता होती है। उपलब्ध राशि अनुसार एनीकट राजस्थान में जल संग्रहण के लिए किया जाने वाला प्रमुख निर्माण कार्य है। इसका निर्माण नाले पर पानी को रोकने के लिए किया जाता है। एनीकट निर्माण से क्षेत्र के कुओं के जलस्तर में बढोतरी होती है, पशुओं को पीने का पानी तथा आसपास के खेतों को सिंचाई हेतु पानी उपलब्ध होता है।

इसके स्थान का चयन इस प्रकार किया जाता है कि कम से कम लागत अधिक से अधिक पानी एकत्रित किया जा सके। गहरी तथा संकरी घाटियां इस दृष्टि से उपयुक्त रहती है।

जल ग्रहण विकास दल सदस्य की भूमिका

1. सदस्य को अपने जल ग्रहण क्षेत्र का पूरा ज्ञान होना चाहिये। भौतिक निरीक्षण कर क्षेत्र की भौगोलिक स्थिति का पूरा ज्ञान होने पर ही वह आवश्यक निर्माण की आवश्यकता का आंकलन कर सकता है।
2. **अनुभव**– सदस्य को क्षेत्र की पारिस्थितिकी का पूर्ण अनुभव एवं ज्ञान होने पर ही यथा पानी की उपलब्धता, वर्षा की मात्रा, पानी का वेग, बहाव की दिशा आदि के अनुरुप निर्माण कार्य प्रस्तावित किये जा सकते है।
3. **स्थल का चुनाव**– सही स्थल का चुनाव भी सदस्य की भूमिका पर ही निर्भर करता है।
4. **तकनीक चयन**– क्षेत्र में उपलब्ध सामग्री के अनुरुप सस्ती एवं सुलभ तकनीक का चयन सदस्यों द्वारा किया जाना चाहिए।
5. **जागरुकता**– ग्रामीणों के मध्य जागरुकता एवं आवश्यकता प्रतिपादित कर कार्य स्वीकृत अनुसार सामुहिक भूमि के कार्यों की 5 प्रतिशत राशि तथा निजी भूमि पर करवाये जाने वाले कार्यों की 10 प्रतिशत राशि लाभान्वितों/लाभान्वित से संग्रहित करवाना।
6. **प्रदर्शन प्लाट**– क्षेत्र में पूर्व में करवाये गये कार्यों का सफल उपयोग, उसके परिणाम एवं लाभ की जानकारी का लाभ लोगों को निरीक्षण करवाकर एवं प्रचार करने से भविष्य के कार्यों के प्रति लोगों में जागरुकता पैदा करनी चाहिये।

किसानों के लिए लाभकारी : कम्पोस्ट

डॉ. पी. के. दास
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

उत्पादन विधि एवं उपयोग

- आजकल जैविक खादों के अधिकाधिक उपयोग पर विशेष बल दिया जा रहा है। रासायनिक खाद की तुलना में जैविक खाद पर्यावरण के लिए श्रेयस्कर है। अतः जैविक खादों के प्रयोग को बढ़ाकर हम रासायनिक खाद के उपयोग की मात्रा कम कर सकते हैं। इससे जमीन की उर्वरा क्षमता बनी रहती है साथ ही मिटट्री की स्थिति में सुधार भी होता है।

जैविक खाद

- कम्पोस्ट एक प्रकार की जैविक खाद है जिसे किसान लोग स्वयं तैयार कर सकते हैं। इसके लिए सुलभ कृषि उत्पादों के अवशेष एवं जंगल या बंजर भूमि पर उपलब्ध खरपतवार एवं जंगली झाड़ियों का उपयोग किया जा सकता है। इसकी विधि नीचे दी जा रही है।

कम्पोस्ट बनाने के लिए आवश्यक सामग्री

- **कच्चा माल :** धान का भूसा, पुआल, घाटों या पुटुस एवं अन्य झाड़ी, चूर्ण मिटट्री जीवाणु स्रोत के लिए, यूरिया, गोबर का घोल चाहिए। एक क्विंटल कम्पोस्ट तैयार करने के लिए निम्नलिखित मात्रा में सामग्रियों की आवश्यकता होगी।

क. कृषि उत्पादों के अवशेषों द्वारा : धान का भूसा + पुआल + चूर्ण मिटट्री + गोबर घोल + यूरिया + एस0 एस0 पी0 . 64 कि0 + 96 कि0 + 20 कि0 + 20 कि0 + 2 कि0 + 1 कि0।

ख. जंगल की झाड़ी इत्यादि द्वारा – घाटों या पुटुस + मिटट्री चूर्ण + गीला गोबर + यूरिया 197 कि0 + 25 कि0 + 25 कि0 +2.5 कि0।

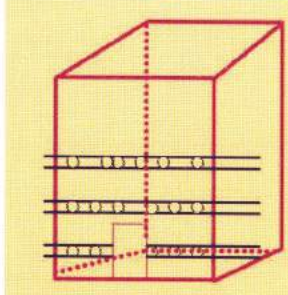

जैविक खाद तैयार के लिए चैम्बर डिजाईन– जमीन के ऊपर

- कम्पोस्ट तैयार करते समय सामग्री मे नमी, वायु चलाचल एवं तापमात्रा के उपर ध्यान देना चाहिए। इसलिए 7 से 8 दिन बाद बाद लगातार सामग्री को पानी के साथ उलट पलट कर देना चाहिए और सामग्री सूखनी नहीं चाहिए, कम से कम 40 से 50 प्रतिशत नम रहनी चाहिए, इस तरह से 40 से 50 दिन मे कम्पोस्ट तैयार हो जाता है।

- **कम्पोस्ट चैम्बर का डिजाईन :** जैविक खाद तैयार करने के लिए दो प्रकार के चैम्बर डिजाईन हो सकते हैं :

क. जमीन के उपर का चैम्बर जमीन के उपर चैम्बर का डिजाईन तैयार करने में एक चैम्बर का खर्च करीबन 5000/–रूपये पड़ता है। जिसकी क्रमशः लम्बाई 3 मी0 चौड़ाई 2 मी0 एवं उचांई 2.5 मीटर होनी चाहिए।

...शेष पृष्ठ 79 पर

लाह के विकास में वन उत्पादकता संस्थान का योगदान

श्री रामेश्वर दास, डॉ. अरविन्द कुमार एवं श्री एस. एन. वैद्य
वन उत्पादकता संस्थान, राँची

लाह का उत्पादन प्राकृतिक रूप से **केरिया लैका** (केर) नामक कीड़े द्वारा किया जाता है। ये कीड़े अपने पोषण हेतु विशेष प्रकार के पेड़ की टहनियों का ही उपयोग करते है। लाह कीट लाह पोषक वृक्षों के कोमल डालियों से रस चूसकर अपने शरीर से रॉल (Resin) को स्रावित करते हैं जो हवा के संसर्ग में रॉल पदार्थ पपड़ी के रुप में परिणत हो जाता है जिसे लाह या लाख कहा जाता है और यह लाह, कीट हेतु कवच का काम करता है। यह क्रिया लाह कीट के जीवन काल तक चलती रहती है। प्रारंभ में लाख कीट के पिल्लू या लार्वा की लम्बाई लगभग 0.35 मि0 मी0 होती है। मादा कीट की लम्बाई 0.6 मि0 मी0 तथा नर कीट की लंबाई लगभाग 0.75 मि0 मी0 होती है।

लाख कीट की दो प्रजातियाँ कुसमी एवं रंगीनी होती है तथा प्रत्येक प्रजाति से वर्ष में दो बार लाख की फसल प्राप्त की जा सकती है। रंगीनी फसलें वैशाखी एवं कतकी कहलाती है। जबकि कुसुमी फसलें अगहनी और जेठवी कहलाती हैं। इन फसलों के नाम हिन्दी महीनों के आधार पर रखे गए है।

लाख की पैदावार वैदिक काल से होती आ रही है और इसका उपयोग विभिन्न रूपों में किया जाता रहा है। महाभारत काल में कौरवों ने पाण्डवों को मारने के लिए लाक्षा गृह का निर्माण कराया था, इसके निर्माण में कितनी लाख लगी होगी इसका अनुमान लगाया जा सकता है। आदि काल से लाख उपजायी जाती रही है और वार्तमान में इसकी खेती करके इसे व्यवसाय के रूप में विकसित की जा चुकी है। इसकी खेती करने वाले किसान आदिवासी तथा आर्थिक रूप से पिछड़े ही होते हैं। नयी तकनीक के अभाव में ये लोग लाह खेती को पौराणिक विधि ही अपनाते है।

लाह विकास में वन उत्पादकता संस्थान

लाह की खेती के लिए किसानों द्वारा पौराणिक तरीका ही अपनाया जाता था तथा इन किसानों को उपयुक्त उत्पादन नहीं मिल पाता था। किसानों की समस्या के समाधान के लिए वैज्ञानिक और उन्नत तरीके से लाख की खेती को बढ़ावा देने तथा लाख के उत्पादन को बढ़ाने के उदेश्य से राँची में सन् 1921 में इंडियन लैक एसोसियेसन बनाया गया। सन् 1930 में सरकार के आर्थिक योगदान से भारतीय लैकसेस कमेटी (ILCC) नामक संस्था बनायी गयी, जिसकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति निर्यात होने वाले लाह पर लगाये जाने वाले शेश से की जाती थी। इस कमेटी, ने भारतीय लाह अनुसंधान संस्थान को भी अपने अधीन कर लिया। सन् 1957 में लाह विस्तार इकाई की आवश्यकता महसूस की गयी और तदनुसार लैकसेस कमेटी के अधीन एक लाह विस्तार इकाई की स्थापना की गयी। वर्ष 1966 में तत्कालीन लैक कमेटी की समाप्ति के बाद इसी वर्ष भारत सरकार के कृषि मंत्रालय (कृषि विभाग) द्वारा के अन्तर्गत लाह विकास विपणन और संबंधित क्रियाकलापों को जारी रखने और विस्तार करने के लिए **"लाह विकास निदेशालय"** की स्थापना हुई। भारतीय लाह अनुसंधान संस्थान का विलय कर सन् 1966 में ही भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् को सौंप दिया गया। लाह की खेती करने वाले राज्यों एवं लाह उद्योग उत्पादन से संबन्धित अन्य व्यक्तियों को लाह खेती में उचित प्रतिनिधित्व देने के ध्येय से भारतीय लाह विकास परिषद् नाम की सलाहकार समिति का भी गठन किया गया।

पर्यावरण एवं वन मंत्रालय की स्थापना के बाद वर्ष 1985 में "लाह विकास निदेशालय" को इस मंत्रालय में हस्तांतरित कर दिया गया। अधीनस्थ

और क्षेत्रीय इकाईयों, कार्यालयों के पुनर्गठन के कारण जुलाई 1987 में लाह विकास निदेशालय को वन अनुसन्धान देहरादून के साथ विलय कर दिया गया, सन् 1995–96 में "लाह विकास निदेशालय" वन उत्पादकता संस्थान, कर दिया गया। वर्त्तमान में पूर्व "लाह विकास निदेशालय" वन उत्पादकता संस्थान, राँची, भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद् देहरादून के अधीनास्थ कार्यरत है। वर्त्तमान के वन उत्पादकता संस्थान के अधीनस्थ 09 लाह बीज फार्म क्रमशः बिहार, झारखण्ड, प0 बगांल, उड़ीसा, छतीसगढ़ एंव मध्यप्रदेश में कार्यरत थे। वर्तमान में झारखण्ड राज्य के लातेहार जिले में (चंदवा) रंगीनी फार्म तथा राँची जिले में (हेसाडीह) कुसुमी लाह बीज तथा उड़ीसा राज्य के मयूरभंज जिले में (चाकड़ी) कुसुमी लाह बीज फार्म स्थापित एवं कार्यरत है।

विश्व में लाह के प्रमुख उत्पादक देश भारत एवं थाइलैंड है। इसके अलावा चीन, बंग्लादेश, पाकिस्तान, इन्डोनेशिया, वियतनाम इत्यादि भी लाह उत्पादन करते है। भारत वर्ष में मुख्य लाह उत्पादक राज्यः– झारखण्ड, मध्यप्रदेश, छतीसगढ़, पश्चिम बंगाल, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र और गुजरात इत्यादि राज्य हैं।

लाख की दोनो प्रजातियों के उत्पादन में सहायक वृक्षों का विवरण निम्नवत है :

लाख एक प्राकृतिक राल है जिसका प्रकृति, मनुष्य

रंगीनी प्रजाति	कुसुमी प्रजाति
पलास, वेर, आकाशमानी, खैर भालिया, पीपल, डुमर,गलवांग, फुटकल, पाकड़, पोढो, पुतरी, घोंट, अरहर, रेन ट्री इत्यादि	कुसुम, वेर, आकाशमनी, गलबांग, भालिया, पुतरी, आदि।

अथवा किसी अन्य जीव पर कोई दुष्प्रभाव नही है। लाख का मानव अपनी विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भिन्न–भिन्न रूप में उपयोग करता है जिनमें मुख्य हैं:–

1. लाख से चौरी एवं चपड़ा का निर्माण।
2. वार्निस के निर्माण में।
3. पेन्ट एवं पालिस का निर्माण में।
4. प्राकृतिक फल एंव सब्जियों पर लाह का लेप के रूप में।
5. दवाईयों में कवच एवं लेप के रुप में।
6. पेय पदार्थो में।
7. श्रृँगार प्रसाधनों के निर्माण में।
8. चमड़े की रंगाई में।
9. बिजली के उपकरणों को अवरोधी बनाने के लिए।
10. जल जहाज पर लेप।
11. डाकघर एंव कार्यालयों मे सील के रूप में उपयोग।
12. प्राकृतिक रंगों, चूड़ी एवं कंगन के निर्माण में।
13. सजावटी सामानों के निर्माण में।
14. खिलौनों के निर्माण में।
15. ग्रामोफोन रिकार्ड इत्यादि में।

लाह उत्पादन में वृद्धि के प्रयास

लाख बीज फार्म :

वन उत्पादकता संस्थान के अधीनस्थ रंगीनी लाह बीज फार्म लातेहार जिले के चंदवा में राँची–डालटनगंज रोड पर अवस्थित है। यह फार्म दो खण्डों में विभक्त है। फार्म के अन्तर्गत लगभग पलास 2885 वेर 310 भालिया 500 एवं गलबांग 500 पोषक वृक्ष एवं झाड़ियॉ है। दो कुसुमी फार्म क्रमशः राँची जिले के सिल्ली (हेसाडीह) में रॉची–पुरूलिया रोड पर तथा उड़िसा राज्य के मयूरभंज जिले में, जमशेदपुर–मयूरभंज रोड से लगभाग 8 कि0 मी0 पर चाकड़ी में अवस्थित है। दोनो कुसुमी फार्म में क्रमशः हेसाडीह 344 तथा चाकड़ी में 400 कुसुम वृक्ष है।

तीनों लाह बीज फार्म के तहत लाह या लाख उत्पादन प्रसार के लिए समय–समय पर उन्नत विधि द्वारा लाह की खेती पर निःशुलक प्रशिक्षण एवं लाह बीज ग्रामीणों / कृषकों को आवंटित किया जाता है।

प्रशिक्षण एवं प्रसार

वन उत्पादकता संस्थान लाह या लाख उत्पादन प्रसार के लिए मांग के अनुसार एक दिवसीय फिल्ड प्रशिक्षण तथा पाँच दिवसीय वर्गीय

प्रशिक्षण सह प्रदर्शन–प्रशिक्षण दी जाती है। संस्थान ने विगत वर्षों मे झारखण्ड, पं0 बंगाल, छतीसगढ़, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा राज्यों के ग्रामीणों, लाह कृषकों, स्वयं सहायता समूहों, वन विभाग, आदि को प्रशिक्षण दिया है। वर्ष 2005 में मध्य प्रदेश राज्य के बालघाट में लाह बीज फार्म स्थापित करने में संस्थान द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गई जो आज की स्थिति में लगभग 40–50 क्विन्टल लाह बीज प्रतिवर्ष का उत्पादन कर रहा है।

लेखाचित्र 1: वन उत्पादकता संस्थान द्वारा गत वर्षो में वैज्ञानिक विधि द्वारा लाख की खेती पर दिया गया प्रशिक्षण।

तकनीकी सहयोग

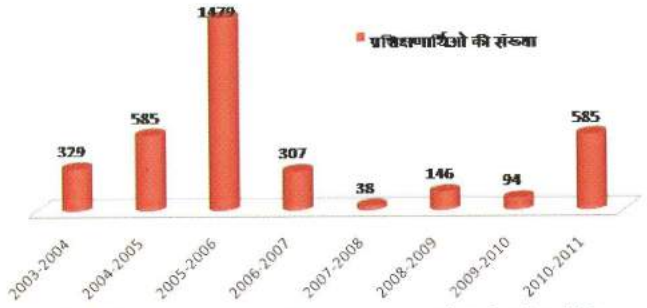

लेख चित्र: वन उत्पादकता संस्थान द्वारा गत वर्षों में वैज्ञानिक विधि द्वारा लाह की खेती पर दिया गया प्रशिक्षण

(1) यह विभिन्न राज्यों से लाख उत्पादन, मूल्य, आंतरिक खपत, निर्यात आदि सें संबंधित आंकडे का संग्रहण और संकलन का कार्य करता है जिसका उपयोग किसान, व्यवसायी सरकारी विभागों द्वारा भारत में लाह उत्पादन का अनुमान लगाने और पूर्वानुमान प्रसारित करने के लिए किया जाता है।

(2) किसानों को उन्नत विधि से लाह या लाख की खेती करने के ढ़ग का प्रदर्शन करने और किसानों के बीच उन्नत बीज के वितरण के लिए क्षेत्रीय स्तर पर स्थापित लाह बीज फार्म की देख भाल करना।

(3) लाह विकास संबंधी केन्द्र सरकार और राज्य सरकार के कार्यो के वीच सम्पर्क स्थापित करना, राज्य सरकार और अन्य संस्थानों को लाह की खेती की योजना बनाने, विपणन, निर्यात आदि के संबंध में तकनीकी सलाह देना।

परियोजना एवं समन्वय : वन उत्पादकता संस्थान राँची ने विभिन्न राज्यों में लाह विकास कार्यक्रमों की योजना बनाने और समन्वय स्थापित कर विभिन्न परियोजनाओ में कार्य किया है । इसने नावार्ड (NABARD), भारतीय प्राकृतिक रॉल एवं गोंद संस्थान (IINRG), झासको लैम्फ (JASCOLAMF), ट्राइफेड (TRIFED), शेलाक एक्सपोर्ट प्रमोशन कॉनसिल (SEPC), छत्तीसगढ़ एंव मध्यप्रदेश, माइनर फारेस्ट प्रोडयूस मार्केटिंग एंड डेवलपमेंट फेडरेसन लिमिटेड के बीच समन्वय बनाये रखा है।

वैज्ञानिक अनुसंधान कार्य:

(1) संस्थान के द्वारा विभिन्न लाह पोषक वृक्षों/झाड़ियो पर विभिन्न रासायनिक खाद की विभिन्न मात्रा के सहयोग से अनुसंधान कार्य किया गया।

(2) विभिन्न राज्यों से अच्छे सुडोल लाह पोशक वृक्ष (कुसुम)की डालियॉ नोड़स को लेकर तत्काल ज्याद से ज्यादा अत्याधिक उत्पादन वाली कुसुम वृक्ष से लाह उत्पादन किया जा सके। अनुसंधान कार्य जारी है।

(3) भालिया के दो प्रजाति फिलेमेनजिया सेमियालता एवं फिलेमेनजिया मेक्रोफाइला पर विभिन्न जैविक खाद की विभिन्न मात्रा के सहयोग से लाह उत्पादन के वास्ते अनुसंधान कार्य कार्यान्वित है।

(4) अनुसंधान एवं उन्नत तकनीक के तहत संस्थान के तीनों लाह बीज फार्म में लाह उत्पादन प्रशिक्षण प्रसार कार्य अनवरत जारी है।

लाह कीट के परंपरागत पोषक वृक्षों की दिन–प्रतिदिन कमी से आ रही परेशानी से निजात पाने के लिए फिलेमेन्जिया जैसे नये पोषक पौधें पर लाख उत्पादन पर परियोजनायें चलाकर गहन अध्ययन की आवश्यकता है ।

मरू-प्रसार के कारण और रोकथाम के उपाय

डॉ. एस. के. शर्मा, डॉ. धमेन्द्र वर्मा एवं डॉ. रवीन्द्र कुमार
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

प्रस्तावना

हमारे देश की कुल 305 मिलियन हैक्टेयर भूमि में से करीब 18 मिलियन हैक्टेयर भूमि आवासीय एवं उत्पादकीय है जबकि 21 मिलियन भूमि चट्टानी एवं हिमाच्छादित है। शेष 266 मिलियन है भूमि मे से 23 मिलियन हैक्टेयर भूमि ऊसर या परती भूमि है एवं 17 मिलियन हैक्टेयर भूमि को परिष्कृत कर योग्य भूमि बनाया जा सकता है। केवल 83 मिलियन हैक्टेयर भूमि में वन एवं चारागाह है तथा 143 मिलियन हैक्टेयर भूमि में खेती होती है। इस प्रकार कुल भूमि के करीब 46 प्रतिशत भाग में ही खेती की जाती है तथा शेष भूमि व्यर्थ पड़ी रहती है। इसी प्रकार वनों का प्रतिशत भी निर्धारित न्यूनतम मानदण्ड से काफी कम है।

इसका मूल कारण है देश की 50 प्रतिशत से अधिक भूमि पर मृदा का उपजाऊ नहीं होना है। मृदा संरक्षण के कई कारक है इसमें मुख्य है मृदा अपरदन, अर्थात मृदा का एक स्थान से दूसरे स्थान पर जमा होना। इसके अतिरिक्त वृक्षों का उन्मूलन एवं अनियंत्रित रूप से उनका दोहन भी मृदा क्षरण के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। मृदा के क्षरण के अन्य कारणों में प्रमुख है– जलाक्रांति, लवणभवन एवं नगरीय अतिक्रमण मृदा क्षरण रोकने एवं मृदा को उपजाऊ बनाने हेतु बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण ही एक मात्र उचित एवं सुलभ उपाय है। वृक्षारोपण द्वारा मृदा अपरदन रोकने, टीबा स्थितिकरण करने एवं पर्यावरण को संतृलित करने में सहायता मिलती है।

हमारे देश का 12 प्रतिशत भू भाग रेगिस्तानी है, जो कि राजस्थान, गुजरात, हरियाणा व पंजाब प्रांतों में स्थित है। इसका भी 60 प्रतिशत क्षेत्र पश्चिमी राजस्थान में है, जो कि थार मरूस्थल कहलाता है। इस मरु प्रदेश की कठिनतम परिस्थितियों व विषम जलवायु ने इस धरा के मानव को संर्धषमय जीवन जीने को बाध्य किया है। पूरे विश्व में जो विकास क्रांति चल रही है उससे यह प्रदेश भी अछूता नहीं है। मरु क्षेत्र का मानव भी सुखी व समृद्धिशाली जीवन जीने को लालायित है व प्रयत्यनशील भी है। इस क्षेत्र के विकास में मुख्य अड़चन यहां की विषम जलवायु व भौगोलिक परिस्थितियां है। भौगोलिक परिस्थितियों ऐसी है कि पूरे क्षेत्र में बालू व बालू के टिब्बों का प्रादुर्भाव है। विशेषकर टिब्बों का बहुतायत सबसे विकट समस्या है। राजस्थान, गुजरात, हरियाणा व पंजाब के मरु क्षेत्रों का लगभग 88,073 वर्ग किमी भू–भाग टिब्बों से प्रभावित है। राजस्थान के थार मरूस्थल क्षेत्र का करीब 58 प्रतिशत भाग टिब्बों से ग्रसित है, जो कि विभिन्न प्रकार, आकार व नाप के है।

भू–क्षरण एवं मरूस्थल प्रसार के कारण

कमजोर भारतीय उपोष्ण पारिस्थितिकीय प्रणाली में पर्यावरण के अवक्रमण के मूल कारण निम्नलिखित है :

- बढ़ता जैविक दबाव
- पर्याप्त निवेश तथा उपयुक्त प्रबंधन प्रणालियों का अभाव
- जनसंख्या वृद्धि की उच्च दर और ग्रामीण क्षेत्रों में अत्यधिक गरीबी
- प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन
- सार्वजनिक सम्पत्ति संसाधनों के प्रबंधन के लिए पारंपरिक संस्थानों का समाप्त होना और नये संस्थानों द्वारा इस कमी को पूरा करने में असफलता
- भूमि उपयोग की गलत पद्धतियां

कार्यनीति

- वनेत्तर क्षेत्रों में बंजरभूमि अवक्रमण को नियंत्रित करने, देश की ऐसी बंजरभूमि को निरंतर

उपयोग में लाने तथा बायो–मास विशेषरुप से ईंधन–लकड़ी, चारे, फल, फाइबर और छोटे पेड़–पौधों की उपलब्धता को बढ़ाने के उद्देश्य से विकसित करना है। भारत सरकार इस व्यापक कार्य को गांव स्तर की संस्थाओं को सशक्त बनाकर एवं उन्हें पुनर्जीवित करके तथा लोगों की भागीदारी से अपने समेकित बंजरभूमि विकास कार्यक्रम (आई. डब्ल्यू.डी.पी.) के जरिए कर रहा है। यह लोगों का अपना कार्यक्रम है जिसका लक्ष्य परियोजना के कार्यान्वयन में तथा धन के वितरण में लोगों को वास्तविक रूप में निर्णय लेने की शक्तियां प्रदान करना है।

यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसमें लोगों को अधिकार सम्पन्न बनाने की दिशा में गंभीर प्रयास किए जा रहे है ताकि लोगों के बीच सामूहिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित हो सके। वाटरशेड विकास संबंधी नये मार्गदर्शी सिद्धान्त में परंपरागत पद्धति में मूलभूत परिवर्तन किया गया है, इसमें सरकार की भूमिका शासन की बजाय सुविधाकारक के रूप में होगी। मार्गदर्शी सिद्धान्तों में परिकल्पित संस्थागत व्यवस्थाओं को कार्यसूची 21 के वास्तविक प्रतिविम्ब के रूप में देखा जा सकता है, जो निरंतरता स्थानीय लोगों की भागीदारी के जरिए आती है। वाटरशेड विकास की पद्धति समग्र रूप से पर्यावरण की चिन्ताओं तथा विकास की अपेक्षाओं के बीच समुचित संतुलन को स्वतः कायम करती है। मार्गदर्शी सिद्धान्तों तथा विकास की अपेक्षाओं के बीच समुचित संतुलन को स्वतः कायम करती है। मार्गदर्शी सिद्धान्तों के अन्तर्गत किए जा रहे प्रयासों को उचित एवं ईमानदार प्रयास माना जाता है क्योंकि वाटरशेड विकास के साथ जीवन का अस्तित्व दांव पर होता है न कि जीवन की गुणवत्ता, जबकि विकसित देशों में परिस्थितियां इसके विपरीत होती है। वास्तव में प्रभावी सामुदायिक नियंत्रण भारतीय सामाजिक संरचना का एक अभिन्न अंग रहा है, जिसे औपनिवेशिक शासन के दौरान नष्ट कर दिया गया था। यह कार्यक्रम इसे पुनः बहाल करने की दिशा में एक प्रयास और इस लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में उठाया गया एक छोटा सा कदम है, जो लोगों की सहायता से एक बडे परिवर्तन का रूप धारण कर सकता है।

भारत में, श्रेणी– वार बंजरभूमि

श्रेणी	क्षेत्र (वर्ग कि.मी. में)
बर्फ आच्छादित / हिमनदीय	55788.49
ऊसर चट्टानी / शीट रॉक	64584.77
रेतीला– अन्तस्थलीय / तटीय	50021.65
लवणीयता / क्षारीयता से प्रभावित भूमि	20477.38
खड्डयुक्त / या बिहड़ी भूमि	20553.35
झाड़ी सहित या रहित उच्च भूमि	194014.29
जलाक्रांत और दलदली भूमि	16568.45
सीधी ढलान वाला क्षेत्र	7656.29
झूम खेती वाला क्षेत्र	35142.20
खनन / औद्योगिक बंजरभूमि	1252.13
आवक्रमित / चरागाह / गोचर भूमि	25978.91
अप्रयुक्त / अवक्रमित अधिसूचित वन क्षेत्र	140652.31
बगान फसल के अन्तर्गत अवक्रमित भूमि	5828.09
कुल योग	638518.31 **वर्ग कि0मी0**

राष्ट्रीय बंजर भूमि विकास बोर्ड

भूमि के अवक्रमण की समस्या को हल करने, पारिस्थितिकी को पुनः कायम करने और राष्ट्रीय स्तर पर ईंधन लकड़ी और चारे की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के अन्तर्गत वर्ष 1985 में राष्ट्रीय बंजरभूमि विकास बोर्ड का गठन किया गया था। सातवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान, राष्ट्रीय बंजरभूमि विकास बोर्ड द्वारा अपनायी गई कार्यनीति में बंजरभूमि विकास के लिए सामुदायिक भागीदारी की अपेक्षा पौधरोपण कार्यकलापों पर अधिक जोर दिया गया। वर्ष 1992 में ग्रामीण विकास मंत्रालय (तत्कालीन ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय) के अंतर्गत एक नये विभाग का गठन किया गया और राष्ट्रीय बंजरभूमि विकास बोर्ड के अधीन

रखा गया। अगस्त, 1992 में बोर्ड को पुनर्गठन किया गया था और विकास के प्रत्येक स्तर पर स्थानीय लोगों को शामिल करके वनेत्तर क्षेत्रों में मुख्यतः बंजरभूमि को समग्ररूप में विकसित करने का दायित्व सौंपा गया था। इसका उद्देश्य एक ऐसा परिदृश्य सृजित करना है जिसमें सरकार सुविधा मुहैया कराने वाले के रूप में तथा लोग बुनियादी स्तर पर कार्यक्रम के वास्तविक संचालक के रूप में कार्य कर सके। गरीबी, पिछड़ेपन, स्त्री–पुरूष समानता आदि को ध्यान में रखते हुए बंजर तथा अवक्रमित भूमि की उत्पादकता में सुधार लाने के लिए कार्यान्वित किया गया मुख्य कार्यक्रम समेकित बंजरभूमि विकास कार्यक्रम है।

बंजर भूमि विकास हेतु सुझाव एवं उपाय

पर्यावरण और इस क्षेत्र के भीतर रहने वाले समुदाय के बीच गहरा संबंध है क्योंकि समुदाय पर्यावरण से अपनी जीविका प्राप्त करते हैं। बढ़ते जैविक दबाव के कारण प्राकृतिक संसाधनों का अत्याधिक दोहन और अवक्रमण होता है। संसाधनों की कमी के कारण आंतरिक संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होती है और दूसरे को स्थिति का फायदा उठाने का मौका मिल जाता है। अतः लोगों को यह समझना आवश्यक है कि जनसंख्या, गरीबी और जिस अवक्रमित पर्यावरण में वे रह रहे हैं, के बीच गहरा संबंध है। भारत जैसे विकासशील देश में गरीब लागों के पास अपनी उत्तरजीविका के लिए अपने ही पर्यावरण को अवक्रमित करने के अलावा कोई विकल्प नही रहता है।

फिर भी वे लोग ही इस प्रकार नष्ट हुए पर्यावरण की स्थिति को पुनः कायम कर सकते हैं, बाहरी घटक केवल इसमें सहायता कर सकते हैं परन्तु वे भागीदारों का विकल्प कभी नहीं बन सकते। इस प्रकार जब तक प्रभावित क्षेत्र में निवास करने वाले सभी लोगों को सक्रिय रूप से शामिल न किया जाए और विकासात्मक योजनाएं उनके द्वारा तैयार और कार्यान्वित न की जाएं तब तक कोई सतत् प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन नहीं हो सकता है।

स्वदेशी प्रौद्योगिकियों को विकास से जोड़ना महत्वपूर्ण है। गांव के लोगो की जानकारी और प्रौद्योगिकीय विकास सामर्थ्य और कमजोरी में एक–दूसरे के पूरक हैं। इन दोनों से पृथक रूप से जो प्राप्त नहीं किया जा सकता है, इनके सम्मलित प्रयास से प्राप्त किया जा सकता है। किफायती स्थानीय तौर पर उपलब्ध प्रौद्योगिकी को उपयुक्त अद्यतन विकास से जोड़ कर बेहतर परिणाम प्राप्त किए जा सकते है।

यह स्पष्ट है कि वाटरशेड का विकास विविक्तरूप से नहीं किया जा सकता है। इसका प्राकृतिक महत्व है और इसमें विभिन्न प्रकार की भूमि नामतः वन भूमि, सामुदायिक भूमि, सरकारी भूमि या निजी भूमि होती है। इस भूमि को "पर्वत शिखर से घाटी की ओर (रिज ट्र वैली)" पद्धति में विकसित किया जा सकता है। घाटी की भूमि को तब तक विकसित नहीं किया जा सकता है जब तक कि पहाड़ी के ऊपरी भाग पर स्थित भूमि को विकसित न किया जाए। अलग–अलग पद्धति में भूमि को विकसित करने से बंजरभूमि का विकास नहीं हो सकता है। केवल भूमि का विकास पर्याप्त नहीं है। भूमि और लोगों को अलग–अलग रूप में न ही देखा जा सकता है और न ही इन्हें अलग–अलग देखा जाना चाहिए। अतः सबसे अच्छी संभव कार्यनीति उक्त क्षेत्र में रहने वाले लोगों को अधिकार सम्पन्न करके भूमि को विकसित करना है वाटरशेड के समेकित विकास में शामिल किया जाना है और सततता सुनिशित करने के लिए ऐसे प्रयास से सृजित परिसम्पत्तियों का रख–रखाव भी वाटरशेड समुदाय के लागों के जरिए किया जाएगा। लोगों की भागीदारी से सार्वजनिक सम्पति संसाधनों का संरक्षण और विकास भी सुनिश्चित होता है। इसके अलावा जब वाटरशेड विकास में लोगों की भागीदारी का संकल्प सुस्पष्ट हो जाता है तो इससे उनकी भागीदारी गहन हो जाती है। निर्णय लेने में यह भागीदारी सफलता की कुंजी है, इससे निरंतर विकास होगा। अतः इस प्रयोजन के लिए लोगों की भागीदारी एक पद्धति है।

मरुभूमि विकास कार्यक्रम (डीडीपी)

वर्ष 1994–95 तक मरुभूमि विकास कार्यक्रम को 5 राज्यों के 21 जिलों के 131 ब्लॉकों में कार्यान्वित किया जा रहा था। हनुमंत राव समिति ने निम्न सिफारिश की :–

- 32 नए ब्लॉकों को शामिल करना, और
- 64 ब्लॉकों को डीपीएपी से डीडीपी को अंतरित करना।

नए ब्लॉकों को शामिल करने और डीपीएपी से डीडीपी में ब्लॉकों के अंतरण पर सहमति हो गई थी। इस प्रकार, वर्ष 1995–96 से डीडीपी के अंतर्गत शामिल किए गए ब्लॉकों की कुल संख्या 7 राज्यों के 40 जिलों में 227 हो गई। तत्पश्चात्, जिलों और ब्लॉकों में कार्यान्वित किया जाता है। कार्यक्रम के अंतर्गत तदनुरूप वास्तविक क्षेत्र लगभग 4.57 लाख वर्ग कि0मी0 है। ब्यौरा अनुबंध–I पर दिया गया है।

लागत मानदंड और वित्तपोषण पद्धति

डीडीपी के तहत प्रत्येक प्रकार की पारिस्थितिकीय प्रणाली के अंतर्गत केन्द्रीय भाग निम्नानुसार था:

गर्म शुष्क गैर–रेतीला क्षेत्र	75
गर्म शुष्क रेतीला क्षेत्र	100
शीत शुष्क क्षेत्र	100

उपर्युक्त केन्द्रीय भाग 31 मार्च, 1999 तक लागू था। 01 अप्रैल, 1999 से इस कार्यक्रम को इस तारीख को अथवा उसके बाद स्वीकृत की गई वाटरशेड परियोजनाओं के उन सभी मामलों के संबंध में 75:25 के आधार पर वित्तपोषित किया जा रहा है। 1.4.1995 से 31.3.2000 तक प्रत्येक परियोजना की लागत 22.50 लाख रूपये से 25 लाख रूपये के बीच रही। 1.4.2000 से प्रत्येक परियोजना के लिए 30 लाख रूपये की एक समान दर निर्धारित की गई है।

डीडीपी का वास्तविक निष्पादन

वर्ष 1995–96 से वाटरशेड पद्धति को अपनाए जाने से लेकर 2005.06 तक 67.38 लाख हैक्टेयर शुष्क क्षेत्र को विकसित करने के लिए 13476 परियोजनाओं को स्वीकृत किया गया है। वर्ष 1995–96 से 2005–06 तक स्वीकृत की गई परियोजनाओं का वर्ष–वार ब्यौरा अनुबंध –2 पर दिया गया है। यद्यपि वर्ष 1995–96 से 1998–99 तक स्वीकृत की गई 2194 परियोजनाओं की परियोजनावधि समाप्त हो चुकी है; इनमें से 1894 परियोजनाओं को पूरा हुआ माना गया है और 300 परियोजनाओं के संबंध में वित्तपोषण बंद कर दिया गया है। वर्ष 1992–2000 से 2005–06 तक स्वीकृत की गई 11282 परियोजनाओं में से 689 परियोजनाओं अभी चल रही हैं। इस प्रकार, कुल 2583 परियोजनाओं को पूरा हुआ मान लिया गया है, 300 परियोजनाओं से संबंध में वित्तपोषण बंद कर दिया गया है और 10593 परियोजनाएं अभी चल रही हैं।

संघ सरकार राज्यों में मुख्यतः डीडीपी कवरेज, चल रही परियोजनाओं के निष्पादन, नई परियोजनाओं को आमेलित करने की क्षमता और वार्षिक बजट परिव्यय आदि को ध्यान में लेने के उपरांत प्रतिवर्ष नई परियोजनाएं स्वीकृत करती है। वर्ष 2005–06 के दौरान डीडीपी के अंतर्गत पाँच वर्षों की अवधि के दौरान 600.00 करोड़ करोड़ रूपये की कुल लागत पर 10 लाख हैक्टेयर क्षेत्र को विकसित करने हेतु 2000 नई वाटरशेड परियोजनाएं स्वीकृत की गई हैं। केन्द्रीय भाग 450 करोड़ रूपये है जिसमें से प्रथम किस्त अर्थात् 65.50 करोड़ रूपये की राशि कार्यक्रम वाले राज्यों को जारी कर दी गई है। इन परियोजनाओं को हरियाली मार्गदर्शी सिद्धांतों में निहित उपबंधों के अनुसार कार्यान्वित किया जाएगा।

विकसित किया गया क्षेत्र

डीडीपी के अंतर्गत अभी तक विकसित किया गया क्षेत्र निम्नानुसार है:–

लागू किए जाने से लेकर 31.3.1995 तक – 5.15 लाख है0 1.4.1995 से 2005–06 तक

वर्ष	विकसित किया गया क्षेत्र लाख है0 में
1995–96	2.02
1996–97	1.31
1997–98	1.40
1998–99	1.60
1999–2000	2.00
2000–01	3.41
2001–02	3.56
2002–03	4.39
2003–04	4.72
2004–05	4.89
2005–06	6.01
योग	**35.31**

अनुबंध–1

मरूभूमि विकास कार्यक्रम (डीडीपी) के अंतर्गत शामिल किए गए राज्यों, जिलों और ब्लॉकों की संख्या

1.4.2008 तक विभाग वाटरशेड कार्यक्रमों नामतः समेकित बंजरभूमि विकास कार्यक्रम, सूखा प्रवण क्षेत्र कार्यक्रम, मरूभूमि विकास कार्यक्रम को कार्यान्वित कर रहा था। अब समेकित वाटरशेड प्रबंधन कार्यक्रम (आई.डब्ल्यू.डी.पी.) के नाम से व्यापक कार्यक्रम को वाटरशेड विकास संबंधी समान मार्गदर्शी सिद्धान्त, 2008 के तहत कार्यान्वित किया जा रहा है।

समेकित वाटरशेड प्रबंधन :

- पारिस्थितिकीय संतुलन को पुनः स्थापित करना।
- अवक्रमित प्राकृतिक संसाधनों जैसे मृदा, वानस्पतिक आच्छादन तथा जल को उपयोगी योग्य बनाना, उनका संरक्षण करना एवं उन्हें विकसित करना।
- मृदा के कटाव को रोकना
- प्राकृतिक वनस्पतियों का पुनः उत्पादन
- वर्षा जल एकत्रण तथा भू–जल के स्तर को बढ़ाना
- बहु–फसल पद्धति तथा कृषि आधारित विविध कार्यकलापों को आरंभ करना।
- संधारणीय जीविका को बढ़ावा देना।
- ग्रामीण स्तरीय प्राकृतिक संसाधन प्रबन्धन समितियॉ जैसे कि वन समितियाँ, स्वयं सहायता समूह इत्यादि का सुदृढ़ीकरण एवं वित्तीय सशक्तिकरण।
- जिला, ब्लाक एवं ग्राम स्तर से समेंकित जल संग्रहण एवं भू– संरक्षण कार्यों का निष्पादन।
- ग्राम की सामूहिक उपयोग की भूमि का उचित प्रबन्धन एवं विकास।
- ओरन, गौचर एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों का उचित संरक्षण प्रबन्धन एवं विकास।
- चारे के उत्पादन को बढ़ाना।

क्र0 सं0	राज्य	जिलों की संख्या	ब्लॉकों की संख्या	क्षेत्र वर्ग किलोमीटर में
1	आंध्र प्रदेश	1	16	19139
2	गुजरात	6	52	55424
3	हरियाणा	7	44	20542
4	हिमाचल प्रदेश	2	3	35107
5	जम्मू व कश्मीर	2	12	96701
6	कर्नाटक	6	22	32295
7	राजस्थान	16	85	198744
	योग	**40**	**234**	**457949**

भारतीय परम्परा में आम्र

श्री जितेन्द्र नाथ मिश्र एवं डॉ. धनन्जय वासुदेव द्विवेदी*

वन उत्पादकता संस्थान, रांची

वनस्पतियाँ जीव–जगत् का अभिन्न अंग है। उनके बिना जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। इस तथ्य का ज्ञान प्राचीनकाल से ही हमारे मनीषियों को रहा है। उनकी दृष्टि में मानवसमाज के सर्वांगीण विकास के निमित्त वनस्पतियों का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। उपनिषदों के अनुसार मानवसृष्टि से पूर्व भी वनस्पतियों का अस्तित्व विद्यमान था।

वनस्पतियों की परम्परा में आम्र का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसकी प्राचीनता का ज्ञान इस बात से होता है कि इसका उल्लेख ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थों में भी प्राप्त होता है। परवर्ती काल के ग्रन्थों में भी इसका उल्लेख बहुत प्राप्त होता है। वस्तुतः आम्र भारत का अतिप्राचीन, सर्वाधिक व्यहृत, सुपरिचित, पूजित आधारभूत राष्ट्रीय फल हैं। इसके वृक्ष सर्वत्र स्वयंजात एवं प्रचुरता से आरोपित, दोनों ही अवस्थाओं में पाए जाते हैं। आम्र की लोकप्रियता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है इस देश के अधिसंख्य लोग इस वृक्ष से भली भाँति परिचित है। ॲनेकाडिएसी (*Anacardiaceae*) कुल के इस वनस्पति का नाम *Mangifera indica.Linn* है।

आम्र का वृक्ष 30–40 फुट से 100–120 फीट तक ऊँचा होता है। पत्ते 4–12 इंच लम्बे, 1–3 इंच चौड़े भालाकार, आयाताकार और तीक्ष्णाग्र होते हैं। इन पत्तों को मसलने से विशिष्ट सुगन्ध आती है। आम्र के पुष्प छोट, हरित–पीत, लम्बी मंजरी में आते हैं जिससे मादक सुगन्ध आती है। इसके फल अनेक आकृति के, कच्चे में हरे तथा पकने पर पीताभ या रक्ताभ हो जाते हैं। फलमज्जा पीतवर्ण या नारंगी रंग की, मधुर या मधुराम्ल, सुगन्धित होती है। फल के भीतर गुठली तथा उसके भीतर बीजमज्जा होती है।

आचार्य प्रियव्रत शर्मा ने अपनी पुस्तक द्रव्यगुणविज्ञान में आम्र की रासायनिक संघटना का वर्णन करते हुए लिखा है कि कच्चे फल में जल 21 प्रतिशत, जलीय सत्त्व 61.5 प्रतिशत, सेल्युलोज 5 प्रतिशत, अविलेय भस्म 1.5 प्रतिशत और विलेय भस्म 1.9 प्रतिशत होती है। पके फल में पीत रंजक द्रव्य, पर्णहरित द्रव्य, कार्बन बाइसफ्लाइड, बेंजोल, गैलिक ऐसिड, साइट्रिक एसिड तथा गोंद होती है। छाल में टैनिन (16–20 प्रतिशत) होता है। बीजमंजा में गैलिक और टैनिक एसिड, वसा, शर्करा, गोंद, भस्म तथा प्रचुर स्टार्च होते हैं।

आम्र के लिए अनेक पर्यायवाची शब्दों का उल्लेख निघण्टुग्रन्थों में प्राप्त होता है। राजनिघण्टु ने आम्र के 23 नामों का उल्लेख इस प्रकार किया गया है–

आम्रः कामशरश्चूतो रसालः कामवल्लभः।
कामांगः सहकारश्च कीरेष्टो माधवद्रुमः।।
भृंगाभीष्टः सीधुरसो मधूली कोकिलोत्सवः।
वसन्तदूतोऽम्लफलो मदाढ्यो मन्मथालयः।।
मध्वावासः सुमदनः पिकरागो नृपप्रियः।
प्रियाम्बुः कोकिलावासः स
प्रोक्तस्त्रिकराह्वयः"।।

अर्थात् आम्र, कामशर, चूत, रसाल, कामवल्लभ, कामांग, सहकार, कीरेष्ट, माधवद्रुम, भृंगभीष्ट, सीधुरस, मधूली, कोकिलोत्सव, वसन्तदूत, अम्लफल, मदाढ्य, मन्मथालय, मध्वावास, सुमदन, पिकराग, नृपप्रिय, प्रियाम्बु तथा कोकिलावास ये सब आम के तेईस नाम हैं।

आम्र के औषधीय गुणों की चर्चा भावप्रकाश निघण्टु में अत्यन्त विस्तार के साथ की गई है। इसके अनुसार आम्र का पुष्प शीतल, रूचिकारक, ग्राही, वातजनक एवं अतीसार, कफ, पित्त, प्रमेह तथा रक्तदोष को दूर करने वाला है–

"आम्रपुष्पमतीसारककफपित्तप्रमेहनुत्।
असृग्दुष्टिहरं शीतं रूचिकृद् ग्राहि
वातलम्"।।

आम्र का बाल फल कषाय तथा अम्लरसयुक्त, रुचिकारक एवं वात और पित्त को उत्पन्न करने वाला है। पका आम्र का फल आरम्भ में मधुर तथा अन्त में कषाय रस युक्त, वीर्यवर्धक, स्निग्ध, बल तथा सुख को देने वाला, गुरु, वातनाशक, हृदय को हितकर, वर्ण को उत्तम करने वाला, शीतल, थोड़ा पित्तजनक एवं जठराग्नि, कफ तथा शुक्र को बढ़ाने वाला है–

"आम्रं बालं कषायाम्लं रुच्यं मारुतपित्तकृत।
पक्वं तु मधुरं वृष्यं स्निगधं बलसुखप्रदम्।
गुरु वातहरं हृद्यं वर्ण्यं शीतमपित्तलम्।।
कषायानुरसं वह्निश्लेशमशुकविवर्द्धनम्"।।

दुग्ध के साथ पका आम्रफल खाने से वह स्वादिष्ट, वातपित्तनाशक, रोचक, बृहंण, बलवर्धक, वीर्यवर्धक, वर्ण को उत्तम करने वाला, गुरु तथा शीतल होता है–

"वातपित्तहरं रूच्यं बृहंणं बलवर्धनम्।
वृष्यं वर्णकरं स्वादु दुग्धाम्र गुरु शीतलम्"।।

गरुड़पुराण के अनुसार आम्र और जामुन की छाल का क्वाथ मधु के साथ पान करने से सभी प्रकार के वमन नष्ट हो जाते हैं। यह तृष्णा को भी समाप्त कर देता है–

"आम्रजम्बुकषायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम्।
छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णांचैवापकर्षति"।।

अष्टांगहृदय के अनुसार आम्र तथा जामुन के पत्ते, हल्दी, दारुहल्दी और गुड.–इनको दही के पानी के साथ पीसकर लेप लगाने से मुखमण्डल पर उत्पन्न विवर्णता दूर होकर त्वचा के समान वर्ण हो जाता है।

"जम्ब्वाम्रपल्लवा मस्तु हरिद्रे द्वे नवो गुडः।
लेपः सवर्णकृत् पिष्टं स्वरसेन च
तिन्दुकम्"।।

सुश्रुतसंहिता के अनुसार आम्र और जामुन के पुष्पों के रस से हरेणुका (*Vitex agnus-castus* Linn.) को पीसकर घी और मधु में मिलाकर अंजन करने से दिवान्धता और रात्र्यन्धता दोनों नष्ट हो जाते हैं। चरकसंहिता के अनुसार यह हृदय के लिए हितकर होता है।

आम्र का सांस्कृतिक और धार्मिक महत्त्व भी संस्कृतवाङ्मय में स्वीकृत किया गया है। वृक्षायुर्वेद के अनुसार जो कोई पाँच या छः आम्र के वृक्षों को लगाता है, वह देवताओं के समान सदा प्रसन्न रहता है और गरुडलोक को प्राप्त करता है–

"पंचचाम्रशाखिणां षण्णां यः
कुर्यात्प्रतिरोपणम्।
गारुडं लोकमासाद्य मोदते देववत्सदा"।।

शब्दकल्पद्रुम के अनुसार वृक्षराज आम्र सभी कार्यों में मंगलमय माना जाता है। घर के पूर्वभाग में आम्र का वृक्ष मनुष्यों के लिए सम्पत्तिदायक माना जाता है–

"सर्वत्र मंगलार्हश्च तरूराजो मनोहरः।
रसालवृक्षः पूर्वस्मिन् नृणां सम्पत्प्रदस्तथा"।।

महाभाष्य में कहा गया है कि आम्र के वृक्षों को सींचने से पितर प्रसन्न होते हैं–

"आम्रश्च सिक्ताः पितरश्च प्रीताः"।

अग्निपुराण का कथन है कि जिस मन्दिर मेंलिंग स्थापना का क्रम चल रहा हो उस समय मन्दिर के दरवाजों को आम्रपल्लव से सजा देना चाहिए। इसी पुराण के अनुसार आम्र याज्ञिकद्रव्य है। जल को शुद्ध करने में कपित्थ, बिल्व, जामुन तथा करवीर के पल्लवों के अतिरिक्त आम्रपल्लव की आवश्यकता पड़ती है। आम्रफल की आहूति से आयु की वृद्धि होती है। वराहपुराण का कथन है कि दीक्षार्थी द्विज को आम्र के पत्ते से सुशोभित जलपूर्ण चार घड़ों को वेदी के चारों ओर स्थापित करना चाहिए–

"चतुरः कलशान् दद्याच्चतुः पार्श्वेषु सुन्दरि।
वारिपूर्णान् द्विजांछुद्धान्
सहकारविभूषितान्"।।

संस्कृतसाहित्य के कवियों ने इस वृक्ष का आश्रय लेकर अपने काव्यों को समृद्ध बनाया है। काव्यसाहित्य में आम्र की मान्यता मुख्यतः इसके प्रवालपत्र, पुष्प एवं फल आदि के श्रृंगारी एवं उद्बोधक स्वरूप तथा गुणों के कारण है। ऋतुराज वसन्त के प्राकृतिक सौन्दर्य में इसकी व्यापक समृद्धि के कारण ही इसकी मान्यता कामदेव के पंचसायकों में की गई है।

कविकुलगरुकालिदास ने अपने काव्यों में आम्र का आश्रय लेकर काव्यसौन्दर्य में चार चाँद लगाया है।

"अभिनयान्परिचेतुमिवोद्यता
मलयमारुतकम्पितपल्लवा।
अमदयत्सहकारलता मनः सकलिका
कलिकामजितामपि"।।

अर्थात् वसन्तकाल में नए बौरे हुए आम्र के वृक्षों की डालियाँ मलय के वायु से ऐसी झूम उठीं मानों उन्होंने अभिनयकला सीखनी आरम्भ कर दी हो। उन्हें देखकर तो रागद्वेष को जीतने वाले योगियों तक का मन भी मचल पड़ रहा था।

महाकवि अश्वघोष ने श्रृंगाररस के परिपाक के लिए अपने काव्य बुद्धचरित में आम्र का आश्रय लिया है। वे कहते हैं–

"स पीतकक्षोदमिव प्रतीच्छन्
चूतद्रुमेभ्यस्तनुपुष्पवर्षम्।
दीर्घं निशश्वास विचिन्त्य भार्यां नवग्रहो नाग
इववारुद्धः"।।

अर्थात् आम्र के वृक्षों से होने वाली नन्हें–नन्हें पुष्पों की वर्षा को केसर के चूर्ण के समान समझता हुआ नन्द भार्या का स्मरण करके घेरा डालकर शीघ्र ही पकड़े गए हाथी के समान लम्बी सांसे लेने लगा।

इस प्रकार हम पाते हैं कि प्राचीनकाल से ही आम्र का महत्त्व सर्वस्वीकार्य रहा है। हमारे ऋषियों एवं कवियों ने इस वृक्ष के हर पक्ष को उद्घाटित किया है। औषधीय पक्ष हो या सांस्कृतिक पक्ष, धार्मिक पक्ष हो या साहित्यिक पक्ष, आम्र की अपनी समृद्ध परम्परा रही है।

*संस्कृत विभाग, राँची कॉलेज, राँची

...पृष्ठ 60 का शेष

- अजवायन अर्क का प्रयोग बच्चों के अतिसार में लाभकारी है।
- जीर्ण अतिसार में तून की छाल का प्रयोग लाभकारी है।
- आंव होने पर धनिया तथा सोंठ के क्वाथ में एरण्ड मूल का चूर्ण मिलाकर पिलाने से लाभ होता है।
- नागरमोथा के ताजे कन्द के रस को अदरक के रस में मधु के साथ सेवन से अतिसार में लाभ हेाता है।
- लिसोढ़ा का फल अतिसार में लाभकारी है।
- गाजर का रस अतिसार में लाभकारी होता है।
- सालपान के जड़ तथा त्रिकुट से सिद्ध किया हुआ क्षीर पाक का सेवन अतिसार में लाभकारी है।
- भृंगराज के मूल के सूक्ष्म चूर्ण को जल में मिलाकर गोलियॉ बना लें। इन गोलियेां के सेवन से अतिसार में लाभ हेाता है।
- कपास तथा पीपल का स्वरस मधु में मिलाकर सेवन करने से लाभ होता है।
- अतिसार में सूर्यमूखी के सूखे हूए पत्तों का शाक दही या खट्टे अनार के रस में मिलाकर पकाकर खिलाने से लाभ होता है।
- रतनजोत की 3 से 4 सेंमी लम्बी ताजी जड़, सात दाना काली मिर्च एवं थोड़ी हींग को साथ मिलाकर पीसकर उसका रस मठ्ठे के साथ पिलाने से अतिसार में लाभ होता है।
- मेंहदी के बीज को बारीक पीसकर, घी में मिलाकर सुपारी के आकार की गोली बनाकरएवं सायं सेवन से अतिसार में लाभ होता है।
- अलसी के बीज का चाय बनाकर पीना अतिसार में लाभकारी होता है।
- आम की गुठली के बीज पत्रों का चूर्ण मधु में मिलाकर सेवन रक्तातिसार में लाभकारी है।
- पुदीना के पत्रों को अनार के दाने के साथ पीसकर इसके रस के सेवन से रक्तातिसार में लाभ होता है।

विशेष : सदैव की भांति उपर्युक्त किसी भी औषधि का सेवन करने से पूर्व किसी प्रामाणिक चिकित्सक से परामर्श अवश्य लें - संपादक मण्डल

प्रदूषण रोकने में वनों की भूमिका

डॉ. ओमकुमार एवं डॉ. अनिल नेगी
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

आदिकाल से ही मानव अपनी प्रमुख आवश्यकताओं जैसे भोजन, कपड़ा और आवास के लिये वनों पर ही निर्भर है। भारत वर्ष में वनों का विशेष महत्व रहा है, रामायण और महाभारत जैसे ग्रन्थों में भी वनों का विशेष उल्लेख किया गया है महाभारत के अनुसार इन्द्रप्रस्थ वन वाहुल्य क्षेत्र था, कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर कुरु जंगल में स्थित थी, रामायण, महाभारत में कृत्रिम वनों का भी वर्णन है जिससे इस बात का संकेत मिलता है कि तत्कालीन लोग वृक्षों की प्रजनन प्रक्रिया से अनभिज्ञ नहीं थे, वर्णन के आधार पर यह विश्वास किया जाता है कि प्राकृतिक वनों को प्रायः अरण्य एवं कृतिम वनों को प्रायः वन कहा जाता था (द्विवेदी, एस.पी. 1984) मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ वनों के सम्बन्धों में भी परिवर्तन आते गये, परन्तु मानव की वनों पर निर्भरता किसी न किसी रुप में बनी रही, वनों से जहाँ हमें एक ओर रोज–मर्रा की उपयोगी वस्तुऐं जैसे इमारती लकड़ी, ईंधन, चारा, खाद्यफल, फूल और पत्तियाँ, औषधियाँ, कागज, गोंद, रवर, तारपीन का तेल, वनस्पतिक रंजक, लाख, बांस आदि प्राप्त हेाते है, वही दूसरी ओर पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने में वनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है।

वन छाया व नमी को सुरक्षित रखने में सहायक होते है। मृदा की नमी को वाष्पन से रोकते है, तापमान को बढ़ने से रोकते है, तथा वायुमण्डलीय आर्द्रता को अवशोषित करके वर्षा में सहायक होते हैं। जमीन को ढ़कने वाले पौधे जमीन को तेज वर्षा की धारा से बचाते है, इस प्रकार ये पेड़ पौधे जल के बहाव को रोककर बाड़ की सम्भावना को कम करते है परिणामस्वरुप ये भूक्षरण रोकने में अपनी प्रमुख भूमिका निभाते हैं, इनकी जड़ें मृदा कणों को मजबूती से जकड़ी रहती है। जिनकी वजह से भूक्षरण की समस्या नहीं हो पाती इतना ही नहीं पेड़ पौधों की वजह से जमीन की मृदा पोरस बनी रहती है जिस वजह से वर्षा का पानी सुगमता से जमीन के अन्दर रिसता चला जाता है यह जमीन के अन्दर एक जलाशय का रुप धारण कर लेता है तथा बाद में यही पानी झरनों, नदियों के रुप में बहता रहता है।

इस प्रकार सोचने पर वनों के संरक्षण की आवश्यकता का महत्व का पता चलता है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि एक पेड़ 200 व्यक्तियों के जीवित रहने लायक ऑक्सीजन प्रदान करते हैं। वैज्ञानिक अनुमान के अनुसार एक 10 वर्ष का सफेदा वृक्ष 35 कि. नाइट्रोजन, 4 कि. फास्फोरस तथा 335 कि. कैल्शियम प्रति वर्ष प्रति हैक्टेयर भूमि में नियुक्त करता है तथा साल का 35 वर्ष आयु का वृक्ष प्रति हैक्टेयर क्षेत्रफल में 12 कि. ग्रा. नाइट्रोजन, 3.5 कि. ग्रा. फास्फोरस, 10 कि.ग्रा. पोटाश, 45 कि.ग्रा. कैल्शियम व 45 कि.ग्रा. मैग्नीशियम प्रति वर्ष उदगहण करता है तथा क्रमशः 10, 19, 46, 77 तथा 10 कि.ग्रा. प्रति हैक्टेयर प्रति वर्ष की दर से इन तत्वों को निर्युक्त करता है (प्रसाद इत्यादि, 1988)।

पर्यावरण संतुलन के लिये यह आवश्यक है कि हमारी भूमि का 33 प्रतिशत भाग वनों से आच्छादित होना चाहिए। भारत सरकार की वननीति 1952 के अनुसार देश के पर्वतीय क्षेत्रों में 60 प्रतिशत एवं मैदानी क्षेत्रों में 20 प्रतिशत वन होने चाहिए, पहाड़ी क्षेत्रों में वनों का महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है यहां वनों के अभाव से भूस्खलन की समस्या बढ़ जाती है क्योंकि वर्षा का पानी तीव्र गति से बहता है जो अपने साथ उपजाऊ मिट्टी भी बहा ले जाता है इतना ही नहीं पहाड़ों में भूस्खलन से इसका प्रभाव हजारों मील दूर की परिस्थिति पर पड़ता है नदियों में मिट्टी बह जाती है जिससे मैदानी भागों में बाढ़ की सम्भावना बढ़ जाती है। हमारा देश वन सम्पदा विशिष्टता लिये हुए है यहां मैदानी भागों में साल,

सागुन, शीशम, तुन, बांस आदि की बहुलता है तो वही पर्वतीय क्षेत्रों में चीड़, देवदार कैल, ओक, भोजपत्र आदि है। वन सम्पदा का भण्डार अत्यधिक मात्रा में होते हुए भी चिन्ता का विषय यह है कि इनका दोहन बड़ी तेजी से हो रहा है। परन्तु नये वनों का रोपण का काम उतनी तेजी से नहीं हो पा रहा है। अतः आज वनों का संरक्षण व संवर्धन अतिआवश्यक है यह संवर्धन पर्यावरण के विगड़ते हुए संतुलन की दृष्टि से भी तथा वनों से प्राप्त होने वाले मूल आवश्यक पदार्थों के नियमित रखने के लिए भी जरुरी है।

पर्यावरण सन्तुलन में वृक्ष सम्पदा का सर्वाधिक महत्व है। पेड़–पौधे इस सन्तुलन को बनाये रखने में असामान्य भूमिका निभाते हैं। मौसम, वर्षा और यहाँ तक कि प्राणियों का अस्तित्व भी वृक्ष–वनस्पतियों पर अवलम्बित हैं। इनसे मिलने वाली प्राण वायु यदि थोड़े समय के लिए भी बन्द हो जाय तो जीवधारियों का जीवन संकट में पड़ जायेगा। प्राण वायु के पश्चात् जीवित रहने के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण वस्तु है पानी। इसके स्रोत भी वन ही हैं। वन बादलों से जल को खीच कर निकटवर्ती क्षेत्र में उसे प्राणी समुदाय के लिए उपलब्ध कराते हैं।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के अधीन कृषि विद्यालय के वनस्पति विभाग में कार्यरत वैज्ञानिक डॉ. टी. एम. दास के अनुसार एक वृक्ष अपने 50 वर्ष के जीवनकाल में जितनी सेवा करता है उसका मूल्य पन्द्रह लाख रुपये से भी अधिक होता है। एक वृक्ष 50 वर्ष की अवधि में ढ़ाई लाख रुपये के मूल्य के खाद के बराबर सहायता करता है। प्रदूषक नियंत्रक के रुप में वायु प्रदूषक अवयवों की मुक्त सफाई पांच लाख रुपये के बराबर होती है। आर्द्रता रोकने, वर्षा कराने तथा खाद्य प्रोटीन की कीमत जोड़ने पर भी पचास वर्ष की अवधि में लगभग पांच लाख की राशि आती है। परन्तु खेद है वृक्ष की कीमत केवल लकड़ी एवं फलों से प्राप्त होने वाले कुछ सौ रुपयों के रुप में ही आंकी जाती है।

वन वायुमण्डल में कार्बन डाईआक्साइड तथा ऑक्सीजन का संतुलन बनायें रखने में सहायक है। पर्याप्त मात्रा में पेड़ पौधे होने से ये वायुमण्डल में विद्यमान कार्बन डाईआक्साइड को प्रकाश संश्लेषण क्रिया द्वारा भोजन बनाने में प्रयोग करते हैं तथा बदले में जीवनधारियों को ऑक्सीजन देते हैं जिसे हम सांस लेने में प्रयोग करते हैं। अब तक वृक्षों की उत्पादन क्षमता मुख्यतौर पर उसके जीवन पर्यन्त बसने वाली लकड़ी की कीमत तथा जीवन काल में हर साल पैदा होने वाले फल–फूलों की कीमत पर आंकी जाती थी। परन्तु प्रोफेसर टी.एम. दास के अनुसार यह कीमत बहुत ही गोण है। वास्तव में यह वृक्षों का मुख्य उत्पादन नहीं, उसका उप उत्पादन है। इन्होंने वृक्ष की उत्पादन क्षमता लगाने के लिये एक बिल्कुल नई पद्धति सुझाई इनके अनुसार प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिय के समय एक अणु ग्लूकोस के निर्माण में छः अणु ऑक्सीजन का निर्माण होता है।

ऑक्सीजन की वर्तमान कीमत के अनुसार वृक्ष द्वारा एक साल में उत्पादित पच्चास टन ऑक्सीजन की कीमत ₹ 5000 तक हो जाती है। इस प्रकार वृक्ष के पच्चास साल की उम्र तक ₹ 2,50,000 हो जाती है।

मानव जीवन में अनादिकाल से ही वनों का बड़ा महत्त्व रहा है। हम अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनों पर आश्रित है। हमें वनों से लकड़ी कोयला, फूल, फल, पत्ते व विभिन्न प्रकार की औषधियां प्राप्त होती है तथा वन अशुद्ध वायु की शुद्धि द्वारा मानव जीवन की महत्वपूर्ण आवश्यकता की पूर्ति करते है। प्रकृति की मन मुग्धकारी सुन्दरता वनों में ही और निखरती है। वन प्रेरण तथा स्वास्थ्य के स्रोत हैं। ये विषैली प्रयोगशालायें हैं जो आक्सीजन पैदा करके विषैली गैंसों तथा धूल को कम करते हैं। हमारी खेती की उर्वरता बनाये रखने में सहायक होते हैं। ये जलवायु सुधारते हैं। शुष्क वायु को रोकते हैं और इसके हरे वृक्ष बढ़ती रेतीली भूमि के विरुद्ध बांध का काम करते हैं। वह नमी, ओस और पाले को संगठित करते हैं। आधुनिक जीवन में स्वच्छता एवं स्वास्थ्य का विशेष महत्त्व है। इसलिए यदि कहा जाय कि भविष्य में यह पृथ्वी मनुष्य के रहने योग्य नहीं रह पायेगी तो कोई अतिश्यक्ति नहीं होगी। यह सब पर्यावरण प्रदूषण के कारण होगा। प्रदूषण के बुरे प्रभाव आम जीवन पर बहुत तीव्रता से बढ़ रहे हैं। इसलिए यह उचित समय है कि इस संकट से सावधान रहने के लिए मानव में सामाजिक

जागरुक्ता पैदा की जाए एवं आधुनिक जीवन के हर पहलू पर सावधानी बरती जाए।

बढ़ते हुये उद्योग धन्धे एवं यातायात के परिणामस्वरुप प्रत्येक बड़े शहर की वायु दिन प्रतिदिन दूषित होती जा रही है। यद्यपि तेरहवीं शताब्दी से ही लोगों का ध्यान इस समस्या की ओर आकर्षित है फिर भी यह दुर्भाग्य की बात है कि अभी तक यह अच्छी तरह से ज्ञात नहीं हो पाया कि ये दूषित वायु का जैविक प्रभाव क्या है। विषैले पदार्थों का जीवधारियों पर प्रभाव के बारे में जब सोचते हैं तो प्रदूषण समस्या स्पष्ट रुप से दृष्टिगत होती है। वर्तमान समय में प्रमुख समस्या रसायनों के प्रयोगों से हो रही है जो भूमि पानी एवं खाद्य में प्रदूषण के स्रोत हैं। वैज्ञानिक युग की देन मानकर औद्योगीकरण को सभी ने स्वीकारा है जितना औद्योगीकरण हुआ है उतना ही पर्यावरण प्रदूषण बढ़ा है, लेकिन कोई भी पर्यावरण विशेषज्ञ इस बात से सहमत नहीं हो सकता कि प्रदूषण के भय से विज्ञान से प्राप्त उपलब्धियों को नकार दिया जाये। हमें आवश्यकता है सुनियोजित उपयुक्त तकनीकी की, जिसके आधार पर प्रदूषण युक्त औद्योगीकरण का विकास हो।

मानव ने यहां के वनों एवं खनिज सम्पदा का उपयोग इस नृशंसता से किया है कि गहन वन प्रदेश भी अब वृक्ष विहीन हो गये हैं। तीव्र गति से कटते जा रहे जंगलों से वन्य जीवन निष्प्राण होता चला जा रहा है। यहां का पर्यावरण इमारती पत्थर और मिट्टी तो दे पा रहा है परन्तु शहद, लाख, गोंद औषधियां तथा जीवन दायिनी वस्तुऐं देने की क्षमता निरन्तर घटती जा रही है। शहरों के विकास के परिणाम स्वरुप वहां पर कंकरीट वाले क्षेत्रफल वृद्धि के साथ–साथ प्राकृतिक रुप से उगने वाले पेड़–पौधों की अनुपस्थिति के महत्व को क्रियात्मक एवं सौन्दर्यात्मक ढंग से समझें।

शहरी पर्यावरण में कई प्रकार के प्रदूषण पाए जाते हैं। हमारे देश में चीखते हुए रेडियो व टेपरिकार्डरों, स्थान–स्थान पर खुली डिस्को संगीत की शोर मचाती दुकानें, नगर में बढ़ते वाहनों का प्रयोग, यातायात नियमों की अवहेलना, गाड़ियों में ध्वनि अवरोधक यन्त्रों का अभाव व भांति–भांति के 'हार्न' के प्रयोग से कोलाहल का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। औद्योगिक इकाइयों में भी बहुत शोर होता है। इन सभी प्रकार के शोर गुल का मानव मस्तिष्क पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। शोभाकारी पौधों को लगाने से इस में पर्याप्त कमी लाई जा सकती है। यह देखा गया है कि अत्याधिक ध्वनि के प्रभाव को भी पौधें कम कर देते हैं। ऐसा पाया गया है कि चीड़ पाइन की 50 से 100 फीट मोटी कतार 10 से लेकर 20 डी.सी. ध्वनि को कम कर देती है। सड़कों एवं इस प्रकार के अन्य स्थानों में पौधों की उचित किस्मों को उचित ढंग से लगाकर समस्या का समाधान बहुत हद तक किया जा सकता है।

हम सभी जानते हैं कि हमें सांस लेने के लिए, तन्दुरुस्ती के लिए फेफड़ों में आक्सीजन भरना जरुरी है। विख्यात हृदय विशेषज्ञ डॉ. करोली के अनुसार इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है जब वायु में आक्सीजन की कमी हो जाती है और प्रदूषक तत्व अधिक हो जाते हैं तो हृदय को सामान्य से अधिक काम करना पड़ता है, उसे निश्चित मात्रा से अधिक बार धड़कना पड़ता है और यदि वायु प्रदूषण कम नहीं किया गया तो आने वाले समय में हृदय रोग और बढ़ जाएगें। वायु प्रदूषण का प्रभाव पौधों के लिए हानिकारक है लेकिन इस बात पर कम ध्यान दिया गया है कि पौधे वातावरण को शुद्ध बनाने में प्राकृतिक छलनी का काम करते हैं। प्रदूषण उस सीमा तक नहीं पहुंचना चाहिए कि वे पौधों के लिए विषैला बन जाए। ऐसा होने से पौधे मर जाते हैं। पौधे सल्फरडाइ–आक्साइड तथा हाइड्रोजन फ्लोराइड की कुछ सीमित मात्रा को बिना किसी हानिकारक प्रभाव के उपयोग में लेते रहते हैं। शहर के पार्कों में लगे शोभाकारी पौधे इस काम के लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान कांग्रेस 1980 में पढ़े गये एक पत्र के अनुसार आम के पौधे वातावरण में उठते धुएं के साथ छोटे–छोटे कणों को छानने में काफी सहायक पाए गये हैं। जब पौधे किसी प्रदूषण से प्रभावित होते हैं तो उसके आस–पास का क्षेत्र भी उससे प्रभावित होता है। पौधों पर पड़ने वाले प्रदूषण तत्वों के प्रभाव किसी स्थान की गर्मी, नमी, हवा की गति और दिशा, मौसम, पौधों की जाति और उनकी आयु आदि को सामान्य से विपरीत बदलकर

समूचे मानव जीवन की स्थितियों को बदलने की भूमिका को निभाते हैं।

पर्यावरण के प्रति लोगों को सजग करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किये जा रहे हैं। परन्तु बढ़ते पर्यावरण प्रदूषण के प्रति जितना हम सचेत हो पाते हैं समस्या उससे अधिक गंभीर होती जाती है। इसके उत्तरदायी भी हम ही हैं। केवल अपने लिए ही नहीं, प्रकृति की अन्य अलौकिक रचनाओं के लिए भी हमारी अन्धाधुन्ध औद्योगिक प्रगति से बढ़ती जनसंख्या घातक सिद्ध होती जा रही है। जल प्रदूषण के प्रति हम बिल्कुल सर्तक नहीं है क्योंकि पीने के लिए जो पानी नलों में आता है उसके प्रदूषण का अनुभव हमें नहीं है। जल शुद्ध करने आदि में कितना धन व परिश्रम लगता है इसे बहुत कम लोग जान पाते हैं। नदी, तालाब व पोखरों में गन्दा पानी देखने के हम अभ्यस्त हो गये हैं। गन्दले पानी की हमारे ऊपर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती है। बल्कि अधिकतर जगहों में इसी पानी में नहाया एवं पिया जाता है। अतः जल के प्रति हमारी उपेक्षा का दुष्परिणाम भोगती हैं मछलियां, क्योंकि जल ही उनका जीवन है, जल प्रदूषण अनेक बीमारियों का जनक है।

उद्योग धन्धे भी शहर में गर्मी पैदा करने के प्रधान स्रोत हैं। शहरों का औसत तापमान अपने आस–पास के वातावरण से 0.9 डिग्री फार्नाहाइट से 1.4 डिग्री फार्नाहाइट तक पहुंच जाता है। शहर की जनसंख्या जितनी अधिक होगी शहर उतना ही गर्म होगा। कंकरीट एवं सीमेन्ट से बने हुए भवन एवं पक्के रास्ते सूर्य के ताप को शोषित करके भी शहर के तापमान के बढ़ा देते है। इनकी अपेक्षा वनस्पतियां सूर्य के ताप की काफी मात्रा को वायुमण्डल में वापिस लौटा देती है। इसलिए शहर के अन्दर जहां वनस्पतियां होती हैं उनके द्वारा पानी के वाष्पीकरण के कारण वातावरण का ताप कम रहता है। इसके अतिरिक्त छायादार वृक्ष सूर्य के ताप को जमीन पर पड़ने से रोक कर वातावरण के तापमान में 2 डिग्री फार्नाहाइट से 3 डिग्री फार्नाहाइट तक कमी करते पाये गये हैं। पर्ण पाती वृक्ष सूर्य के ताप को वायुमण्डल में वापिस लौटाने में बहुत महत्त्वपूर्ण योगदान करते हैं। गरमी के मौसम में जब सूर्य का ताप बहुत अधिक होता है तथा छाया एवं शीलन की आवश्यकता सबसे अधिक होती है तो वे वृक्ष हरी–भरी पत्तियों से लदे रहते हैं। इसके विपरीत जाड़े के समय में जब सूर्य के ताप की आवश्यकता अधिक होती है तब ये वृक्ष पर्ण रहित रहते है।

हवा जो हमारी जीवन शक्ति है उसको शुद्ध रखने का उपाय करना हमारा परम कर्तव्य है। भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से वृक्षारोपण जैसा पुनीत कार्य दूसरा नहीं हो सकताप। हमारे देश में वृक्ष लगाने को एक आध्यात्मिक कृत्य माना जाता था। फलस्वरुप प्रत्येक व्यक्ति आध्यात्मिक प्रगति के लिए प्रचलन का अनिवार्य रुप से पालन करता था। इसके पीछे यही तथ्य सन्निहित था कि पर्यावरण के सन्तुलित बने रहने पर ही मनुष्य की प्रति संभव है। प्राचीन काल में हमारे ऋषि मुनि भी वृक्षों की असामान्य भूमिका से परिचित थे। इसलिए उन्होने वृक्ष लगाने को अन्य धार्मिक कृत्यों जैसा ही पवित्र और उपयोगी कार्य माना था। वृक्षों की उपयोगिता और महत्वपूर्ण भूमिका का रहस्य घटना वैज्ञानिक विकास के साथ–साथ हुआ। आज विश्व के वनस्पति शास्त्री पर्यावरण विशेषज्ञ स्वीकार कर रहे हैं कि वृक्ष सम्पदा पर समस्त मानव जाति का अस्तित्व टिका हुआ है। ये प्रकृति के सवश्रेष्ठ प्रहरी है। जिनके न रहने से प्रांणी समुदाय का जीवन संकट में पड़ जायेगा। आज आवश्यकता है कि जन–जन में वृक्षारोपण के प्रति उत्साह पैदा किया जाए तथा पर्यावरण संतुलन के लिए वनों के महत्त्व को समझाया जाए। सभी धनी, गरीब, अल्पबुद्धि, साक्षर, निरक्षर सभी इस कार्य को सरलता से सम्पन्न कर सकते है। शहर के अन्दर हरे भरे स्थानों को अगर शहर का फेफड़ा कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। सड़कों के दोनों ओर वृक्ष के लगाने से हवा की गति को काफी हद तक रोका जा सकता है। वृक्ष वातावरण को वातातुकूलित करके उसे बहुत सुहावना बना देते हैं। यह ध्वनि की गति को रोक कर प्रदूषण को कम करने में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं तथा प्रदूषक तत्वों को वातावरण में आने से रोकते है।

वनों का महत्त्व

1. वन वायुमण्डल के तापमान को परिवर्तित करके आर्द्रता को अवक्षेपित करते हैं जों वर्षा में सहायक होते है।

2. वन वायुमण्डल में उपस्थित कार्बन डाईआक्साइड़ और ऑक्सीजन के संतुलन को बनाये रखने में सहायक हैं। तथा पर्यावरण को शुद्ध एवं स्वस्थ बनाते हैं।
3. वन ध्वनि प्रदूषण के प्रभाव को भी कम करते है।
4. वन उपज का अच्छा स्रोत हैं जिसका आर्थिक उन्नति में महत्वपूर्ण योगदान हैं।
5. वन जल संरक्षण में भी सहायक है।
6. मृदा की उर्वरता बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका है।
7. भूमि कटाव व क्षरण में भी सहायक है।
8. उचित प्रकार की वनस्पतियों को आकृष्ट कर उस स्थान विशेष के पर्यावरण को संतुलित रखने में सहायक होती है।
9. शहरों में व्यवस्थित ढ़ग से उगाने पर उस स्थान की सुन्दरता बढ़ाने में सहायक हैं।

हमारा देश विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। शहरों में नए–नए उद्योग बनते जा रहे है। मानव में इस बात की जागरुकता होनी चाहिए कि वह अपने नगर के वातावरण को नाना प्रकार के प्रदूषणों से बचाने के लिए प्रयत्नशील रहे। शोभाकारी पेड़–पौधे या फलदार वृक्षों को आम जगहों जैसे पाठशाला, पार्क, सड़कों के किनारे इत्यादि में लगाकर वातावरण को बहुत सीमा तक शुद्ध एवं स्वस्थ रखा जा सकता है।

...पृष्ठ 63 का शेष

ख. जमीन में गडढा खोदकर – जैविक खाद तैयार करने के लिए जमीन में गडढा तैयार कर कम्पोस्ट चैम्बर जैविक खाद तैयार की जाती है। जिसकी क्रमशः लम्बाई 2 मी0 चौड़ाई 1 मीटर तथा गहराई 1.5 मी0 होनी चाहिए। जमीन के भीतर चैम्बर का डिजाईन तैयार करने में एक चैम्बर का खर्च करीबन ₹5000 पड़ता है।

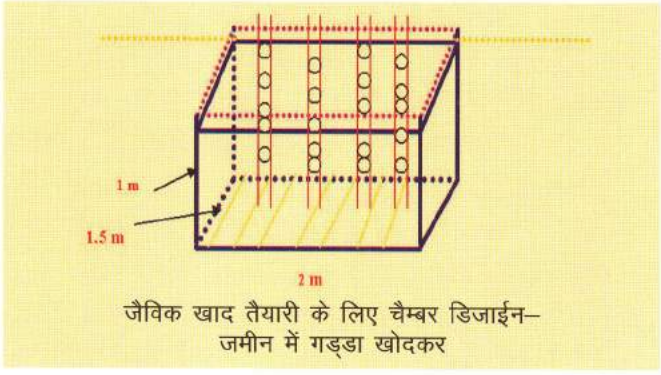

जैविक खाद तैयारी के लिए चैम्बर डिजाईन–
जमीन में गड्डा खोदकर

- उत्पादन पर खर्च का अनुमान – एक किलोग्राम जैविक खाद तैयार करने के लिए करीबन 4/– रूपये की लागत आती है। यदि किसान स्वयं अपने घर से कम्पोस्ट खाद के लिए सामग्री उपलब्ध करें तो 1 किलोग्राम जैविक खाद तैयार होने में लागत में और कमी आ सकती है।

- **खेती के कार्यों में उपयोग** – जैविक खाद का उपयोग कृषि, सब्जी उत्पादन एवं कृषि वानिकी में वृक्षारोपण में किया जा सकता है।

क. सब्जी उत्पादन के लिए खेत तैयार करते समय 1 हेक्टर जमीन के लिए 2 टन जैविक खाद की आवश्यकता पड़ती है तथा उत्पादन क्षमता पहले की अपेक्षा लगभग दुगुनी होती है। सब्जी उत्पादन के लिए एक फसल में उपर्युक्त मात्रा का एक बार इस्तेमाल करें।

ख. गेहूं, धान, तेलहन, दलहन की फसलों के लिए 2 टन प्रति हेक्टर जैविक खाद का उपयोग किया जाना वांछित होगा। कृषि उत्पादन के लिए एक फसल के लिए इस मात्रा को एक बार इस्तेमाल करें।

ग. कृषि वानिकी में वृक्षारोपण के लिए जैविक खाद का तीन बार उपयोग किया जा सकता है। सर्वप्रथम पौध लगाने के पहले एवं दूसरी बार वर्षा के पहले निराई गुड़ाई के समय एवं तीसरी बार अगले वर्ष वर्षा के पहले देनी चाहिए। मात्रा करीब 500 ग्राम प्रति पौध होनी चाहिए।

जल की एक-एक बूंद जीवन है (जल है तो कल है)

सुश्री रोशनी चौहान
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

आज भारत ही नहीं वरण संपूर्ण विश्व पानी की समस्या को लेकर चिंतित हैं। सबसे बड़ी समस्या है गिरते भू–जल स्तर की। आने वाले समय में यदि पानी की राशनिंग कर दी जाये तो कोई आश्चर्य ना होगा। वर्तमान स्थिति को देखते हुए भविष्य में पानी की प्रचुरता हो, और अगली पीढ़ी को पानी पीने को मिले, इसके लिए यदि आज हम सजग न हुए तो अगली पीढ़ी हमें माफ ना करेगी।

हमारे भारत में पानी के वितरण, संचयन और उपयोग का उचित प्रबंधन नहीं होने के कारण पानी उपलब्ध होने के बाबजूद हम कृषि, बिजली और घरेलू उपयोग सहित अन्य कामों के लिए पानी की कमी झेलनी पड़ रही है। जल की जो मात्रा उपयोग और अन्य प्रयोगों के लिए उपलब्ध है वह नदियों, झीलों और भू–जल में उपलब्ध मात्रा का छोटा सा हिस्सा है। भारत की अधिकांश कृषि मानसून पर निर्भर करती है और जल के सही संचयन और पर्याप्त सिंचाई के अभाव में प्रतिवर्ष हमारी खेती को नुकसान होता है और हमारे देश का किसान पनप नहीं पाता।

जंगलों के कटने और पर्यावरण की होती क्षति से देश में कहीं बाढ़ आ जाती है तो कहीं सूखा पड़ जाता है कहीं पानी प्रदूषित है तो कहीं भू–जल की कमी है,। देश में पानी एक समान उपलब्ध नहीं है जिसके कारण देश के किसानों को सिंचाई और शहरों में भी लोगों को जीवन यापन करने में कठिनाई होती है।

इसके लिए हमें अपने रोजमर्रा के जीवन में जल संरक्षण के उपाय काम में लाने चाहिए, इसके तहत् हमें, जितना हो सके पानी, बचाना चाहिए। पानी का अपव्यय करना कानूनी अपराध घोषित करना चाहिए तथा सभी लोगों को जल संरक्षण के बारे में शिक्षित करना चाहिए। हमें पीने का पानी भी उतना ही लेना चाहिए जितनी जरुरत है। आधे गिलास पानी से अगर प्यास बुझ जाए तो आधा गिलास पानी भी बचा सकेंगे, कहावत है कि जल की बूंद – बूंद से सागर भी भरा जा सकता है।

आज हर इंसान में जल संरक्षण के लिए जागरुकता होनी चाहिए। बहुत से लोग ऐसे हैं जिन्हें जीने के लिए पानी मुश्किल से नसीब होता है। दूसरी तरफ कुछ ऐसे लोग भी हैं जिन्हें जल संकट के समय भी पानी आसानी से उपलब्ध होता है लेकिन वे इसका अपव्यय करते हैं। प्रतिदिन अपने वाहन धोना, फर्श की धुलाई आदि ऐसे काम जिनमें कटौती करके हम पानी बचा सकते हैं लेकिन तथाकथित सक्षम लोग इतनी छोटी सी बात नहीं समझते। कहीं पढ़ा था कि जो पानी किफायत से इस्तेमाल नहीं कर सकता, उसके हाथ में बरकत नहीं होती।

ब्रुश करते समय नल खुला न छोड़े तथा नहाते समय बाल्टी से नहाऐं, कपड़े धोने के बाद उस पानी को साफ सफाई के काम में लिया जा सकता है। लीक होते ही नलों को ठीक करने से तथा वर्षा के जल को संग्रह करने तथा ऐसी कई छोटी – 2 बातों का पालन करने से हम ज्यादा नहीं तो अपनी आवश्यकता अनुसार जल तो बचा ही सकेंगे।

उदाहरण के रूप में राजस्थान के अलवर जिले में जल संरक्षण के लिए कार्य करने वाले और मैगसेंसे पुरस्कार पाने वाले राजेन्द्र सिंह ने पूरे जिले में वर्षा का पानी एकत्रित करने के लिए छोटे – 2 तालाबों का निर्माण कर पूरे जिले को जल–संकट से मुक्ति दिला दी है इसके अलावा हमें उपलब्ध जल स्त्रोतों को साफ रखना होगा हालांकि भू–जल में नमक की मात्रा ज्यादा होती है और स्वाद भी खारा होता है। लेकिन इससे कहीं ज्यादा खतरनाक बात यह है कि इसमें काफी मात्रा में कीटनाशक मिले होते हैं ये वे कीटनाशक हैं जिन्हें हम खेतों में इस्तेमाल करते है। जमीन में गहराई तक इन कीटनाशक के अंश पहुंचने से इनसे दूषित पानी हमारे शरीर में पहुंच रहा है।

शेष पृष्ठ 85 पर

प्राकृतिक स्रोतों से स्वास्थ्य एवं पर्यावरण अनुकूल रंग

डॉ. राकेश कुमार एवं डॉ. वाई. सी. त्रिपाठी
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

रंग–मानव जीवन शैली के अभिन्नअंग

रंगों का हमारे दैनिक जीवन में अहम् स्थान हैं। जन्म से ही मनुष्य मानसिक एवं भावनात्मक रूप से रंगों के प्रति संवेदनाशील रहा है। प्राचीन समय से ही रंगों ने मानवीय चेतना एवं मनोभावों को प्रभावित किया हैं। रंगों की कल्पना का मूल आधार मानवीय भावनाओं, गुणों, अनुभूतियों एवं संवेदनाओं का प्रकटीकरण है। रंग प्रकृति के उन तत्वों में से एक है, जिसने संसार में मानव जीवन को और अधिक सौंदर्यपूर्ण एवं मोहक बनाया है। विभिन्न अवसरों एवं त्यौहारों के दौरान भारत में अनुकूल रंगों के वस्त्र पहनने की परम्परा रही है। इनके अतिरिक्त लेखन, मुद्रण, चित्रण, रंगकारी, सौंदर्य–प्रसाधन, इत्यादि कार्यों में रंगों का महत्वपूर्ण स्थान है। मानव सभ्यता के विकास काल से ही मनुष्य प्राकृतिक चीजों जैसे पेड़ पौधों, फूलों, पशु–पक्षियों, कीडों तथा धरती व आकाश के बदलते रंगों से प्रभावित होकर अपने आस–पास के वातावरण को इन प्राकृतिक रंगों के समरुप सजाने का प्रयास किया है। मानव की इस प्रवृत्ति ने ही प्राचीन काल में रंगों के एक नए विज्ञान को जन्म दिया। अपनी कल्पना एवं सोच के आधार पर मनुष्यों ने विभिन्न रंगों कें संदर्भ में अपनी पसंद एवं प्राथमिकतायें निर्धारित की जिनका परिलक्षण विभिन्न इष्ट देवताओं को अर्पित तरह तरह के पुष्पों, अनाजों, कपड़ों इत्यादि से होता है। कहते हैं – हर रंग कुछ कहता है अर्थात् रंगों की अपनी एक भाषा होती है, अर्थात् विभिन्न रंग एक खास संदेश देते हैं। यही कारण है कि व्यवहारिक रूप में कल्पनाओं के प्रतिरुपण, मनःस्थिति का वर्णन, भावनाओं का विमोचन, संदेशों के सम्प्रेषण, यातायात का संचालन एवं नियंत्रण, इत्यादि में रंगों की अहम् भूमिका है। विश्व की अलग अलग संस्कृतियों एवं सभ्यताओं में रंगों की अवधारणा एवं अनुवादन भिन्न–भिन्न पाया गया है।

सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक महत्व

रंगों का प्रचलन कब से शुरू हुआ इसका सही आकलन नहीं है। भारतीय महाकाव्य काल में आराध्यों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले पीले वस्त्र 'पीतांबर' का संदर्भ मिलता है। वैदिक काल में नीला, लाल, मंजिष्ठा, हल्दी इत्यादि का विवरण मिलता है। उत्तर वैदिक काल (500 ई.पू.–300 ई) में नील, कुमकुम, लाख, काजल, गोमूत्र से तैयार नीला रंग इत्यादि रंजकों का वर्णन है। मध्यकालीन भारतीय समाज में कमला, हरड़, आंवला, भृंगराज, नील, लोहा, हरा कसीस, फिटकरी इत्यादि का उपयोग वस्त्रों और अन्य उपयोगी वस्तुओं के रंगने में किये जाने का उल्लेख है। अथर्ववेद में प्राकृतिक रंजकों का वर्णन मिलता है। भृगु संहिता प्राकृतिक रंगों के उपयोग द्वारा लिखा गया है। ज्योतिष शास्त्र में विभिन्न ग्रहों एवं नक्षत्रों को अलग अलग रंगो से पहचाना जाता है। किसी खास रंग के प्रति अनुकूलता या प्रतिकूलता के आधार पर ग्रह विशेष की शान्ति हेतु सम्बन्धित रंग के कीमती पत्थर, कपड़े, इत्यादि धारण करने की सलाह दी जाती है। चिकित्सा के क्षेत्र में रंगों का महत्त्व विश्व की प्रायः सभी चिकित्सा पद्धतियों में स्वीकारा गया है। भारत एवं विश्व के अन्य देशों जैसे नेपाल, मॉरीशस, सूरिनाम, फिजी, पाकिस्तान, मलेशिया, गुयाना, दक्षिण अफ्रीका, त्रिनिनाद, ब्रिटेन, अमेरिका मे बसे हिन्दुओं के धार्मिक कार्यों एवं सामाजिक उत्सवों में रंगो का खास स्थान है। हिंदुओं द्वारा मनाए जाने वाला धार्मिक बसंतोत्सव पर्व होली को रंगों के त्यौहार के रूप में भी जाना जाता है। इस दिन हिन्दू समुदाय एक–दूसरे को रंग लगाकर खुशी व प्रेम का

इजहार करते हैं। कहते हैं, रंगों के इस प्रयोग मे एक तरह का अपनापन एवं समष्टि भाव होता है। प्राचीन चिकित्सीय ग्रंथों के अनुसार होली के अवसर पर एक दूसरे को लगाये जाने वाले रंग बसंत ऋतु के दौरान मौसम परिवर्तन जनित वाइरल रोगों से रक्षा करते हैं।

प्रारम्भ में विभिन्न धार्मिक एवं सामाजिक अवसरों पर प्रयोग किये जाने वाले रंग नीम, कुमकुम, हल्दी, पलास, बिल्वा, टेसू, नील एवं अन्य औषधीय जड़ी–बूटियों से बनाये जाते थे। कालांतर में संश्लेषित रंगो के प्रादुर्भाव एवं व्यापक प्रसार के कारण प्राकृतिक रंगों का प्रयोग शनैः–शनैः कम होता गया और बीसवीं शताब्दी के आते आते प्राकृतिक रंगों का स्थान कृत्रिम रंगों ने ले लिया। लगभग 6,000 वर्षों के शोध, परीक्षण एवं प्रयोगात्मक अनुभवों के आधार पर उद्घाटित प्राकृतिक रंगों का इस प्रकार नेपथ्य में चले जाना वास्तव में दुर्भाग्यपूर्ण रहा। व्यापक उत्पादन, कम कीमत एवं व्यापारिक स्वार्थ के कारण संश्लेषित रंगों का प्रयोग तमाम दुष्प्रभावों के बावजूद निरंतर बढ़ता ही गया।

संश्लेषित रंगो के दुष्प्रभाव

हकीकत में त्योहारों एवं विभिन्न अवसरों पर रंग की तरह बिकने वाले और बहुतायत से उपयोग में लाए जाने वाले पदार्थ ऑक्सीकृत धातुओं से बने होते हैं। कई बार रंगों में ऐसे रसायन मिले होते हैं जिनसे सेहत को गंभीर नुकसान पहुँच सकता है। लाल रंग मरक्यूरीक सल्फाईट से निर्मित होता है, जो त्वचा कैंसर, मिनामाटा (माइनामाटा) रोग, पागलपन, पैरालाइसिस, दृष्टि बाध्यता का कारण बन सकता है। हरा रंग कॉपर सल्फेट से बनाया जाता है, जिसे आम भाषा में तूतिया कहा जाता है, के कारण आँखों में एलर्जी, जलन, और अस्थायी तौर पर नेत्रहीनता की शिकायत हो सकती है। काले रंग में लेड ऑक्साइड मिलाया जाता है जो गुर्दों को प्रभावित कर सकता है। बैंगनी रंग क्रोमियम आयोडाइड से बनाया जाता है, जो अस्थमा अथवा एलर्जी का कारण बनता है। सिल्वर रंग एल्यूमिनियम ब्रोमाइड एक ज्ञात कार्सिनोजेनिक से उपलब्ध होता है। रंगों को चमकीला बनाने के लिए उनमें कांच पाउडर मिलाया जाता है। इसके अलावा इन रंगों में एस्बेस्टस, खड़िया पाउडर या सिलिका जैसे पदार्थ मिलाए जाते हैं।

होली पर्व के अवसर पर प्रयुक्त गीले रंगों में आम तौर पर जेनशियन वायोलेट रंग सांद्रक के रुप में मिलाया जाता है, जिससे त्वचा का रंग प्रभावित हो सकता है और डर्मेटाइटिस की शिकायत हो सकती है। सूखे गुलाल में एस्बेस्टस या सिलिका मिलाई जाती है जिससे अस्थमा, त्वचा में सक्रंमण और आँखों में जलन की शिकायत हो सकती है। एस्बेस्टस के बारे में यह तो सर्वविदित है कि यह मानव शरीर में प्रवेश करने के बाद शरीर में एकत्रित हो जाता है और बरसों बाहर नहीं निकलता है। इसकी सूक्ष्म मात्रा भी कैंसर पैदा कर सकती है। इसके अलावा इससे फेफड़ों का गंभीर रोग एस्बेस्टोसिस भी हो सकता है। ये एक बार आँख में पड़ जाए तो आँख में लालिमा, जलन और सूजन से लेकर हमेशा–हमेशा के लिए आँख की रोशनी जा सकती है। कुछ संवेदनशील लोगों में तो रंग में मिले हानिकारक पदार्थ हमेशा के लिए एलर्जी और दमे की तकलीफ तक पैदा कर सकते हैं। सस्ती सामग्री से गुलाल बनाने के लिए कुछ निर्माता डीजल, इंजन ऑयल, कॉपर सल्फेट और सीसे का पाउडर आदि का इस्तेमाल करते हैं। इससे लोगों को चक्कर आता है तथा सिरदर्द और सांस की तकलीफ होने लगती है। चमकीले गुलाल में एल्युमिनियम ब्रोमाइड मिलाया जाता है जो कैंसर उत्पन्न कर सकता है। नीले गुलाल में प्रूशियन ब्लू होता है जो त्वचा में एलर्जी और संक्रमण पैदा कर सकता है। लाल गुलाल के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला मरक्यूरीक सल्फाईट इतना जहरीला होता है कि इससे त्वचा का कैंसर हो सकता है।

जानकारी या जागरुकता के अभाव में अक्सर दुकानदार, खास कर छोटे दुकानदार इस बारे में ध्यान नहीं देते कि रंगों की गुणवत्ता कैसी है। कभी तो ये रंग उन डिब्बों में आते हैं जिन पर स्पष्ट रुप से 'केवल औद्योगिक उपयोग के लिए' लिखा होता है। जाहिर है कि खतरा इसमें भी है। आजकल रंग बनाने

वाले अपने फायदे के लिए रंगों में हानिकारक रसायन मिला देते हैं एवं उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य से खिलवाड़ करते हैं। उनके द्वारा मिलाए गए रसायन इतने घातक होते हैं कि यदि मनुष्य के शरीर में प्रवेश कर जाए तो, वे विनाशक संक्रमण का कारण हो जाते हैं।

इसके अलावा, अनेक जलीय रंग जो क्षारयुक्त होते हैं, कष्टदायक व्याधियों का कारण हो सकते हैं। पेस्ट के रुप में रंगों में इंजन तेल एवं विषाक्त, अल्प गुणवत्ता वाले तेलों का मिश्रण रहता है, जो त्वचा रोग, अस्थाई अंधेपन का कारण बन सकते हैं। क्रमशः जब हम इन रंगों को साफ करते हैं, तो विषाक्त रसायन मिश्रित ये रंग नदियों में प्रवेश कर जाते हैं, जिससे मृदा एवं जल प्रदूषण हो जाता है। इन रंगों की गुणवत्ता एवं घटकों की यथोचित मात्रा पर नियंत्रण की कमी एक बड़ी समस्या है।

प्रकृति से चुने सुरक्षित रंग

वस्तुतः प्रकृति मोहक रंगों से भरी है एवं मनुष्य विभिन्न उद्देश्यों एवं अवसरों के लिए रंग प्राप्त करने के लिए उनका उपयोग करता रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी तक किसी भी वस्तु को रंगने के लिए प्राकृतिक रंग ही उपयोग में लाए जाते थे, क्योंकि अन्य स्रोत ज्ञात नहीं थे। ऐसे रंग साधारणतः पेड़–पौधों, जानवरों और खनिज पदार्थों से बिना किसी जटिल रासायनिक प्रतिक्रिया से बनाए जाते रहे हैं।

वानस्पतिक पदार्थ से रंग के स्रोत मुख्यतः पेड़ पौधों की पत्तियां, फूल, बीज, छाल, लकड़ी, फल, जड़, इत्यादि हैं। जन्तुओं में लाख के कीड़े, कॉचिनिचल तथा अन्य कुछ कीड़े रंग प्राप्ति के मुख्य स्रोत रहे हैं। खनिज पदार्थ जैसे लौह और मैगनीज के अयस्क, नीला थोथा, फिटकरी, इत्यादि से भी कई प्रकार के रंग प्राप्त किया जाता रहा है। प्राकृतिक रंगों को सरल विधियों द्वारा बनाया जा सकत हैं। उदाहरण स्वरूप हरे रंग के लिए हाथों में लगाई जाने वाली मेंहदी को आटे में मिलाकर सूखा और पानी में घोलकर गीला रंग बनाया जा सकता है। अमलतास, गेंदे या गुलदाउदी के फूलों को पीसकर उसे बेसन में मिलाकर या दो चम्मच कस्तूरी हल्दी को चार चम्मच बेसन में मिलाकर सूखा पीला रंग बनाया जा सकता है। इसके फूलों को पानी में उबालकर गीला, पीला रंग बनाया जा सकता है। लाल चंदन के पाउडर को आटे में मिलाकर या पानी में घोलकर लाल रंग की तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। लाल गुड़हल और बुरांस के सूखे फूल आटे में मिलाकर सूखा लाल रंग या देर तक पानी में भिगोकर गीला लाल रंग बनाया जा सकता है। आंवले के फलों को लोहे की कड़ाही में डालकर देर तक पानी में उबालने से गीला काला रंग बन जाता है। टेसू के सूखे फूल पानी में भिगोकर उबालने से खुशबूदार केसरिया रंग बनता है, जो त्वचा की बहुत सारी बीमारियां ठीक करता है।

विभिन्न रंगों की निर्माण विधि

शुष्क हराः मनोरम खुशबू युक्त प्यारा हरा रंग प्राप्त करने हेतु किसी भी उपयुक्त आटे एवं प्राकृतिक महत्त्व के तेल जैसे जिरेनियम तेल अथवा रोजमेरी तेल के समान मात्रा के साथ मेंहदी पाउडर का पृथक या मिश्रित प्रयोग करना चाहिए। गुलमोहर (डेलोनिक्स रेजिया) के पत्तियों एवं गेहूं के पौध की मुलायम पत्तियों से भी प्राकृतिक हरा रंग प्राप्त किया जा सकता है।

गीला हराः गीले हरे रंग को 1 लीटर पानी में 2 चाय–चम्मच मेंहदी मिलाकर एवं अच्छी तरह घोलकर तैयार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त साग, पालक, धनिया, मिंट, पुदीना, टमाटर की पत्तियों इत्यादि के पेस्ट को पानी में मिलाकर हरा रंग प्राप्त किया जा सकता है।

शुष्क पीलाः सुगंधित तेल के कुछ बूंद में बेसन (चना आटा) की दोगुनी मात्रा के साथ दो चाय –चम्मच हल्दी पाउडर मिलाकर बनाया जा सकता हैं। साथ ही अमलतास (केसिया फिस्टुला) गेंदा (टेगेटस एरेक्टा), पीला गुलदाऊदी, काला बबूल (ऐकेशिया अरेबिका) के फूल से पीले रंग उपलब्ध होते हैं। आकर्षक पाउडर उपलब्ध करने के लिए इन फूलों की पंखुड़ियों अथवा बेल (एजेल मार्मेलोस) के छिलकों को सुखाकर पीस कर पीला रंग तैयार किया

अमलतास

जा सकता है।

गीला पीला: 2 लीटर पानी में 2 चाय–चम्मच हल्दी मिलाकर अच्छी प्रकार घुलने दें। रंग की सांद्रता बढ़ाने हेतु उबाला जाना चाहिए एवं इसके बाद इस अनुपात को हल्का करना चाहिए। पानी में अमलतास अथवा गेंदा के फूलों को भिगाना चाहिए तथा करीब आठ घंटे तक उबालकर पीला रंग बनाया जा सकता है।

शुष्क लाल: लाल चंदन या रक्तचंदन काष्ठ पाउडर (टेरोकार्पस सेंटेलिनस) में सुंदर लाल रंग होता है, जो त्वचा के लिए अत्यंत लाभदायक होता है एवं फेस पैक इत्यादि में प्रयोग होता है। लाल गुलाल के रुप में इसे प्रयोग में लाया जा सकता है। सूखे लाल पटसन एवं सिंदुरिया (अनाटो) के लाल बीजों के पाउडर को आटे के साथ मिलाकर भी सूखा लाल गुलाल तैयार किया जा सकता है।

गीला लाल: 2 चाय–चम्मच लाल चंदन काष्ठ पाउडर 1 लीटर पानी में उबाल कर गीला लाल रंग बनाया जा सकता है। पानी में लाल अनार के छिलके उबाल का लाल रंग बनाया जा सकता है। चमकीले नारंगी लाल रंग के लिए दो चम्मच हल्दी, एक चुटकी लाइम पाउडर एवं कुछ बूंदें पानी डालकर अच्छी तरह मिलाते हैं। फिर इसे करीब 10 लीटर पानी में मिलाकर गीला नारंगी रंग बनाया जाता है। बुरांस एवं लाल पटसन को करीब 10 घंटे पानी में भिगो कर सुंदर लाल रंग प्राप्त किया जाता है। आमतौर पर तटवर्ती क्षेत्रों में पाया जाने वाला भारतीय मूंगा वृक्ष के लम्बे लाल फूलों को रात भर पानी में भिगो कर रखने से भी गीला लाल रंग प्राप्त होता है। मंजिष्ठा वृक्ष की जड़ और तना को पानी में उबालकर गहरा लाल रंग प्राप्त किया जाता है।

चटकीला गुलाबी रंग: चुकंदर को टुकड़ों में काटकर अथवा घिस कर एवं 1 लीटर पानी में भिगो कर अद्भुत चमकीला गुलाबी रंग प्राप्त किया जा सकता हैं। गहरे रंग के लिए उबालना अथवा लगभग 10 घंटे भिगों कर रखना चाहिए। इसके बाद इच्छित सांद्रता के अनुपातानुसार पानी मिलाना चाहिए। आधा लीटर पानी में 10–15 गुलाबी प्याज के छिलको को उबालने से संघटित गुलाबी रंग मिलता है। कचनार (बॉहिनीया वैरिगाटा) के फूलों (गुलाबी किस्म) को रातभर पानी में भिगो कर अथवा उबाल कर भी

पलाश

गुलाबी रंग प्राप्त किया जा सकता हैं।

केसरिया रंग: पलास (ब्यूटीया मोनोस्पर्मा) जिसे स्थानीय भाषाओं में टेसू, अथवा ढ़ाक के नाम से जाना जाता है, पारंपरिक रंग का अद्भुत स्रोत है। इसके फूलों को सुगंधित पीले–नारंगी जलरंग प्राप्त

करने के लिए रातभर पानी में भिगोया जाता है एवं उबाला जाता है। सूखे केसरिया रंग के लिए फूलों का सुखाया जाता है। सेमल या सिल्क कॉटन (बोम्बेक्स सिबा) के लाल किस्म के फूलों की पंखुड़ियों को पानी में उबाल कर भी केसरिया रंग प्राप्त किया जा सकता हैं। शीत ऋतु के प्रारंभ में हरश्रृंगार या परिजातक (निकटेंथेस आर्बोर्टीसटीस) के एकत्रित फूलों को सूखा कर तथा उन्हें पानी में भिगो कर नारंगी रंग प्राप्त किया जाता है।

नारंगी लाल पेस्ट: हिना की पत्तियों (मेंहदी) को सूखाकर तथा उसका पाउडर बनाकर पानी के साथ मिश्रित कर नारंगी लाल पेस्ट तैयार किया जा सकता है।

शुष्क नीला: नीला पटसन (जैकरेंडा) के फूलों को छाया में सूखाकर एवं इसका पाउडर बनाकर सुंदर नीला रंग प्राप्त करने के लिए प्रयोग किया जा सकता है।

गीला नीला: नीले पौधे के फलों को पीसकर वांछित रंग क्षमता हेतु पानी में मिलाना चाहिए। कुछ नील प्रजाति की पत्तियों को पानी में उबालने पर गाढ़ा नीला रंग उपलब्ध होता है।

भूरा रंग: कत्था (एकेशिया केटेचू) को पानी में मिलाने पर भूरा रंग प्राप्त होता है। पानी में चाय एवं कॉफी की पत्तियां उबाल कर भी भूरा रंग प्राप्त किया जा सकता हैं।

काला: लोहे के बर्तन में आँवला के सूखे फलों को उबालकर एवं काले अंगूरों के रस से काला रंग तैयार किया जा सकता है।

उपसंहार

प्राचीन भारतीय समाज प्राकृतिक रंगों के सुरक्षित होने एवं उनके त्वचा एवं स्वास्थ्य संबंधी चिकित्सीय महत्व से पूर्ण रूप से परिचित थे। विभिन्न प्रकार के रंगों के अवयवी घटक, उनके औषधीय गुणों जैसे प्रशामक (त्वचा को नम रखने वाली) इत्यादि के आधार पर चुने जाते थे। वृंदावन में अभी भी होली रजनीगंधा एवं गुलाब के फूलों से तैयार वानस्पतिक रंगों एवं प्राकृतिक सुगंध से खेली जाती है। आधुनिक समय में पर्यावरण, स्वास्थ्य और सामाजिक जन जागरण के चलते पूरे विश्व के उपभोक्ताओं में जागृति आई है और लोग ऐसी वस्तुओं का उपयोग करना चाहतें है जो स्वास्थ्य एवं पर्यावरण के अनुकूल हो। इसलिए प्राकृतिक रंगो की माँग भी लगातार बढ रही है। इन सुरक्षित, प्राकृतिक रंगों के प्रयोग द्वारा हम अपने पर्यावरण को बचाने में मदद एवं जैव विविधता का संरक्षण कर सकेंगे। जब लेड ऑक्साइड, ऑक्सीकृत धातु, औद्योगिक रंजकों एवं अन्य विषाक्त रसायनों जैसे हानिकारक रसायनों से बने रंग नदियों में जाते हैं, तो वे जल एवं मृदा प्रदूषण का कारण बन सकते हैं। इन रंगों के हानिकारक प्रभावों के कारण उत्पन्न जागरुकता से प्राकृतिक रंगों के प्रति झुकाव बढ़ा है। वनस्पतियों से तैयार रंग न केवल सुगंधित तथा सुरक्षित होते हैं बल्कि कई प्रकार के औषधीय गुणों से युक्त भी होते हैं। कृत्रिम रंगों के दुष्प्रभावों को देखते हुए वानस्पतिक रंगो का व्यापक प्रचार–प्रसार, उत्पादन एवं प्रयोग सर्वथा अपेक्षित है।

...पृष्ठ 80 का शेष

इसके अलावा जल के स्त्रोत के दूषित होने का एक बड़ा कारण औद्योगिक ईकाईयों से निकलने वाला कूड़ा कचरा भी है और जो पानी हम तक पहुंच रहा है वह भी बिमारियों को न्योता देने वाले कीटाणुओं से युक्त है। परिणाम यह है कि दूषित पेय जल के कारण डायरिया, चर्मरोग, पोलियो, हेपेटाइटिस, कैंसर जैसी बीमारियां बढ़ रही हैं और हर साल लाखों लोग को अपना शिकार बना रही है।

अगर आज हम जल बचाने में कामयाब हो गए तब ही हम अपने कल में जल का उपयोग कर पायेंगे।

अकाष्ठ वन उपज आधारित पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की सम्भावनायें

डॉ. अविनाश कुमार शर्मा
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

वनों से मानव का सम्बन्ध, आदिकाल से ही चला आ रहा है। मानव अपने भोजन, आवास, कपड़े तथा स्वास्थ्य के लिये वनों पर हमेशा ही निर्भर रहा है। आज के युग में भी मानव जीवन का शायद ही कोई ऐसा कार्य हो जो कि वनों अथवा वन उत्पादों पर निर्भर न हो। वायु एवं जल जैसे जीवन दायिनी आवश्यक संसाधनों के लिये आज भी सम्पूर्ण प्राणी जगत वनों पर ही निर्भर है। वन हमें दो प्रकार के मुख्य उत्पाद प्रदान करते है। यह हैं काष्ठ वन उपज एवं अकाष्ठ वन उपज। काष्ठ वन उपज से हम सब भली–भांति परिचित हैं। इस आलेख के माध्यम से मैं आप लोगों के सम्मुख वनों से प्राप्त अकाष्ठ वन उपज के उपयोग एवं उनके माध्यम से पर्वतीय ग्रामीण क्षेत्रों के विकास की सम्भावनाओं से अवगत करवाना चाहता हूँ।

पर्वतीय क्षेत्रों की समस्या

पहाड़ी क्षेत्रों में खाद्य सामग्री व रोजगारों के अवसरों की कमी के कारण रोजगार की तलाश में बड़े पैमाने पर लोग मैदानी क्षेत्रों की तरफ पलायन कर रहे हैं। विकास की किरण अभी पर्वतीय क्षेत्रों के आंतरिक क्षेत्रों को छू भी नहीं पायी है। पर्वतीय क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग एवं विपणन के समुचित प्रबन्धन न होने के कारण पर्वतीय क्षेत्रों के मानव संसाधन का भी उचित उपयोग नहीं हो पा रहा है।

देश का पहाड़ी क्षेत्र, विशेष कर हिमालय और पश्चिमी घाट के प्रदेश, जो देश के कुल भौगोलिक क्षेत्र का लगभग 21 प्रतिशत है, और जिसमें देश की कुल आबादी का 9 प्रतिशत भाग निवास करता है, मूल जीवनदायिनी प्राकृतिक संसाधन जुटाने में सहायता प्रदान करते हैं। परंतु इन क्षेत्रों की परिस्थतकीय संरचना अत्यन्त जर्जर व संवेदनशील है। यह भी ध्यान देने योग्य तथ्य है कि हमारा ग्रामीण समाज वनों के विभिन्न उत्पादों का निरन्तर उपयोग कर रहा है। कई क्षेत्रों में प्राकृतिक संसाधनों के शरण एवं पर्यावरणीय क्षतियों के परिपेक्ष्य में राष्ट्रीय स्तर पर नीति निर्धारण व कार्यक्रमों को परिचालित किया गया है। परन्तु इन वन उत्पादों से स्थानीय ग्रामीणों के जीवकोपार्जन पर कोई स्थल सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा है।

अकाष्ठ वन उपज क्या है ?

वनों अथवा समान उपयोग वाली कृषि एवं बंजर भूमि से प्राप्त सभी जैवकीय संसाधन, काष्ठ को छोड़कर, जो उपरोक्त भू–उपयोग से प्राप्त होते है, अकाष्ठ वन उपज कहलाते हैं। इन संसाधनों का उपयोग मानव जीवन की उत्पत्ति से लेकर आज के आधुनिक वैज्ञानिक युग में भी प्रचलित है। भगवान श्री राम के वनवास काल में इन उपजों का वर्णन "शबरी के बेरों" के रूप में हम सब के मानस पटल पर अंकित है। इसी युग में राम भक्त हनुमान द्वारा हिमालय के वनों से लाई गई जीवन रक्षक जड़ी–बूटी "संजीवनी" भी एक अकाष्ठ वन उपज ही थी।

भारत की अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है। आदिवासी बाहुल्य क्षेत्रों में आज भी करोड़ों लोग अपने जीवन–यापन हेतु अनेक प्रकार की अकाष्ठ वन उपज पर निर्वाह कर रहे हैं। सम्भवतः हम आप में से कुछ ही लोग होगें जो यह जानते हैं कि आधुनिक बाजार में बिकने वाले मेवा जैसे चिरौंजी, चिलगौजा, अखरोट, इत्यादि एवं अन्य दैनिक उपयोग में आने वाले जिमी कंद, गुच्छी, अनार दाना, करौंदा, बेर, इमली, जामुन आज भी अधिकतर जंगलों से एकत्रित कर बाजार में विक्रय किये जाते है।

सर्वप्रथम राष्ट्रीय कृषि आयोग (1976) ने इन संसाधनों का ग्रामीण एवं औद्योगिक अर्थव्यवस्था में

सम्भावित योगदान का उल्लेख किया है। इसके पश्चात् भारतीय वन नीति 1988 में भी इन संसाधनों पर आधारित ग्रामीण विकास की रूप रेखा पर बल दिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर रिओ डी जेनीरियो घोषणा पत्र (1992) में अपनाये गये एजेन्डा–21 ने भी अकाष्ठ वन उपज को एक महत्वपूर्ण क्षेत्र के रूप में पहचान प्रदान की है तथा इन संसाधनों पर आधारित ग्रामीण एवं पर्यावरणीय रुप मे ठोस एवं सतत् विकास के स्रोतों के रूप में अधिक ध्यान दिये जाने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

अकाष्ठ वन उपज के लाभ

वनों पर निर्भर समाज के लिये अकाष्ठ वन उपज भोज्य पदार्थ, आपूर्ति, रोजगार सृजन व आर्थिक सुदृढ़ीकरण एवं जीवन यापन स्तर के उन्नयन के महत्त्वपूर्ण संसाधन पाये गये है जैसे कि–

- अकाष्ठ वन उपज का सतत् आधार पर संग्रहण वर्ष भर स्थानीय लोगों के लिये रोजगार सुनिश्चित करते हैं। देश की अधिकांश जनजातीय जनसंख्या और वन क्षेत्रों के समीप रहने वाले लोग, अकाष्ठ वन उपज के संग्रहण से अपना जीवन–यापन करते हैं। ग्रामीण भारत में अकाष्ठ वन उपज के संग्रहण और मूल्यवर्धन जैसे रस्सी, टोकरी, झाड़ू इत्यादि बनाना, बांस एवं बेंत का फर्नीचर, मधुमक्खी पालन, आदि कार्यों से महिलायें भी रोजगार प्राप्त करती है।
- वन सम्पदा से प्राप्त होने वाली कुल आय का 55 प्रतिशत भाग अकाष्ठ वन उत्पाद से प्राप्त होता है। यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि इन उत्पादों का लगभग 60 प्रतिशत भाग स्थानीय रुप में ही उपभोग कर लिया जाता है। यह भी कि स्थानीय रूप से प्रयुक्त उत्पादों का मूल्य उपरोक्त आय से अतिरिक्त है।
- लगभग दो हजार से अधिक पादप प्रजातियों से अकाष्ठ वन उपज की प्राप्ति होती है जिनमें खाद्य और व्यापारिक तेल, रंग, गोंद, रेशे, चारा एवं घास, बीड़ी पत्ता, औषधीय पादप इत्यादि शामिल हैं। इन उत्पादों का राष्ट्रीय एवं विश्व बाजार लगातार बढ़ रहा है क्योंकि प्राकृतिक उत्पादों को उपभोक्ता पसन्द कर रहे हैं। अकाष्ठ वन उपज महत्त्वपूर्ण औद्योगिक कच्चा माल उपलब्ध कराते है जिन पर भिन्न–भिन्न लघु एवं मध्यम स्तरीय उद्योग स्थापित किये गये है। यह उपज राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रमुख रुप से आते हैं जिनसे विदेशी विनियम से करोड़ों रुपये की आय प्राप्त होती हैं।

ग्रामीण विकास हेतु कुछ अकाष्ठ वन उपज संसाधन

चूंकि अकाष्ठ वन उपज, जैसा कि उपरोक्त में वर्णित है, लगभग 2000 प्रजातियों से प्राप्त किये जाते है लेकिन विशेष क्षेत्रों में प्रजाति विशेष के कुछ ही पौधे पाये जाते है इसलिये इस आलेख में पर्वतीय क्षेत्रों में पाये जाने वाले कुछ चयनित उत्पादों का ही वर्णन किया जा रहा है। जिनके आधार पर ग्रामीण विकास हेतु उपाय किये जाने की सम्भावना है।

(क) औषधीय एवं सुगन्धित पादप: भारत में महत्वपूर्ण औषधीय एवं सुगंधित पादप की एक समृद्ध सम्पदा है, करीब 7800 प्रजातियाँ औषधीय एवं सुगंधित पादप सम्पदा का गठन करती है। यह सम्पदा पूर्व से उत्तर–पश्चिम तक हिमालयी क्षेत्रों में फैली हुई है। बड़ी संख्याा में औषधीय एवं सुगंधित पादप मध्य भारत के पर्णपाती वनों में प्राकृतिक रूप से भी पाये जाते हैं। सर्वेक्षणों ने दर्शाया है कि ये देश के लगभग सभी प्रकार की जलवायु में पाये जाते हैं। औषधीय एवं सुगंधित पादपों का उपयोग मानव जीवन के उत्पत्ति काल से ही प्रचलित है। विश्व भर में प्रसिद्ध भारतीय चिकित्सा पद्धति, आयुर्वेद, में लगभग 1500 औषधीय प्रजातियों का प्रयोग किया जाता है।

अधिकांश भारत की ग्रामीण जनसंख्या आज भी इन औषधीय पादपों का किसी न किसी प्रकार से उपयोग कर रही है। यह संसाधन ग्रामीण एवं वन क्षेत्रों में रहने वाले लोगों का जीवन यापन करने में आर्थिक रुप से सक्षम पाये गये हैं। भारतीय औषधीय उद्योगों में प्रयुक्त लगभग 90 प्रतिशत कच्चा माल जंगलों से एकत्रित किया जाता है इसलिये यह संसाधन ग्रामीण विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते है।

भारत में औषधीय पादपों (कच्चा माल) का व्यापार लगभग 1000 करोड़ रुपयों का है। जिसमे से लगभग 400 करोड़ रुपये औषधीय पादपों के निर्यात से मिलते है। स्थानीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर औषधीय पादपों की मांग 10 प्रतिशत प्रति वर्ष की बढ़ोत्तरी आंकी गई है। इसको देखते हुये इन संसाधनों द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों के, खासतौर पर पहाड़ी क्षेत्रों में रहने वाले लोगों, सतत विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। चूंकि अधिकांश औषधीय पादप आज भी वन क्षेत्रों से ही एकत्रित किये जाते है इसलिये इन संसाधनों का कृषिकरण कर ग्रामीण विकास किया जा सकता है। कृषिकरण हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण औषधीय प्रजातियाँ निम्नलिखित है–

- वचा (एकोरस कैलामस) *Acorus calamus*
- घृत कुमारी (एलोई बार्बीडेन्सिस) *Aloe barbedensis*
- ब्रह्मी (बेकोपा मोन्नरी) *Baccopa monnieri*
- मंडूकपर्णी (सीन्टीला एसियाटिका) *Centella asiatica*
- तुलसी (ऑसिमम सैंक्टम) *Ocimum sanctum*
- सर्पगंधा (रावोल्फिया सर्पेन्टाइना) *Rauvolfia serpentina*
- अश्वगंधा (विथानिया सेम्निफेरा) *Withania somnifera*
- शतावर (ऐस्पेरेगस रेसीमोसस) *Asparagus racemosus*
- गिलोय (टिनोसपोरा कार्डिफोलिया) *Tinospora cordifolia*
- पशानभेद (बर्जिनिया सिलीआटा) *Berginia ciliata*
- जटामांसी (नार्डोस्टेकी जटामांसी) *Nardostachys jatamansi*
- कुटकी, केदार, कुड़वी (पिकोराइजा कुर्राया) *Picrorrhiza kurroa*
- बनककड़ी (पोघ्डोफाइलम हेक्सेन्ड्रम) *Podophyllum hexandrum*
- रेवंदचीनी (रियम इमोडि) *Rheum emodi*
- चिरायता (स्वीर्टिया चिराटा) *Swertia chirata*
- थुनेर (टैक्सस बकाटा) *Taxus bacata*
- जीवक (माइक्रोस्टाइलिस वालिची) *Microstylis wallichii*

औषधीय सर्वेक्षण ने दर्शाया है कि औषधीय पादपों ने रोजगार उपलब्ध कराकर और यथोचित आय का सृजन करके वनों की सीमाओं में निवास कर रहे लोगों के आर्थिक कल्याण में काफी सहयोग किया है। इसी तरह औषधीय पादपों के लिये वन और अन्य भूमियों का प्रबन्ध करना अन्य फसलों को उगाने की अपेक्षा ज्यादा आर्थिक रुप से लाभकारी दिखाई पड़ता है।

उच्च शिखरीय पर्वतों में पाये जाने वाले औषधीय पादप अपनी गुणवत्ता के अलावा अधिक आय प्रदान करने में सक्षम पाये गये है तथा इनके कृषिकरण एवं प्रसंस्करण के माध्यम से ग्रामीण वासियों को सुलभ आर्थिक लाभ पहुँचाया जा सकता है। उत्तराखण्ड में इस दिशा में विशेष कार्य किये गये है जिनका वर्णन जहाँ आवश्यक है। उत्तराखण्ड राज्य औषधीय पादपों की सम्पदा से भरपूर है। उत्तराखण्ड सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों का इन संसाधनों से विकास किया जा रहा है। उत्तराखण्ड सरकार द्वारा इस सन्दर्भ में सी0एच0डी0 प्लान में उठाये गये कदम इस प्रकार है–

1– औषधीय पादपों की जंगलों से एकत्रीकरण की व्यवस्था ग्रामीण निवासियों को संगठित रुप में पंजीकृत कर उनके आर्थिक विकास में एक नई पहल है।

2– औषधीय पादपों को चिन्हित कर उनके कृषिकरण तथा मण्डी की सुविधा उपलब्ध कराई है।

3– औषधीय पादपों के कृषिकरण को प्रोत्साहित करने के लिये 26 चयनित प्रजातियाँ में अनुदान का प्रावधान किया गया है।

इस सन्दर्भ में अभी और कदम बढ़ाने की आवश्यकता है जैसा कि इन ग्रामीण वासियों को वैज्ञानिक दोहन तथा दोहन उपरान्त उत्पाद का प्रंसस्करण इत्यादि विषयों में पर्याप्त प्रशिक्षण की व्यवस्था करना शामिल है।

(ख) प्राकृतिक रंग: रंग मानव जीवन को मोहक रुप देते है तथा साथ ही साथ उसकी भावनाओं एवं विचारों की अभिव्यक्ति भी करते है। प्राकृतिक पदार्थ 1856 ई0 तक रंगों के केवल एकमात्र स्रोत थे। जिसके पश्चात् कृत्रिम रंगों के रासायनिक संशलेषण

से प्राकृतिक रंगों का अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया है। पिछले दो दशकों से इन कृत्रिम रंगों की जरुरत एवं प्रयोग विश्व समुदाय द्वारा कम कर दिया गया है। इस प्रकार प्राकृतिक रंगों की आवश्यकता एक बार फिर बढ़ गई है। भारत में प्राकृतिक रंगों की मांग लगभग 650 टन प्रतिवर्ष आंकी गई है जबकि विश्व बाजार में इसकी मांग 10,000 टन प्रतिवर्ष मानी जाती है। प्राकृतिक रंगों को उपयोग करने के लाभ कई गुना है क्योंकि ये पर्यावरण सरंक्षण एवं शरीर सम्पर्क के लिये अधिक सुरक्षित एवं शुद्ध होते है।

प्राकृतिक रंग वनस्पति, पशु एवं खनिज स्रोतों से प्राप्त होते है और फ्लेवोनॉइड, क्विनोन्स, पॉलीफीनॉल्स, इन्डिगोंयड तथा अन्य यौगिकों को मिलाकर बनते है। प्राकृतिक रंग पादपों के लगभग सभी भागों से प्राप्त होते है जैसेः

इन प्रजातियों के सत्त दोहन एवं वृक्षारोपण,

- पत्तियों से (इन्डिगोफेरा टिंक्टोरिया, टेक्टोना ग्रैन्डिस)
  (Indigofera tinctoria, Tectona grandis)
- फूलों से (ब्यूटीया मोनोस्पर्मा, केसिया फिस्टूला, वुडफोर्डिया फ्रूटीकोसा)
  (Butea monosperma, Cassia fistula, Woodfordia fruiticosa)
- फलों से (मैलोटस फिलिपेन्सिस, टर्मिनेलिया बेलेरिका, टर्मिनेलिया चीबुला)
  (Malotus phillipensis, Terminalia bellerica, Terminalia chebula)
- बीज से (बिस्सा ऑरीलाना)
  (Bixa orellana)
- छाल से (टर्मिनेलिया टोमेनटोसा)
  (Terminalia tomentosa)

से ग्रामीण क्षेत्रों का विकास किया जा सकता है।

(ग) खाद्य पदार्थ: भारत के एक कृषि प्रधान देश होने के नाते हम खाद्य एवं अखाद्य उपयोगों के लिये तेल एवं वसा उत्पादन हेतु मुख्यतः कृषि फसलों पर निर्भर रहते हैं। चालीस के दशक तक बाजार की माँग को पूरा करने के लिये वनस्पति तेल का उत्पादन पर्याप्त था तथापि, निरन्तर बढ़ रही आबादी, उद्योगों के विस्तार और जीवन स्तर में सुधार के कारण वनस्पति तेलों की खपत खाद्य एवं औद्योगिक उद्देश्य दोनों के लिये लगातार बढ़ी है। अतः हमारी स्थिति तेलों एवं वसा के निर्यातक से आयातक राष्ट्र के रुप में परिवर्तित हो गयी है। अप्रैल 2007 से दिसम्बर 2007 की अवधि के दौरान देश में 6073 लाख रुपये मूल्य के तेल बीजों और 922 लाख रुपये की लागत से वनस्पति एवं पशु वसा का आयात किया। देश को विशाल वन क्षेत्र मिला है। देश में वन मूल के तेल बीजों की विशाल क्षमता मौजूद है। ऐसी आशा की जाती है कि यदि उपलब्ध स्रोतों का उपयुक्त तरीके से इस्तेमाल किया जाये तो हम तेल और वसा के लिये अपनी आवश्यकताओं में आत्म निर्भर हो सकते हैं।

साल बीज (शोरिया रॉबुस्टा) *(Shorea robusta)* – साल के बीजों से 19 से 20 प्रतिशत वसीय तेल (साल, बटर) निकाला जाता है। इस तेल का उपयोग स्थानीय रुप से खाना पकाने एवं प्रकाश करने के लिये किया जाता है। इस तेल का कुछ भाग घी बनाने में भी उपयोग किया जाता है। यह अन्य तेलों के साथ मिश्रण के बाद साबुन बनाने के लिये भी उपयुक्त है। इसका उपयोग चाकलेटों के निर्माण में कोको बटर तेल विकल्प के रूप में भी करते हैं। मुख्यतः यह बीज मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, उड़ीसा जैसे राज्यों में अनुसूचित जनजातियों द्वारा एकत्रित किया जाता है।

पेंकुल (प्रिनसिपिया यूटीलिस) *(Principia utilis)* **एवं चुल्लू का तेल (प्रूनस सिरासोयडिस)** *(Prunus cerasoides)* – उत्तराखण्ड के पहाड़ी क्षेत्रों में पाये जाने वाले खाद्य तेलों की प्रमुख प्रजातियाँ है जिनका तेल खाने के उपयोग में लाया जाता है। अभी इन प्रजातियों पर विशष ध्यान नहीं दिया गया है। इसलिये इन संसाधनों का उपयोग कर ग्रामीण क्षेत्रों की खाद्य तेल जरुरतों को पूरा किया जा सकता है।

खाद्य फल–फूल

भारतीय वनों में प्रचूर मात्रा में ऐसी प्रजातियाँ पाई जाती है जिनके पौष्टिक तत्वों के कारण उनका मानव खान–पान में एक विशेष योगदान है। एक अनुमान के अनुसार हिमाचल प्रदेश, जम्मू कशमीर, उत्तराखण्ड, सिक्किम, उत्तर पूर्वी राज्यों के आदिवासी एवं अन्य निवासी अपने 50 से 25 प्रतिशत

वार्षिक खाद्य आवश्यकताओं के लिये वनों पर पाये गये है। कुछ विशेष प्रजातियाँ इस प्रकार हैं।

• बेल (एगल मार्मीलोस)	*(Aegle marmelos)*
• कटहल (आर्टोकार्पस हीटीरोफाइलम)	*(Artocarpus hetrophyllum)*
• आँवला (एम्बिलका ऑफिसिनेलिस)	*(Emblica officinalis)*
• चिलगोजा पाइन (पाइनस जीरार्डियाना)	*(Pinus gerardiana)*
• इमली (टेमेरिन्डस इन्डिका)	*(Tamarindus indica)*
• कचनार (बौहिनिया बेरिगाटा)	*(Bauhinia verigata)*
• चिरौंजी (बुकनेनिया लेंजन)	*(Bucchania lanzan)*
• अखरोट (जूगलेन्स रीजिया)	*(Juglans regia)*
• गुच्छी (मोरचीला एस्कूलेन्टा)	*(Morchella esculenta)*
• हिपोफी (हिपोफी रेमेनॉयडिस)	*(Hippophae rhamnoides)*
• जिमि कंद (पयूरेरिया टूयबरोसा)	*(Pueraria tuberosa)*
• बेर (जिजिपस न्यूमूलेरिया)	*(Zizypus numuleria)*
• सहजन (मोरिंगा ओलिफेरा)	*(Moringa olefera)*

प्राकृतिक खाद्यान्नों की मांग विश्व भर में बढ़ रही है। वनों से एकत्रित फल और खाद्य उत्पाद ग्रामीण स्तर पर खाद्य प्रसंस्करण एवं प्रक्रमण इकाइयां स्थापित करने के लिये उपयुक्त संसाधन उपलब्ध करा सकते हैं जोकि ग्रामीण अर्थव्यवस्था में सुधार लाने की क्षमता रखते हैं।

अकाष्ठ वन उपज से ग्रामीण विकास हेतु कुछ सुझाव

सतत ग्रामीण विकास में अकाष्ठ वन उपज का उपयोग करने हेतु यह आवश्यक है कि इन संसाधनों का वैज्ञानिक तौर पर प्रबन्धन किया जाये। इस सन्दर्भ में निम्नलिखित का ध्यान रखना अति आवश्यक है:–

- जो लोग अकाष्ठ वन उपज एकत्रित करते है उनको उन प्रजातियों के वैज्ञानिक संग्रहण की विधि और सतत पोषणीय वन प्रबन्धन एवं खेती की पद्धतियों के विषय में विस्तारपूर्वक जानकारी होना आवश्यक है।
- चूंकि अधिकतर अकाष्ठ वन उपज जल्द खराब होने वाले संसाधन होते है इसलिये इनको सुखाने एवं वर्गीकरण की तकनीकी जानकारी होना भी आवश्यक है अन्यथा इसके अभाव में उत्पाद की गुणवत्ता में अन्तर आने से व्यापारिक दृष्टि से कम लाभप्रद हो सकते हैं।
- इन उत्पादों के लिये साफ–सुथरी भण्डारण सुविधाओं और पद्धतियों का ज्ञान भी अति आवश्यक है। जिसका कि आमतौर पर ग्रामीण क्षेत्रों में अभाव पाया जाता है।
- इन उत्पादों के विक्रय हेतु विभिन्न सरकारी अभिकरणों और औद्योगिक इकाईयों के साथ लगातार सम्बन्ध एवं सम्पर्क स्थापित करना महत्वपूर्ण है।
- अकाष्ठ वन उत्पादों की उपयोगिता परिवर्धन और विपणन समाधान के लिये सहकारी समितियों/स्वयं सहायता समूह को संगठित करना भी अति आवश्यक है।

उपरोक्त चयनित अकाष्ठ वन उपजों के माध्यम से ग्रामीण कुटीर उद्योग स्थापित कर पर्वतीय क्षेत्रों के विकास में सराहनीय कार्य सम्भव है। इस आशय के साथ सम्पूर्ण वैज्ञानिक समुदाय और सतत ग्रामीण विकास से जुड़ी सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं को आपस में सामंजस्य पैदा कर ग्रामीण क्षेत्र की समस्याओं के निवारण हेतु गम्भीर प्रयास करने की मेरी विनती है।

स्फैगनम (मॉस): एक चमत्कारी रोपणी मीडिया

प्रवीण कुमार वर्मा, निरेन दास
श्री आलोक यादव एवं श्री पवन कुमार कौशिक
वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

स्फैगनम, ब्रायोफाइटा समूह के मॉस कुल का अपुष्पीय पौध है जिसकी खोज प्रसिद्ध प्राकृतिक विज्ञानी लिनियस ने 1753 में की थी। ग्रीक में इसका अर्थ अज्ञात पौधे होता है। भूमि पर ज्ञात पौधों में यह एक मात्र पौधा है जिसमें जड़ (राइजाइडस) नहीं पायी जाती है। विश्व में इस की लगभग 450 प्रजातियां पायी जाती है तथा उत्तरी गोलार्ध के बहुतायत स्थानों पर अनेक प्रजातियों के रुप में पाया जाता है। विश्व में फैले विशाल पीटलैण्डस में इस पादप का हिस्सा बहुत बड़ा है। पीट एक प्रकार के कोयले के साथ–साथ नर्सरी उद्योग में प्रयोग होने वाले पीट का भी निर्माण करते है। आजकल व्यापारिक रुप से इसका अत्याधिक दोहन किया जा रहा है। हजारों वर्षों से कार्बन की बहुत बड़ी मात्रा इन पीटलैण्डस में एकत्रित है जो कि आज के जलवायु परिवर्तन में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। उत्तरी गोलार्ध में स्फैगनम मॉस हजारों वर्षों से उग रहा है। वह दो भागों में है, जीवित एवं मृत। मृत भाग पृथ्वी के अन्दर भौतिक परिस्थितियों में पीट का निर्माण करते है जो ऊर्जा का अपार स्त्रोत है। मॉस समूह (कुल ब्रायोफाइटा) में स्फैगनम मॉस का विशेष स्थान उसकी अद्‌भूत विशेषताओं की वजह से है। स्फैगनम की शाखाएं एक प्रकार के गुच्छों के निर्माण करती है जो कि पानी को रोके रखने की क्षमता रखती है। इसमे दो तरह की शाखाएं होती है। पहली वह जो कि तने के सहारे नीचें की ओर रहती है उन्हें डाइवरजटिंग (Divergiting) शाखा जबकि दूसरी हवा में रहने वाली शाखाओं कों पेन्डन्ट (Pendent) शाखा कहते है। इन शाखाओं की वजह से स्फैगनम पानी से पूर्ण रुप से भीगा रहता है (यह इन शाखाओं पर लगी पत्तियों की वजह से होता है)। इन पत्तियों में दो प्रकार की कोशिकाएं होती है, एक क्लोरोफिलोस जो कि प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा बड़ी मात्रा में कार्बन का संचय करती है, जबकि बड़ी मृत कोशिकाएं जो कि रंगहीन होती है और अधिक मात्रा में पानी का संचय करती है। भौतिक रुप से इन्हीं कोशिकाओं की वजह से स्फैगनम मॉस पूरे पादप समूह में अपने वनज से 10–25 गुना तक पानी एकत्रित करता है। यह कोशिकाएं भोजन निर्माण की प्रक्रिया से भाग नहीं लेती है। स्फैगनम मॉस की अधिकतम सतही लम्बाई 40 सेंटीमीटर तक हो सकती है। कोशिकाओं की वजह से स्फैगनम मॉस पूरे पादप समूह में अपने वनज से 10–25 गुना तक पानी एकत्रित करता है। यह कोशिकाएं भोजन निर्माण की प्रक्रिया से भाग नहीं लेती है। स्फैगनम मॉस की अधिकतम सतही लम्बाई 40 सेंटीमीटर तक हो सकती है।

स्फैगनम का इस्तेमाल मिट्‌टी की गुणवत्ता बढ़ाने में किया जाता है जिससे मिट्‌टी में पानी रोकने की क्षमता में वृद्धि, मिट्‌टी में वायु की रंध्रता एवं अन्य गुणों में वृद्धि होती है। यह मिट्‌टी नयें बीजों के अंकुरण लिए एक अच्छे कारक के रुप में कार्य करती है। स्फैगनम की कीटाणुनाशक गुण के रुप में भी उपयोग होता है। अम्लीय माध्यम में उगने की वजह से स्फैगनम एक बहुत अच्छी मेडिकल रुई (Bandage) की तरह कार्य करता है जिसकी वजह उसमे कवक एवं जीवाणु के प्रति प्रतिरोधक क्षमता होती है। भारत पड़ोसी देश चीन के यूनान प्रान्त में लिसू जनजाति की महिलाएं पहाड़ों से अज्ञात प्रजाति के स्फैगनम को निकालकर उसे हृदय की बीमारियों में औषधि के रुप में इस्तेमाल करती है। पार्टर (1917) ने स्फैगनम को रुई से भी अधिक उपयोगी बताया है क्योंकि इसमे अशुद्ध रक्त को सोखने की क्षमता 2–3 गुना अधिक होती है, इसलिए द्वितीय विश्वयुद्ध में रुई की कमी के वजह से स्फैगनम का इस्तेमाल घायलों की चिकित्सा के लिए बैन्डेज की तरह होता था।

इसकी एक प्रजाति स्फैगनम मेंगेलिएनम का इस्तेमाल पैट्रोलियम ईंधन को साफ करने के लिए भी किया जाता है। यह प्रजाति वस्तुओं के रंगने के लिए प्रयुक्त हुए कृत्रिम रंग एवं फैक्ट्रियों से निकले रासायनिक तरल कचरे को अवशोषित करने के लिए होता है।

पानी संचय की विशेषता के गुण के कारण पिछले कई दशकों से मनुष्य द्वारा स्फैगनम का इस्तेमाल व्यावसायिक नर्सरी एवं आर्किड पुष्पों के वर्धन के लिए होता रहा है। एयरेशन और पानी संचय की विशेषता के कारण नर्सरी उद्योग से जुड़े लोग अपने कीमती पौधों की जड़ों में स्फैगनम को लपेटकर लम्बे दूरी तक ले जाते हैं। इनमें विशेष पुष्पों एवं अन्य उपयोगी पौधों को भेजना भी शामिल है। जोरहाट स्थित वर्षा वन अनुसन्धान के झूम खेती प्रभाग में इस दिशा में अनेक कार्य हो रहे हैं।

1) पारिस्थितिकी को बचाये रखने की भूमिका में:

जिन क्षेत्रों में स्फैगनम मॉस ज्यादा मात्रा में उगता है वहां पर इसका इस्तेमाल उसर या परती जमीन में मिला कर मिट्टी की पानी सोखने की क्षमता को बढ़ाने में किया जा सकता है एवं उन स्थानों की पारिस्थितिकी तन्त्र को पुनर्जीवित किया जा सकता है।

2) बोन्साई के निर्माण में।

बोन्साई नर्सरी उद्योग की अति महत्त्वपूर्ण विधि है जो कि बड़े उम्र के छोटे को छोटे आकार में बदल देती है। स्फैगनम मॉस के द्वारा हम किसी भी अधिक उम्र के उपयुक्त पौधे में गुट्टी लगाकर उसे कुछ समय बाद काट कर बोन्साई में बदल सकते है।

3) कीटभक्षी पौधों के संरक्षण में:

कीटभक्षी पौधे जैसे कि नेपेन्थीस, डायोनिया, ड्रोसेरा आदि, जो कि नाइट्रोजन की कमी वाली मृदा में उगते है एवं विकासक्रम से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण पादप है। जीवित स्फैगनम मॉस के माध्यम में इन कीटभक्षी पौधों को बहुत आसानी से उगा कर उन्हें संरक्षित किया जा सकता है। वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान में जीवित स्फैगनम द्वारा ड्रोसेरा को संरक्षित रखने के प्रयास में सफलता पायी गयी है।

4) विषैले तत्वों के अवशोषण में:

स्फैगनम विषैले तत्वों, खासकर भारी धातुएं जैसे जिंक और कैडमियम को पानी से अवशोषित कर उसकी शुद्धता को बढ़ा कर पीने योग्य बनाता है। पर्वतीय क्षेत्रों के पानी स्त्रोतों में, जिन जगहों पर इन तत्वों की अधिकता है वहाँ पर स्फैगनम के इस्तेमाल के द्वारा पानी की गुणवत्ता सुधारी जा सकती है यूरोपीय देशों में इसका इस्तेमाल कई वर्षों से अनवरत किया जा रहा है।

5) स्फैगनम की खेती:

स्फैगनम की खेती ऐसे पहाड़ी स्थानों पर जहाँ पर अच्छी बारिश और कम तापमान के साथ–ही–साथ सूर्य की सीधी किरण पड़ती हो, बहुत ही आसान है। इसकी खेती के लिए स्फैगनम के ऊपरी हिस्से की शाखाओं को तोड़कर उथले पानी वाले स्थानों पर बिखेर देते हैं। यह बहुत तेजी से उन स्थानों के पानी को इस्तेमाल कर नये पौधों का निर्माण करता है।

6) आर्किड पुष्प खेती में स्फैगनम का उपयोग:

आर्किड व्यापारिक रुप से अतिमहत्त्वपूर्ण पुष्पीय पादप जिसको हम स्फैगनम के माध्यम में इसकी बड़ी तेजी से वृद्धि होती है। इसके लिए आर्किड के गमले में सर्वप्रथम कच्चे ईंट के टुकड़े, एवं स्फैगनम मॉस का मिश्रण मिलाया जाता है। स्फैगनम माध्यम से आर्द्रता बनाये रखता है जो कि वह वायुमंडल से सोखता रहता है जिसकी वजह से आर्किड के विकास के लिए अनूकुल माध्यम मिल जाता है एवं फूलों की गुणवत्ता भी अच्छी होती है।

पूर्वोत्तर भारत में स्फैगनम की उपयोगिता:

भारत का पूर्वोत्तर क्षेत्र स्फैगनम का सर्वोत्तम वासस्थान है, यहाँ की जलवायु स्फैगनम की वृद्धि के लिए बहुत उत्तम है। पूर्वोत्तर भारत में स्फैगनम की प्रजातियां पर गांगुली (1969–84) ने बहुत कार्य किया है। यह नॉर्थ बंगाल के पर्वतीय क्षेत्र दार्जीलिंग की पहाड़ियों से लेकर सिक्किम, मेघालय एवं अरुणाचल तक में पाया जाता है। इस क्षेत्र में इसकी कुल 25 से अधिक प्रजातियां अभिलिखित की गई है। असम के पर्वतीय जिलों में भी इसके पाने की पृष्टि गांगुली (1969–84) ने की थी। भारत के अन्य स्थानों जैसे दक्षिणी भारत की नीलगिरि पहाड़ियों, उत्तराखण्ड एवं हिमाचल प्रदेश की पहाड़ियों में भी पाया जाता है।

गुट्टी बांधना (Air layering) में स्फैगनम का उपयोग:

गुट्टी बांधना कायिक जनन का एक प्रकार है जिसके द्वारा किसी स्वस्थ एवं गुणकारी पौधों की शाखाओं में गुट्टी बांधकर एक साथ अधिक मात्रा में नये पौधे तैयार किये जा सकते हैं जो कि अपनी मातृ पौधे के प्रारुप होंगे। इस विधि में स्फैगनम का इस्तेमाल दुनिया के बहुत से देश काफी समय से करते आ रहे हैं परन्तु भारत में इसका उपयोग बहुत

सीमित है। स्फैगनम का इस्तेमाल करके हम बहुत कम समय में फल पादप, लकड़ी उत्पादित पौधे एवं वन पौधों की संख्या तेजी से वृद्धि कर सकते हैं।

वर्तमान समय में वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट के झूम खेती प्रभाग ने इस दिशा में अनुसन्धान कार्य द्वारा काफी सकरात्मक परिणाम प्राप्त किया है। प्रभाग ने मेघालय की खासी एवं जयन्तियां पहाड़ियों में पायी जाने वाली स्फैगनम की तीन प्रजातियों, स्फैगनम खासियानम, स्फैगनम प्लुयस्ट्रे एवं स्फैगनम पौपिलोसम का इस्तेमाल कर दालचीनी (सिनमोमस जिनैनकम), तेजपाल (सिनेमोमम टमाला), सिल्वर ओक (ग्रैविलया रोवस्टा), लीची (लीची साइनेन्सिस) आसाम लेमन, सन्तरा, मौसमी, (सिट्रस की प्रजातियां) आदि में इसका इस्तेमाल किया है। इन प्रजातियों में बीज के द्वारा नयी पौध तैयार करने में काफी समय लगता है। एयर लेएरिंग द्वारा नया पौधा तैयार करना बहुत आसार है इसे बारिश के महीनों में शुरु करने से सर्वश्रेष्ठ परिणाम मिलते है। इस प्रक्रिया को निम्नलिखित चरणों में करते हैं :–

1. सर्वप्रथम एक उपयोगी पौधे या पेड़ की एक वर्ष से डेढ़ वर्ष पुरानी शाखा को चुनते है एवं उसमे 6–8 सेमी तक का निशान लगा कर वहां की छाल को गोलाई में पूर्ण रुप से चाकू द्वारा निकाल देते हैं। वास्तव में, यही छाल उस शाखा में भोजन के परिवाहन को कार्य कर रही होती है।
2. पूर्ण रुप से छिले हुए वल्कल (फ्लोइम) भाग को कम पानी में भीगे हुए स्फैगनम मॉस एवं व्यापारिक स्तर के 'जड़ हॉर्मोन' के साथ छिले हुए हिस्से के चारों तरफ से मजबूती से बांध देते हैं एवं चारों तरफ पारदर्शी पोलीथीन लपेट कर दोनों किनारों को बांध देते हैं।
3. कुछ समय बाद शाखाओं के ऊपरी छिले हुए हिस्से में कैलस कोशिकाओं का निर्माण शुरु हो जाता है जिसका कारण है वहाँ पर कार्बोहाइड्रेट की मात्रा में बढ़ोत्तरी। साथ ही साथ, प्राकृतिक रुप से शीर्ष में बनु 'आक्सिन हार्मोन' का कैलस में इक्ट्ठा होता रहना है जो कि एक प्राकृतिक जड़ वृद्धि हार्मोन है।
4. कुछ समय बाद कैलस से जड़ निकलना आरम्भ हो जाती है और जल्द ही जड़ पूर्ण रुप से स्फैगनम को घेर लेती है, स्फैगनम उसे पानी एवं जड़ों के विकास के लिए उपयुक्त माध्यम उपलब्ध कराता है। जब जड़ परिपक्व हो जाती है तब वर्षा के दिनों में या फिर सांध्य के समय उसे निचले हिस्से से काट कर पॉलीबेग में स्थानांतरित कर देते हैं जिसमें 1:1:1 मृदाः रेतः वर्मीकम्पोस्ट का मिश्रण होता है। ये पॉलीबेग कुछ दिनों तक छायादार में रखने के उपरांत पौधों को वांछित जगह पर रोपण कर देते हैं।

1. स्फैगनम का प्राकृतिक वासस्थान, **2.** स्फैगनम पैपिलोसम, **3.**स्फैगनम का भण्डरीकरण, **4.** दालचीनी (सिनमोमम जिलैनकम) में गुट्टी लगाने की विधि, **5.** जड़ों का विकास **6.** नये पोधे का जमीन में रोपण, **7.** लीची (लीची चीनेंसिस) में गुट्टी लगाने के बाद जड़ों के विकास की अवस्था, **8–9.** जड़ों के विकास के बाद अलग किया गया पौधा, **10.** रिंकोस्ट्यलिस रुटुसूस (आर्किड) में स्फैगनम का उपयोग, **11.** आर्किड पुष्प, **12.** डेंड्रोबियम नोबलीस (आर्किड) में स्फैगनम का उपयोग

पर्यावरण सुरक्षा एवं वनों के विकास में जनभागीदारी की जरुरत

डॉ. प्रतिमा पटेल
वन अनुसन्धान संस्थान, सम विश्वविद्यालय, देहरादून

पर्यावरण शब्द और उसका अर्थ अत्यन्त व्यापक है, जिसमें समस्त ब्रहमाण्ड ही समाया है। परि का अर्थ है हमारे आसपास और आवरण का अर्थ है ढका हुआ। हम सभी एवं हमारा यह संसार आकाश, वायु, जल, पृथ्वी, सूर्य (अग्नि), पहाड़, वन, वृक्ष, नदी, समुद्र एवं पशु–पक्षी आदि से ढका है। इन समस्त तत्वों एंव पदार्थों का समग्र अथवा सामूहिक रुप जो पर्यावरण है, उसी में सब जन्म लेते है, जीवित रहते है, विकसित होते है और अपनी समस्त क्रियाएं करते हुए नयी पीढ़ी को जन्म देते है। यह चक्र सतत रुप से चलता रहता है। भारत के ऋषि–मुनि, आचार्य, कविगण व मनीषी आरम्भ से ही पर्यावरण सुरक्षा के प्रति सचेत थे। समस्त वैदिक साहित्य एवं पौराणिक साहित्य में उपर्युक्त पर्यावरण के घटक तत्वों की विशेषताओं, महत्त्व एवं समस्त संसार के लिए उनकी उपयोगिताओं का वर्णन व चित्रण है। इतना ही नहीं वैदिक सूक्तों मे पर्यावरण के संरक्षक एंव इसकी महत्त्व को समझने वाले बुद्धिजीवियों ने समस्त प्राकृतिक तत्वों को साक्षात देवता मानकर उनका गौरवमान किया है। जब हम वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसे वैदिक सूक्तों एवं मन्त्रों का चिन्तन और विश्लेषण करते है तो हमें पर्यावरण से सम्बंधित अनेक वैज्ञानिक रहस्यों की जानकारी प्राप्त होती है।

हमारा पर्यावरण पाँच तत्वों मृदा, जल, वायु, अग्नि और आकाश से निर्मित है, परन्तु इस पर्यावरण का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग है स्वंय मनुष्य। आज विकास के नाम पर यही मनुष्य पर्यावरण में जहर घोल रहा है। प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन कर रहा है जिसके कारण मनुष्य की आवश्यकताओं और प्राकृतिक संसाधनों के बीच अंतर लगातार बढ़ रहा है और इस बढ़ते अंतर के कारण पर्यावरणीय संकट निरन्तर गहराता जा रहा है स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि यदि इस अन्तर को कम करने की उचित व ईमानदार कोशिश नहीं की गई तो प्राणिमात्र का भविष्य अनिश्चितता के गर्त में इतना डूब जायेगा कि उसे निकाल पाना कठिन हो जायेगा।

प्रकृति की अपनी एक व्यवस्था है जो स्वयं मे पूर्ण है और प्रकृति के सारे कार्य एक सुनिश्चित व्यवस्था के अतर्गत होते रहते है। यदि मनुष्य प्रकृति के नियमों का पालन करता तो उसे पृथ्वी पर जीवनयापन की मूलभूत आवश्यकताओं मे कोई कमी नहीं रहती क्योंकि प्रकृति ने सम्पूर्ण प्राणि जगत के भरण–पोषण के लिये पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराये हैं लेकिन मनुष्य ने अपनी आवश्यकतायें अनियंत्रत रुप से बढ़ाई हैं और उसका सारा भार प्रकृति के कन्धों पर डाल दिया है। परिणाम आज की पर्यावरणीय विकटता के रूप में हमारे सामने है इससे न केवल हमारी सामान्य जीवनचर्या ही नहीं प्रभावित होने लगी है बल्कि हवा, पानी जैसी जीवन के लिये अनिवार्य चीजों का अभाव हमारे सामने खड़ा हो गया है। आज पर्यावरण प्रदूषण से निरन्तर क्षय हो रहा है। अतः समस्त समाज के लिये पर्यावरण का संरक्षण व पोषण नितान्त आवश्यक है।

मनुष्य के बढ़ते उपभोक्तावाद का सबसे बड़ा प्रभाव जंगलों पर पड़ा है। उसने अपनी आवश्यकतायें निरन्तर बढ़ाईं और उनकी पूर्ति के लिये जंगलों की कटाई शुरु कर दी। मनुष्य की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये खड़े किये गये उद्योग महादानव बनकर प्राकृतिक संसाधनों खासकर वन और वनस्पति को निगलने लगे लेकिन उद्योगों के इन मशीनी दानवों का पेट भरने के लिये कच्चे माल के उत्पादन की कोई पहल नहीं हो पाई। इसी का परिणाम है कि जंगल समाप्त हो गये जिसका दुष्परिणाम वायु– प्रदूषण, अनावृष्टि और अतिवृष्टि, बाढ़, भूस्खलनों व भूक्षरण के रुप में हुई। इन प्राकृतिक प्रकोपों का असर अल्पशेष प्राकृतिक साधनों पर भी पड़ा है। बंजर वन भूमि और बढ़ते रेगिस्तान इसके सबसे बड़े नमूने हमारे सामने मौजूद है।

प्राणियों की निर्वाध जीवन–चर्या के लिये तीन चौथाई जल क्षेत्र तथा कम से कम एक तिहाई वन क्षेत्र जरुरी है लेकिन वनों के अधिकतम दोहन के कारण वन क्षेत्र सिमट कर दसवें हिस्से के आस पास रह गये हैं। जबकि वन क्षेत्रों का बंजरपन इसी अनुपात में बढ़ रहा है।

जन संख्या में निरन्तर बढ़ोत्तरी तथा विकास के नाम पर हजारों परियोजनायें निर्मित होने के कारण वन क्षेत्रफल में गुणात्मक रुप से कमी आई है लेकिन इसके बावजूद लाखों हेक्टेयर भूमि हमारे देश में रिक्त पड़ी है जिसा उपयोग वन तैयार करने में हो सकता है।

हमारी आवश्यकताओं और जरुरतों ने हमें अपने उपयोग हेतु वैकल्पिक संसाधन बढ़ाने के लिये मजबूर किया है। हम अन्न उत्पादन के लिये खेती का विस्तार करते है तथा पशुओं के लिये चारा, ईंधन और ईमारती लकड़ी के वृक्ष भी निजी तौर पर उगाते और संरक्षित करते हैं लेकिन वनों के सामूहिक विकास के प्रति हमारी चेतना अपेक्षा अनुरूप जागरुक नहीं हो पाई है। कारण यह भी रहा है कि वनों से लकड़ी और अन्य वनोत्पादन मुफ्त में मिलते रहे हैं। और अंग्रेजों ने वन कानून बनाकर उसे आम आदमी से हटाकर अपने नियंत्रण में कर लिया। इन वनों में ग्रामीण कास्तकारी को प्रतिबन्धित करने के लिये अनेक कानून बनाये गये जिससे सरकारी वनों से लोगों की संवेदना समाप्त हो गई और इसके सामूहिक विकास की जिम्मेदारी को नहीं निभा सके।

किसी भी कार्य में मनोयोग की आवश्यकता होती है। बिना स्नेह व स्वार्थ जोड़े किसी कार्य की सफलता अपेक्षाकृत नहीं मिल पाती। इसके लिये वातावरण बनाने की जरुरत होती है। किसी भी योजना की सफलता का मानक यही होता है कि वह आम लोगों को व्यवस्था से कितना अधिक जोड़ पाता है लेकिन हमारी वर्तमान व्यवस्था में कहा जा सकता है कि वनों की व्यवस्था में जन को जोड़ने की सही कोशिश नहीं हो पाई है।

वन संवर्धन के नाम पर योजनायें ऊपर स्तर पर बनाई जाती है और अफसरों के माध्यम से गांवों पर थोप दी जाती है। लोग ऐसी योजनाओं को अपना नहीं पाते और न उनमें भागीदारी कर पाते है।

सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम बनाते समय ग्रामीणों को इसका लाभ मिल सके इस आवश्यकता पर बल दिया गया था। इसका तात्पर्य यह था कि लोगों में वृक्षविहीन धरती को हरा–भरा बनाने की आकांक्षा जागृत की जाय और उनके द्वारा उपयोग मे लाये जाने वाले ईंधन, चारापत्ती, इमारती लकड़ी जैसी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति में सरकार सहयोगी की भूमिका निभाये। लेकिन व्यवहार में ऐसा नहीं हुआ और लोगों ने अनुभव किया कि ये सरकारी कार्यत्तम है जो उन पर थोपी जा रही है और इसका उद्देश्य लोगों का हित नहीं है अतः इस प्रकार के कार्यक्रमों मे सुधार को प्राथमिकता देना चाहिये और परती भूमि के विकास कार्यक्रम को सामाजिक वानिकी के द्वारा इस प्रकार आगे बढ़ाया जाना चाहिये कि इसमें लोगों की आवश्यकता व आकांक्षा के अनुरुप कार्य हो तथा उन्हें विश्वास मे लेकर उनके कार्यान्वयन में उनकी सम्पूर्ण भागीदारी ली जानी चाहियें। वृक्ष विहीन कर्तव्य को समझने धरती को हरा–भरा करने के लिये तथा पेडों की सुरक्षा के प्रति मनुष्य के कर्तव्य को समझाने के लिये सामाजिक वानिकी के कार्यक्रम को संचालित किया जाना चाहिये। इस प्रकार की योजना बनाते समय वन और वनों से जुडें लोगों के अन्तरसंबन्धों का व्यापक विश्लेषण किया जाना जरुरी है। विशेषकर वन क्षेत्र के लोगों की सामाजिक, आर्थिक परम्पराओं और स्थितियों तथा वहां की प्राकृतिक और भौगोलिक परिस्थितियों को नियोजन से जोड़ा जाना जरुरी है।

लोग वनों की सुरक्षा के प्रति जागरुक हुये है और वे समझने लगे है कि वनों के नुकसान से उनका जीवन यापन दुष्कर हो गया है और प्राकृतिक प्रकोपों से जुझने की उनकी मजबूरी बढ़ी है, इसलिए वनों को इस ढंग से विकसित किया जाना चाहिये कि उनसे स्थानीय लोगों की आवश्यकतायें पूरी हो। यही सामाजिक वानिकी का उद्देश्य भी है। चारा, ईंधन, इमारती लकड़ी और जंगली फल लोगों की जरुरतें है। इसलिए कार्यक्रम में प्रमुखता स्थानीय जरुरतों की वृक्ष व वानस्पतिक प्रजातियों को दी जानी चाहिए जिससे लोगों की तात्कालिक जरुरतें पूरी हो और उनकी बाहरी विकल्पों पर निर्भरता निरन्तर कम होती चली जायें।

...शेष पृष्ठ 99 पर

असम में कम लागत वर्मीकंपोस्ट (जैविक खाद) बनाने की विधि

डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा, श्री पवन कुमार कौशिक
श्री. आलोक यादव एवं श्री नीरेन दास
वर्षा वन अनुसंधान संस्थान, जोरहाट

असम, उत्तर पूर्वी भारत में एक बहुत खूबसूरत राज्य है, जो अन्य उत्तर पूर्वी राज्यों से चतुर्दिक एवं सुरम्य पर्वत श्रेणियों से घिरा हुआ है। इस राज्य का संपूर्ण क्षेत्रफल 78,466 वर्ग कि.मी. है। यहाँ पर होने वाली पारंपरिक खेती का स्थान आधुनिक तकनीकियों से की जाने वाली खेती ने ले लिया है। जिनमें प्रमुख खेती उत्पाद चावल, चाय, सुपारी, कालीमिर्च, अन्नानास, पान एवं विभिन्न प्रकार की सब्जियाँ है।

भारत की अर्थव्यवस्था एवं जनसंख्या का एक बड़ा भाग कृषि उत्पादन पर निर्भर करता है। वर्तमान में हमारे यहां अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनिक उर्वकों का बहुतायत में अनियंत्रित प्रयोग हो रहा है। असम में भी किसान ज्यादा से ज्यादा रासायनिक उर्वरकों एवं कीटनाशक दवा पर निर्भर रहने लगे है, जिसकी वजह से मिट्टी की उर्वरा शक्ति दिनों–दिन कमजोर होती जा रही है। यहाँ की मिट्टी को गुणवक्ता बनाए रखने के लिए जैविक खाद का प्रयोग आवश्यक है, जिसके इस्तेमाल से भूमि की भौतिक, रसायनिक व जैविक गुणों जैसे भूमि की संरचना में सुधार उष्मा शोषण क्षमता, जल धारण क्षमता, मिट्टी मे पारगम्यता को बढ़ना आदि में सुधार होना प्रमुख है। इसके उपयोग से मिट्टी में पहले से उपस्थित जीवाणुओं की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है। यह जीवाणु नाइट्रीकरण, अमोनीकरण तथा नाइट्रोजन स्थिरीकरण में वृद्धिकारक होते है। जोरहाट स्थित वर्षा वन अनुसंधान संस्थान के झूम खेती प्रभाग ने किसानों के लिए कम लागत वाली कच्ची टंकी द्वारा केचुआ निर्मित खाद बनाने का प्रशिक्षण शुरु किया है।

केंचुआ निर्मित खाद अन्य खादों की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा पौष्टिक तत्वों की अपूर्ति से सब्जियाँ, फलों और फूलों के उत्पादन में वृद्धि होती है, जो कि खाने में स्वादिष्ट होने के साथ साथ हमारे स्वास्थ्य के लिए गुणकारी भी होती है। जैविक खाद (वर्मीकम्पोस्ट) से पौधों में बीमारियों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता व बीजों में अंकुरण वृद्धि होती है और साथ ही साथ फसल उत्पादन की लागत में कमी तथा आय वृद्धि भी होती है। यह भूमि में पाये जाने वाले लाभदायक जीव जैसे प्राकृतिक केंचुओ और छोटे जीव जैसे शैवाल, कवक, एक्टिनोमयसीटीएस, और लाभकारी बैक्टीरिया इत्यादि की संख्या में भी वृद्धि करता है।

कम लागत वर्मीकंपोस्ट या केचुआ खाद बनाने की विधि :

1. सर्वप्रथम घर के बाहर एक उचित स्थान पर जमीन से ऊपर एक उठा चबूतरा (लगभग 6 इंच) बनाते है, जिससे बारिश कें दिनों मे टंकी के तले को पानी से बचाया जा सके।

2. सुपारी या बांस के तने के द्वारा 5–6 फुट लंबा 2.5–3 फुट चौड़ा एवं 3.5–4 फुट गहरे एक बक्से (टंकी) का निर्माण करते है जिसमे लगभग 2–3 क्विंटल गोबर तथा जैव अपशष्टि आ सके।

3. इसके अंदर की चारों दीवारों को एक प्लास्टिक के तिरपाल से ढंक देते है।

4. नीचे की सतह पर कच्चे ईटें के छोटे छोटे टुकड़े डाल कर उस पर बालू की एक परत बिछा देते है जिससे ज्यादा गर्मी के दिनों मे केंचुए निचली सतह में जा कर अपनी रक्षा कर सके। टंकी को एक छप्पर से छाँव कर देते है जिससे बारिश और धूप से टंकी की रक्षा की जा सके। टंकी के पास मे एक छोटा गड्ढा बनाते है एवं बाहर से टंकी के निचले सतह पर एक छिद्र कर वर्मीबेड वॉश एकत्रित करने के लिए पाइप लगा देते है। यह वर्मीबेड वॉश रासायनिक रुप सांद्रित और बहुत उपयोगी है।

1. सुपारी के तने से निर्मित कम लागत वर्मीकम्पोस्ट टंकी, 2. वर्मीबेड वॉश (केचू–मूत्र), 3. वर्मीकम्पोस्टिंग टंकी के द्वारा केचुआ खाद बनाने का प्रदर्शन, 4. सूखा गाय का गोबर 5. बनी टंकी एवं प्रयुक्त केचुआ (एसीना फोइटिडा) 6. खाद का भंडारण, 7. केचुए से निर्मित जैविक खाद, 8. बची हुई सब्जिया

5. सर्वोत्तम खाद बननाने के लिए जिन पदार्थों का प्रयोग होता है उसमे मुख्यता पशुओं के गोबर का 60 : (गाय, भैंस, घोड़े, बकरी आदि का 8– 10 दिन सूखा गोबर) भाग प्रयोग होना चाहिए तथा अन्य हरी पत्तियों, धान के पुआल, केले के तने के छोटे–छोटे टुकड़ों, घर की बेकार सब्जियों, जलकुंभी आदि के टुकड़े का 40% इस्तमाल करना चाहिए।

6. गोबर एवं अन्य वस्तुओं मिश्रित करने के बाद एक विशेष प्रजाति के केंचुए एसीना फोइटिडा (Eisenia foetida) को डाल देते हैं जो कि 30–40 दिन के अंदर खाद का निर्माण करता है। उपयुक्त वातावरण में ये अपनी संख्या मे तेजी से वृद्धि करता है जो की तेजी से खाद बनाने में सहायक होती है।

7. कच्ची टंकी के अंदर का तापमान 20°–30° और आद्राता 50–60 % होना चाहिए। टंकी को रस्सी की बोरी से ढक देते है जिससे उचित तापमान का स्तर बना रहे और केंचुए की चिड़िया आदि से रक्षा हो सके। टंकी मे उपयुक्त नमी बनायें रखने हेतु समय समय पर इसमें पानी का छिड़काव करते रहना चाहिए।

8. वस्तुतः केंचुए के खाने के बाद जो मल त्यागा जाता है उसी को हम वर्मीकम्पोस्ट कहते है जो दिखने मे छोटी–छोटी बेलनाकार गोलियों की तरह होती है यह खाद गंधहीन होने के साथ साथ गुणवत्ता में उत्तम कोटि की होती है तथा अन्य किसी प्रकार से तैयार की गई खाद के मुकाबलें कई गुणा अधिक पोषक तत्वों से भरपूर हैं। टंकी की औसत लागत 600– 800 रुपये एवं खाद की औसत लागत 50 से 60 पैसे प्रति किलो आती है।

अनियंत्रित पर्यटनवाद का जलवायु एवं जैवविविधता पर प्रभाव

श्री सुरेश चंद्र
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

उत्तराखण्ड में नए राज्य के सृजन के साथ ही राजस्व एंव रोजगारपरक संसाधनों को जुटाने के लिए सरकार ने पर्यटन को एक महत्त्वपूर्ण व्यवसाय के रुप में लिया। परिणामस्वरूप पर्यटन के महत्त्व को देखते हुए सुदूर स्थलों तक सैलानियों के लिए सुविधाए जुटाई जाने लगी और मानवीय हलचलों को बढ़ावा मिला, जिसका प्रभाव वनस्पति एंव प्राकृतिक संसाधनों पर भी पड़ा।

चमोली जिले के बुग्याल क्षेत्रों से लगे हुए गाँवो और स्थलों का निरीक्षण करने पर स्पष्ट होता है कि अनियंत्रित पर्यटन का कुप्रभाव वन एंव जलवायु पर व्यापक रुप से पड़ता हैं। पर्यटकों को सुविधा देने के लिए सामान्य रुप से वनों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। चाहे ठंडे क्षेत्र में ईंधन की व्यापक माँग हो अथवा दूध और मांस की। एकाएक बढ़ती हुई माँग ने इन गतिविधियों का दबाव प्राकृतिक संसाधनों पर डाला हैं। बेदिनी बुग्याल क्षेत्र में जिसके पास क्वारी एवं बुग्याल भी स्थित हैं सरकार की ओर से कोई सुविधाएं नही दी गई हैं। सैलानियों को मुम्बई , कलकत्ता, दिल्ली एंव बड़ौदा से लाने वाली पर्यटन एजेंसिया यहां पर शिविर लगाती हैं, और सामान्य सुविधाओं के लिए उन्हें गाँवों पर निर्भर रहना पड़ता है। बाँज, मोरु, खरसू, सैलिक्स, फर, राई, एंव देवदार से आच्छादित वन क्षेत्र अब काफी दबाव में हैं। सात वर्ष पूर्व तक वाहन केवल लौहजंग तक आते थे, किन्तु अब वे अंतिम ग्राम वाण तक पहुँचते हैं।

इन सब गतिविधियों का प्रभाव इस क्षेत्र में जलवायु परिवर्तन एंव जैव विविधता पर पड़ा हैं। चारा देने वाली बाँज प्रजाति के वृक्षों का निरंतर पातन इस क्षेत्र में सामान्य रुप से पाई जाने वाली वनस्पतियों की प्रकृति में भी बदलाव लाया हैं। मुक्कु नामक फर्न (*Drynaria mollis*) जो एक उपजीवी हैं सामान्य तौर पर इस क्षेत्र के वृक्षों पर पाया जाता है। अभी तक इस वंश (Drynaria) की 20 प्रजातियों का उल्लेख हिमालय क्षेत्र में मिलता है । इसे सामान्य अंग्रेजी में (Bird Nest Fern) भी कहा जाता हैं क्योंकि यह पत्ताविहीन टहनियों पर घोंसले का सा रुप बना लेती हैं। (बुलेटिन आफ नेशनल बौटेनिक गार्डनस–सं0 56–फर्नस आफ इंडिया–1961.)। पत्तियों के लिए जिनका उपयोग चारे के लिए किया जाता है, बाज की टहनियों का निरंतर पातन करने से मुक्कू रौद्र रुप ले लेता हैं और नई पत्तियों के उगने से पूर्व ही काटे हुए स्थल पर आच्छादित हो जाता हैं। परिणाम स्वरूप बड़े वृक्ष भी पत्तियों के न उगने एंव प्रकाश संश्लेषण के अभाव में सूखना प्रारम्भ कर देते हैं। इसका प्रकोप मुँदौली, लौहजंग, कुलिंग, तोलपाणी एंव वाण सहित आस पास के सभी वन क्षेत्रों पर पड़ा है। इस समस्या की ओर सर्वप्रथम ध्यान, बुग्याल संरक्षण समिति के अध्यक्ष श्री दयाल सिंह पटवाल ने दिलाया था। वन व्याधि प्रभाग की ओर से तीन बार इस क्षेत्र का सर्वेक्षण किया गया

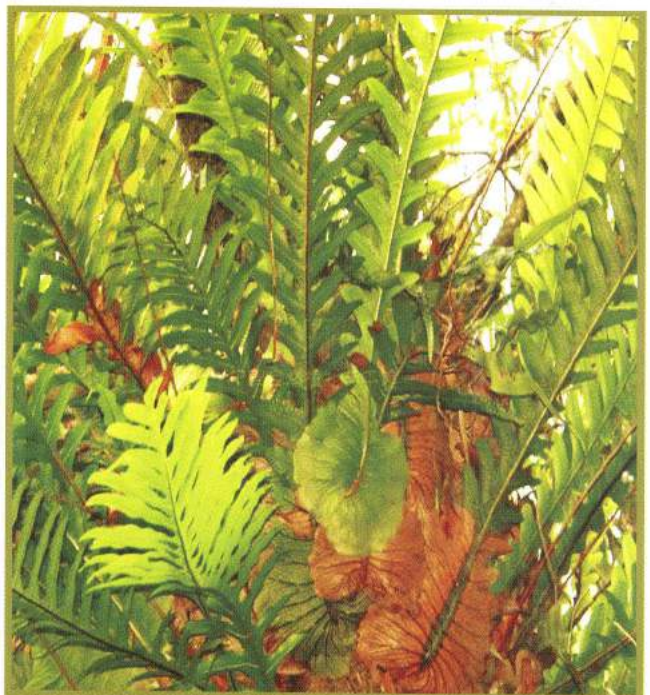

ड्राईनेरिया प्रजाति

और पाया कि सरु, कैल, फर, राई, एंव देवदार के वृक्षों पर यह उगा हुआ तो पाया गया किन्तु इन प्रजातियों पर इसका प्रभाव व्यापक नहीं था। बाँज, मारु, खरसू, अखरोट, सैलिक्स एंव बुराँस पर इसका प्रभाव व्यापक पाया गया है कारण स्पष्ट हो जाता है एक तो शकुधारी वृक्षों का उपयोग चारे के लिए नहीं होता दूसरे समुचित मात्रा में ईंधन एंव चारा देने वाले वृक्ष कठोर काष्ठ के ही होते हैं। श्री दयाल सिंह पटवाल जी ने सुझाया था कि यदि ग्रामीण अपने क्षेत्र में वृक्ष पर आच्छादित मुक्कु को हटा दे तो प्रभावित वृक्ष को बचाया जा सकता हैं। उन्होने यह प्रयोग किया भी था और उसके सकारात्मक परिणाम भी सामने आए। यहां उल्लेख करना आवश्यक होगा कि इसी प्रकार का वन क्षेत्र रैथल एंव दयारा बुग्याल (उत्तरकाशी) के मध्य में भी हैं, जहां मुक्कु (*Drynaria mollis*) समुचित मात्रा में उपजीवि वनस्पति के रुप में वृक्षों पर पाया जाता हैं। किन्तु यह कठोर काष्ठ के परिपक्व वृक्षों को ही प्रभावित करता हैं, नये, स्वस्थ एंव अपरिपक्व वृक्षों पर यह उपस्थित तो होता हैं किन्तु उनके विकास को बाधित नहीं करता।

फिर भी यहां यही कहना उचित होगा कि सरकार पर्यटन को बढ़ावा तो दे किन्तु प्राकृतिक संसाधनों की कीमत पर नहीं। अत्याधिक मानवीय हलचल और संसाधनों पर दबाव निसंदेह जलवायु परिवर्तन और जैवविविधता पर प्रभाव डालेगा और स्वंय पर्यटन स्थलों का अस्तित्व खतरे में पड़ जाएगा।

...पृष्ठ 95 का शेष

स्थानीय लोगों को विश्वास में लेकर स्थानीय उपयोग की प्रजातियों का रोपण करने से लोगों मे उनके प्रति प्रेम और कर्तव्य भावना पैदा होगी और वे उन्हें बचाने का हर प्रयास करगें। यही कारण है कि निजी संस्थाओं द्वारा स्थानीय लोगों के सहयोग से किये जा रहे वृक्षारोपण अधिक सफल हो रहा है।

हमारे पास उपलब्ध बेकार जमीन को उपयोगी वन क्षेत्रों में बदलने में वन क्षेत्रों के समीपवर्ती कार्यकारी युवाओं और महिलाओं की पर्याप्त भागीदारी ली जा सकती है। उससे ग्रामीण अंचलों में वनीकरण को रोजगार के एक आधार के रुप में तैयार किया जा सकता है। वन कार्यों की प्रत्येक विद्या में समीपी कामकाजी लोगों को जोड़कर उन्हें सीधें रोजगार उपलब्ध कराया जा सकता है।

वनीकरण के कार्यक्रमों से जहाँ रेगिस्तान और अनुपजाऊ हो रहे क्षेत्रों को पुर्नस्थापित किया जा सकेगा तभी नयें व उपजाऊ क्षेत्रों का विकास हो पायेगा और देश की उपजाऊ व हरित क्षेत्रफल बढ़ेगा और प्रकृति का संतुलन बना रहेगा। वन क्षेत्र बढ़ने के साथ वन्य पशुओं की संख्या में स्वाभाविक रुप से बढ़ोत्तरी होगी। इस लिये वन क्षेत्रों में कृषि सुरक्षा के व्यापक प्रबन्धों पर ध्यान देना भी जरुरी होगा।

वृक्ष और वनस्पति के कृषिकरण को व्यावसायिक साधन के रुप में संचालित करने की पहल की जानी चाहिए और आरक्षित अथवा ग्रामीण वनों में बेकार वृक्षविहीन भूमि को वृक्ष खेती के लिये उपयोग में लाया जाय और उस पर पेड़ों की खेती करे तथा उससे स्थानीय लोग अपनी आज़ीविका चलायें। इससे उद्योगों की जरुरत की काफी वन–सम्पदा प्राप्त हो सकेगी और शेष वनों पर उसका दबाव कम होगा।

वस्तुतः वन हमारी तमाम जरुरतों का मूल आधार है। उनको बढ़ाने और सुरक्षित करने की समन्वित कोशिश से ही हमारे सारे आर्थिक क्रिया कलाप जारी रह सकते है और हमारी न्यूनतम जरुरते भी पूरी हो सकती है।

भारत के मनीशियों व चिन्तकों ने भौतिक पर्यावरण के साथ–साथ मानव के आध्यात्मिक पर्यावरण की शुद्धि पर जोर दिया था इस लिये आज वनों को बढ़ाने के साथ ही पर्यावरण विषयक अध्ययन तथा शोध को प्राथमिकता देना चाहिये और लोगों को वनों से जोड़ने की कोशिश करनी चाहिए। इस के लिये प्राचीन साहित्य को आधार मानकर उसके साथ आधुनिक पर्यावरणविद तथा वैज्ञानिकों के निष्कर्षों का सामन्जस्य स्थापित करके पर्यावरण के शोधन, रक्षण व पोषण के लिए सार्थक कदम उठाना चाहिये।

वन व्याधि उद्भिजालय

श्रीमती रंजना जुवाठा
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वन अनुसंधान के मुख्य भवन में स्थित वन व्याधिकी प्रभाग का उद्भिजालय अपने आप में वन व्याधियों से सम्बन्धित सामग्री को संरक्षित किये हुए है। यहां न केवल काष्ठ अपितु पादप व्याधियों से प्रभावित पत्ते, टहनियों और फफूँद फलकाय को संरक्षित रखा गया हैं अपितु उनके उपचार एंव नियन्त्रण को भी प्रभावी रुप से प्रदर्शित किया गया है यद्यपि एक आम दर्शक को संरक्षित सामग्री एकाएक आकर्षित नहीं करती है किन्तु सामग्री का महत्त्व समझने के बाद दर्शक निश्चित ही उद्भिजालय का महत्त्व समझने लगते है। भारत में वन व्याधिकी विषय पर शोध प्रारम्भ होने के समय से अब तक का इतिहास समेटे रहने का गौरव इस उद्भिजालय का है।

संग्रहित वस्तुओं के रुप में यहाँ फफूँद के विभिन्न फलकाय, प्रभावित काष्ठ, पत्तियाँ

व्हाइट पॉकेट राट से प्रभावित काष्ठ

वन व्याधि उदभिजालय का दृश्य

चिकित्सकीय महत्व के फफूँद व खाद्य योग्य फलकायों को संग्रहित एंव प्रदर्शित किया गया है। लगभग 150 वर्ष पुराने संरक्षित फलकाय कदाचित विश्व में इसी उद्भिजालय में देखने को मिल सकते है।

वन व्याधि प्रभाग के उद्भिजालय में संग्रहित विभिन्न प्रकार के फफूँद फलकाय मात्र रोग कारक अथवा काष्ठ अपक्षयण ही नहीं करते अपितु उनमें अनेक प्रजातियाँ खाद्य सामग्री एंव औषधि के रुप में प्राचीन काल से प्रचलन में है। इन खाद्य योग्य एवं औषधि गुण रखने वाले फफूँद फलकायों को कृत्रिम रुप से उगाने का प्रशिक्षण कार्यक्रम समय–समय पर प्रभाग आयोजित करता है। इन प्रदर्शित वस्तुओं को देखकर दर्शक प्रेरित होते है और समाज के विभिन्न क्षेत्रों से सम्बन्ध रखने वाले अपनी रुचि के अनुसार जानकारी प्राप्त करते हैं।

जल रंगो से फफूँदों की विभिन्न प्रजातियों के फलकायों की कृतियाँ संस्थान के बीते युग के चित्रकारों की निपुणता को प्रदर्शित करते है। इन कृतियों का निर्माण अपने समय के नामचीन चित्रकारों द्वारा किया गया है व इन्हें अंतराष्ट्रीय सम्मान भी प्राप्त हुआ है।

आज भी वन व्याधिकी के क्षेत्र में अध्ययन हेतु छात्रों एंव प्रशिक्षणओं की शिक्षा एंव प्रशिक्षण का प्रारम्भ इसी उद्भिजालय से होता है।

...शेष पृष्ठ 111 पर

गुग्गल : कौंमीफोरा मुकुल एक "औषधीय पौधा"

श्री महेन्द्र सिंह
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

वानस्पतिक नाम : ***Commiphora mukul*** **(Hook. Ex Stocks)**

कुल : **Burseraceae (बरसेरेसी)**

यह दक्षिणी अफ्रीका तथा मध्य एशियाई देशों का मूल निवासी पौधा है। अफ्रीका, मेंडागास्कर, सोमालिया, बंगलादेश, आस्टेलिया, पाकिस्तान, अफगानिस्तान तथा भारत में पाया जाता है। इस पौधे की 165 प्रजातियां हैं, जिनमे से 4 भारत में पाई जाती है। भारत में यह कर्नाटक, मध्य प्रदेश, गुजरात, राजस्थान, तमिलनाडु छत्तीसगढ़, असम तथा महाराष्ट्र के जंगलों में पाया जाता था, परंन्तु जगलों की अवैध कटाई, अवैज्ञानिक तरीके से गोंद उत्पादन के कारण आज विलुप्त प्रायः प्रजाति (Threatened Plant) की श्रेणी में आने वाला यह पौधा संरक्षित वनस्पति घोषित किया गया है।

वृक्ष के प्रदेशिक भाषीय तथा अन्य नाम : हिन्दी– **गुगल**, बंगाल– **गुग्गल**, गुजरात – **गुग्गुल**, कनार्टक – **इवडोल**, इंग्लिश– **डेलियम (Indian Delium)**, लैटिन – **बालसमों डेनड्रोन** (Balsamo Dendron) Roxburghi, वानस्पतिक – ***Commiphora mukul*** **(Hook. Ex Stocks)**

गुग्गल के वृक्ष भारतवर्ष में पाए जाते हैं। गुग्गल वृक्ष का गोंद ही गुग्गल के नाम से परिचित है। निघण्टुओं में इसे "मरुदेष्य" ऐसा नाम दिया है, इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में अरब इत्यादि देशों में गुग्गल का व्यापार बहुत होता था। गुग्गल झाड़ीनुमा बहुवार्षिक पौधा है। इसके पौधे को 200 से 250 साल तक जिंदा रहते देखा गया है। इसकी उंचाई 2 5 से 35 मीटर तक होती है। इसकी शाखाओं का रंग राख के समान होता है। गुग्गल की पत्तियां अर्ध गोलाकार, बिना डंठल की तथा बाहरी किनारा कटा हुआ, उपरी हिस्सा चिकना होता है व आकार में 2.5 से.मी. लम्बा व 2 – 2.5 से.मी. चौडा होता है। पर्णदल संयुक्त, एक के बाद एक। इसके 5 – 6 मि.मी. लम्बाई, 3 मि.मी. चौडाई के पांच पंखुडियों वाले और तांबे के रंग के होते है। फल गोलाकार व लाल रंग के होते है। इन फलों में तीन बीज होते है।

गुण धर्म: गुग्गल स्वच्छ, कड़वा, उष्णवीर्य, पित्तकारक, दस्तावर, कसैला, चरपरा, अत्यंत हल्का, टूटी हड्डियों को जोडने वाला, वीर्यकारक, चिकना, बलवर्धक, और कफ, वात, व्रण, अपची, मेद, प्रमेह, पत्थरी, क्लेद, कुष्ठ, आमवात, पिडका, ग्रन्थि, सूजन, बवासीर, गण्डमाला तथा कृमिरोग को नष्ट करने वाला है।

औषधीय उपयोग: आयुर्वेद में गुग्गल को त्रिदोषहर कहा जाता है, और यह एक दिव्य औषधी है। गुग्गल कफनाशक होने के कारण कफनिस्सारण, खांसी अस्थमा, स्वरावरोध में हितकारी माना जाता है।

गुग्गल का सबसे ज्यादा उपयोग रक्त में बढ़ी कोलेस्ट्रोल की मात्रा कम करने तथा हृदय रोग नियन्त्रण हेतु किया जाता है। यह रक्त में ल्युको साइटिस की मात्रा बढ़ाता है। खून की शर्करा भी कम करता है, तथा मधुमेह में भी उपयोग होता है। यह रक्त दोषांतक होने के कारण रक्त शोध, रक्त कण, और श्वेत कण वर्धक, नाडी–बल्य शीत प्रशमन, वर्ण्य, कुष्टघ्न, शिरा रोग, दन्त मसूडों के विकार आदि का इलाज करता है। गुग्गल गण्ड मालाहार, गलग्रन्थि, अम्लपित्त, पांडुरोग उपदंष, त्वचा रोग, स्त्रीरोग, बवासीर, कुष्ठ, यकृत उत्तेजक, मूत्रल रसायन, तथा वीर्य वर्धक माना जाता है। यह त्रिदोषहर, शोथहन, तथा वेदना हारक होने के कारण कैंसर में भी लाभप्रद है। गुग्गल का उपयोग वेदना शामक, जख्म सुखाने और उन्हें जल्दी भरने, सूजन कम करने तथा टूटी हड्डियों को जोड़ने में किया जाता है। इसका उपयोग वनस्पति जन्य कीटनाशक, सौंदर्य प्रसाधनों में, अगरबत्ती, धूपबत्ती के निर्माण में प्रमुख है।

प्रस्तुत लेख में वनस्पति विषय से सम्बंधित महत्त्वपूर्ण तथ्य व जानकारियां प्रमाणित भारतीय ग्रन्थों का आंशिक संकलन, हिन्दी भाषा में ज्ञान कराने हेतु का आशय जनहित को जागृत करने का है।

भारत में पुस्तकालय व सूचना विज्ञान की एक झलक

श्रीमती अनुराधा भाटी
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

विज्ञान व तकनीकी के आधुनिक युग में तकनीकी प्रगतियाँ विशेषकर सामाजिक, राजनीतिज्ञ, आर्थिक व सांस्कृतिक और शैक्षणिक विकास के लिए उत्तरदायी है। समस्त ज्ञान के क्षेत्रों में बहुत बदलाव आ रहा है। इन सब क्षेत्रों के विकास व बदलाव के विभिन्न बिन्दुओं में एक बिन्दु पुस्तकालय व सूचना विज्ञान भी है।

पुस्तकालय व सूचना विज्ञान के व्यवसाय का बदलता स्वरूप

पुस्तकालय व सूचना विज्ञान एक विषय के रुप में तीव्र गति से बदलता रहा है। नई तकनीकों के आगमन और पुस्तकालय व सूचना कार्यों व सेवाओं में उनको प्रयोग में लाने से पाठकों व समाज की नई मांगो को संतुष्ट करने में पुस्तकालय समर्थ बन रहे है। शोध के सैद्धान्तिक व प्रायोगिक विकास के साथ–साथ पुस्तकालय व सूचना विज्ञान व्यवसाय में भी बदलाव आया है।

भारत में पुस्तकालयों का उद्भव

प्राचीन भारत की शिक्षा का इतिहास भारत में पुस्तकालयों का प्रार्दुभाव व विकास को स्पष्ट दर्शाता है। सन् 400 ए.डी. "नालन्दा विश्वविद्यालय" एक लोकप्रिय विश्वविद्यालय था और शिक्षा का प्रसिद्ध स्थान था। नालन्दा एक प्रसिद्ध बुद्ध धर्म का केन्द्र था जहाँ पर एक बड़े पुस्तकालय का अस्तित्व था जो बुद्ध धर्म की प्रत्येक पुस्तको का रख रखाव करता था। गुप्ताकालीन शासक इस विश्वविद्यालय के महान आश्रयदाता थे। 'तक्षशिला विश्वविद्यालय' 'नार्गाजुन विद्यापीठ' जो कि दक्षिण भारत में अमरावती में बुद्ध धर्म की संस्कृति के धार्मिक केन्द्र के नाम से जाना जाता था, पुस्तकालय के संग्रह को भी सुरक्षित रखता था।

"प्राचीन भारत में शिक्षा के अन्य केन्द्रो के साथ संलग्न अच्छे स्तर के पुस्तकालय भी थे जैसे वल्लभी ओदान्तापुरी, मिथिला, नादियाँ व बनारस जिनमें अंतिम तीन ब्राह्मण संस्कृति से संबधित थे। इनमें नालन्दा के बराबर शिक्षा का केन्द्र कांठियावाड़ में वल्लभी 7 वीं शताब्दी कालीन था।"

भारत में पुस्तकालय व सूचना विज्ञान की शिक्षा

भारत में यह शिक्षा वर्ष 1911 में बडौदा में प्रारम्भ हुई जब बडौदा राज्य के शासक महाराजा सयाजीराव गाईकवाड तृतीय न अमेरिका से डब्लू.ए. बोर्डन को पुस्तकालयों के विकास के सुझाव देने हेतु बुलाया और राज्य में पुस्तकालय आन्दोलन की शुरुआत की थी। वर्ष 1912 में पंजाब विश्वविद्यालय ने श्री आसा डॉन डिंकइनसन (Asa Don Dickinson) को लाहौर बुलाया जिसने वर्ष 1915 में 3 माह का प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भारत में प्रारम्भ किया।

पुस्तकालय विज्ञान में प्रथम बार डिप्लोमा पाठ्यक्रम मद्रास विश्वविद्यालय ने 1937 में डॉ. एस. आर. रंगानाथन ने प्रारम्भ किया। अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय ने वर्ष 1958 में भारत में सर्वप्रथम स्नातक पाठ्यक्रम डिप्लोमा पाठ्यक्रम को बदलकर प्रारम्भ कर दिया। ग्रन्थालय विज्ञान में स्नाकोत्तर डिग्री पाठ्यक्रम भारत में दिल्ली विश्वविद्यालय ने प्रारम्भ किया। ग्रन्थालय व सूचना विज्ञान में प्रथम पी. एच.डी. डिग्री वर्ष 1930 में शिकागों विश्वविद्यालय (यू.एस.ए.) ने प्रदान की, जबकि भारत में डी. बी. कृष्णराव दिल्ली विश्वविद्यालय से वर्ष 1958 में पी. एच.डी. की उपाधि प्राप्त करने वाले प्रथम व्यक्ति है।

पुस्तकालय व सूचना विज्ञान संघ की रचना

स्वतन्त्रता के पूर्व, बडोदा पुस्तकालय संघ (1910) आन्ध्र प्रदेश पुस्तकालय संघ (1914), बंगाल पुस्तकालय संघ (1927) मद्रास पुस्तकालय संघ (1927), व भारतीय पुस्तकालय संघ (1937) ने भारत में पुस्तकालय आन्दोलन और विकास को प्रोत्साहित किया।

इन संघों ने कई प्रयास पुस्तकालय अधिनियमों को पारित कराने पुस्तकालयाध्यक्षों को प्रशिक्षण और भारत में पुस्तकालयों के सुधार हेतु किए। कई संघों ने पत्रिकाओं का प्रकाशन प्रारम्भ किया और अच्छे लेखनकर्ताओं और इस विषय के व्यवसायियों को पारितोषिक प्रदान किया।

आधुनिक संसार के इस स्वचालित व डिजीटल वातावरण में पुस्तकालय सहकारिता सर्वमान्य स्वीकृति तथा महत्व प्राप्त कर रही है। पुस्तकालय नेटवर्किंग, इन्टरनेट पर आधारित संसाधनों को आपस में बाँटकर उपयोग में लाना, संघीय सूची (Union Catalogue) इस पुस्तकालय की सहकारिता के उदाहरण है। यह सब संघों के माध्यम व प्रयत्नों से हुआ है। पुस्तकालयों के मध्य सहयोग को विकसित करना अब सम्भव हो गया है।

राष्ट्रीय स्तर के पुस्तकालय संघ में भारत सरकार के पुस्तकालयों का संघ (GILA), भारतीय शैक्षणिक पुस्तकालयों का संघ (INIAL), भारतीय विशिष्ट पुस्तकालयों व सूचना केन्द्रों का संघ (IASLIC), भारतीय पुस्तकालयों व सूचना विज्ञान के अध्यापकों का केंन्द्र (IATLIS), भारतीय महाविद्यालयों के पुस्तकालयों का संघ (ICLA) व भारतीय पुस्तकालय संघ (ILA) आदि प्रसिद्ध है। ये संघ पुस्तकालय आन्दोलनों, पुस्तकालय सेवाओं के स्तर को ऊँचा उठाने, पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रशिक्षण व पुस्तकालयों के सेवाओं की स्थिति को सुदृढ़ बनाने में बहुत बडा योगदान दे रहे है।

राष्ट्रीय पुस्तकालय कोलकत्ता की स्थापना

वर्ष 1835 में कलकत्ता सार्वजनिक पुस्तकालय की स्थापना हुई थी। वर्ष 1902 में इस पुस्तकालय का नाम बदलकर "इम्पीरियल लाईब्रेरी" (Imperial Library) हो गया था। 24 मई 1954 को "डिलीवरी ऑफ बुक्स" (Public Libraries) एक्ट पारित हुआ तथा 29 दिसम्बर 1956 में संशोधित हुआ। इस कानून के द्वारा राष्ट्रीय पुस्तकालय को यह अधिकार प्राप्त हुआ कि वह प्रत्येक पुस्तक की चार प्रतियाँ इस देश के प्रत्येक प्रकाशक से बिना भुगतान किए प्राप्त कर सकेगा। राष्ट्रीय पुस्तकालय के स्थापित होने से व उसकी प्रकृति, विशेषताओ व नीतियों के कारण सार्वजनिक पुस्तकालय के विकास का मार्ग खुल गया। वर्ष 1948 में 'इम्पीरियल लाईब्रेरी' को भारत का राष्ट्रीय पुस्तकालय नाम से परिवर्तित कर दिया था।

पुस्तकालय अधिनियम के पारित होने से सार्वजनिक पुस्तकालय का विकास व प्रगति

स्वतन्त्रता के पश्चात्, भारत सरकार ने सार्वजनिक पुस्तकालय के विकास में सहयोग दिया जिससे शिक्षा, शोध, साक्षरता के प्रोग्राम व देश के सामाजिक व आर्थिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान पाप्त हुआ। सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम प्रथम बार वर्ष 1850 में इंग्लैंड में पारित हुआ। भारत में प्रथम सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम वर्ष 1948 में पारित हुआ। जो अब तमिलनाडू सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम कहलाता है। इसका अभिप्राय यह है कि भारत में पुस्तकालय अधिनियम पुस्तकालय आन्दोलन के सहयोग के लिए 100 वर्ष बाद पारित हुआ। वर्ष 2006 तक भारत के सार्वजनिक पुस्तकालयों के विकास में सहयोग देने के लिए 13 राज्यों में सार्वजनिक पुस्तकालय अधिनियम पारित हुआ।

भारत में पुस्तकालयों के विकास में आयोग व कमेटियों का योगदान

पुस्तकालयों के विकास के लिए बहुत से आयोग व कमेटियों की स्थापना की गई थीं यू.जी.सी. ने वर्ष 1957 में रंगनाथन कमेटी गठित की थी। मुद्दालियर कमीशन का गठन वर्ष 1952 में किया था, विशेषकर सैकेण्ड्री शिक्षा हेतु। पुस्तकालय विज्ञान

की रिव्यू कमेटी वर्ष 1961 में, शिक्षा आयोग (1964–66), मेहरोत्रा कमेटी (1983), विश्वविद्यलयों के लिए राष्ट्रीय नेटवर्क पद्धति कमेटी (1988),व पुस्तकालय व सूचना विज्ञान में विभिन्न समितियों ने पुस्तकालयों की गुणवत्ता को सुधारने में बहुत सा योगदान प्रदान किया।

यू.जी.सी शैक्षणिक भारत में उच्चस्तर की शिक्षा के लिए पुस्तकालय के विकास हेतु वित्तीय सहायता प्रदान करती है। इस विभाग ने प्रशिक्षित पुस्तकालयाध्क्षों के वेतनमान निश्चित किए, पुस्तकालय व सूचना विज्ञान की शिक्षा व प्रशिक्षण कार्यक्रम कार्यान्वित किए। इसने 11 राष्ट्रीय सूचना केन्द्रों की स्थापना भी की है। इस विभाग द्वारा इनफ्लिबनेट (INFLIBNET) की स्थापना 1986 में अहमदाबाद में समस्त विश्वविद्यालयों, उच्चशिक्षण व शोध संस्थाओं के पुस्तकालयों की सूचना संचार प्रणाली को प्रचलित करने के लिए किया। इनफ्लिबनेट ने सोल (SOUL) सोफ्टवेयर को पुस्तकालय की गतिविधियों को स्वचालित करने व संसाधनों को आपस में बाँटने के आधार पर नेटवर्क विकसित किया।

राष्ट्रीय सूचना पद्धति की स्थापना

भारतीय राष्ट्रीय वैज्ञानिक प्रलेखन केन्द्र (INSDOC) नई दिल्ली जो वर्तमान में निस्केयर (NISCAIR) नई दिल्ली में सम्मिलित हो गया है, ने पुस्तकालयता के व्ययसाय में नई गतिविधि का क्षेत्र व नया क्षितिज जोड दिया है।

इन्सडॉक (INSDOC) नई दिल्ली व डी.आर.टी. सी. बैंगलोर ने इस पुस्तकालय व्यवसाय से सम्बन्धित विशेषज्ञता वाली शिक्षा के पाठ्यक्रम प्रारम्भ किए। निशात, डेसीडॉक संस्थाओं व कई पद्धतियाँ व नेटवर्क्स जैसेकि–अर्नेट (ERNET), निकनेट (NICNET), डेलनेट (DELNET), इनफ्लिबनेट आदि की स्थापना ने पुस्तकालय व्यवसाय की स्थिति बदल दी है। विभिन्न अर्न्तः सरकारी ऐजेन्सीज जैसे कि आईसी एस.एस.आर. ,आसी ए.आर.ए., सी.एस.आई आर., आर आर.आर. एल.एफ., यू.नेस्को, यू.एन.आई.डी.ओ. व एफ.ऐ.ओ. आदि ने सूचना के हेण्डलिंग की गतिविधियों में सक्रिय भूमिकाएँ निभाई। इससे पुस्तकालय व सूचना व्यवसाय का दवाब राष्ट्रीय स्तर से हटकर अर्न्तराष्ट्रीय स्तर का हो गया। विभिन्न अर्न्तराष्ट्रीय सूचना पद्धतियाँ उदाहरण के रुप में इनीस (INIS), एग्रीस (AGRIS), डेवीस ने राष्ट्रीय सूचना प्रदान करने की सुविधाओं को पुनर्गठित करने में योगदान दिया जिस कारण राष्ट्रीय सूचना पद्धति की स्थापना में सहयोग प्राप्त हुआ।

पुस्तकालय में सूचना संचार प्रौधोगिकी के उपयोग के कारण पुस्तकालय के प्रबन्ध में पुस्तकालय के तरीकों व तकनीकियों को लागू करने में बदलाव लाना आवश्यक हो गया है। सूचना व संचार सम्बन्धित तकनीकियों ने पुस्तकालय नेटवर्क, डाटाबेस, साफ्टवेयर प्रोग्राम्स्, ऑन लाइन सेवाओं, सूचना अवाप्ति, अभिप्राय पुनः प्राप्ति व विभिन्न स्थानों पर वितरण के कार्यों में बहुत बदलाव ला दिया है।

उपसंहार

सूचना व संचार तकनीकी ने पुस्तकालय व सूचना विज्ञान को एक ऐसा विषय बना दिया जिससे संसाधनों के अधिकतम उपयोग ने उनकी अवाप्ति, संग्रह, संगठन, पुनः प्राप्ति व चहूँ ओर सूचना को वितरित करने के लिए सक्षम बना दिया है। कई सॉफ्टवेयर पैकेज, ऑन लाइन सूचना पुनः प्राप्ति पद्धतियाँ, सूचना नेटवर्क्स का उपयोग, ऑन लाइन डाटाबेस, मल्टी मीडिया व सीडीरोम तकनीकी आदि पुस्तकालय व सूचना विज्ञान के क्षेत्र में तकनीकी क्रान्ति द्वारा चुनौतियों को सामना करने के लिए महत्त्वपूर्ण विचारणीय बिन्दु हैं।

पारिस्थितिकी तंत्र

श्री दिनेश धीमान
हिमालयन वन अनुसंधान संस्थान, शिमला

प्रस्तावना

जहां तक हम जानते हैं, हमारी पृथ्वी ही एकमात्र ऐसा ग्रह है, जहां पर जीवन का अस्तित्व है, यद्यपि वैज्ञानिक अन्य ग्रहों पर जीवन के चिन्हों की लगातार खोज कर रहे हैं परन्तु नील ग्रह 'पृथ्वी' जैसी आदर्श परिस्थितियां किसी दूसरे ग्रह पर विद्यमान नहीं हैं। करोड़ों वर्ष पूर्व पृथ्वी पर जीवन के लिए परिस्थितियां, आज की परिस्थितियों से बिल्कुल अलग थी और प्रारंभिक जीवधारी भी अलग किस्म के थे। जंतुओं और वनस्पिवियों की वर्तमान किस्में पुराने रुपों से उसी तरह विकसित हुई है, जिस तरह से पृथ्वी पर लाखों वर्षों में जीवन के योग्य स्थितियां आई। पृथ्वी पर सूर्य के प्रकाश के साथ–साथ वायु, जल तथा सही ताप व दबाव की उपस्थिति से जीवन का उद्‌भव (आरम्भ), विकास और वैविध्य संभव हुआ है। वास्तव में, जीवधारियों और पृथ्वी के वातावरण के बीच एक बारीक सामंजस्य रहता है। इस सामंजस्य में थोड़ा–सा बदलाव भी जीवन को अस्त–व्यस्त या समाप्त कर सकता है। अचानक बाढ़, मृदा अपरदन आदि इस संतुलन पर प्रतिकूल प्रभाव डालता हैं। अतः हमें समझना चाहिए कि किस प्रकार जीव और निर्जीव के बीच प्रकृति में समन्वय रहता है और कौन–कौन सी प्रक्रिया इस समन्वय को बनाए रखती है।

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण

आज हम जीवन में विभिन्न सामाजिक स्थिति/प्रभाव के लोगों द्वारा पारिस्थितिक और पर्यावरण आदि शब्दों का प्रयोग करते हुए सुनते हैं। राजनीतिज्ञ, नेता, नगर नियोजक, विद्यार्थी और वास्तुविद "पर्यावरण के मुद्‌दों" और "पारिस्थितिक मामलों" पर बात करते हैं। निस्संदेह ये शब्द काफी आम हैं, पर क्या ये वक्ता और श्रोता द्वारा सही अर्थों में समझे जाते हैं। प्रायः इनको विभिन्न ढ़ंग एवं स्वरूप से समझा जाता है। अतः इन शब्दों को कुछ सामान्य अर्थों में समझने की आवश्यकता है।

पारिस्थितिकी जीव विज्ञान की एक शाखा है, जिससे हम जीवों और उनके 'पर्यावरण' के बीच सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं। प्रत्येक वस्तु जो जीवधारियों के काल में उसे बाहर से प्रभावित करती है, सामूहिक रुप से पर्यावरण कहलाती है। इन पर्यावरणीय प्रभावों को दो भिन्न श्रेणियों में बांटा जा सकता है। जीव को प्रभावित करने वाली जो वस्तुएं सजीव है, वे 'जैविक कारक' कहलाते हैं। इसे हम एक उदाहरण देकर स्पष्ट करेंगे। यदि हम जल की धारा में एक मछली को लें, तो हम, मछली के जीवन काल में विभिन महत्वपूर्ण पर्यावरणीय कारकों की पहचान कर सकते हैं। जल का तापक्रंम एक महत्त्वपूर्ण अजैविक कारक है। किंतु यह उन वृक्षों की उपस्थिति से प्रभावित हो सकता है, जो कि एक जैविक कारक है, जो धारा के किनारों पर छाया किए रहते हैं तथा इसको सूर्य से गर्म होने से रोकते हैं। ऐसे जीवों के प्रकार और उनकी संख्या, जो मछली के लिए भोजन है, महत्त्वपूर्ण जैविक कारक है। विभिन्न प्रकार के पदार्थ जो नदी की तलहट्‌टी बनाते है तथा पानी में घुली ऑक्सीजन की मात्रा जो अजैविक कारक हैं, दोनों ही पानी के बहाव की गति से प्रभावित होते हैं। संक्षेप में, किसी प्राणी का पर्यावरण एक पेचीदा सम्मिश्रण है और इसके विभिन्न कारक एक दूसरे से सम्बन्धित हैं।

पारिस्थितिक तंत्र

नदी में एक मछली के उदाहरण से आपको स्पष्ट हो गया कि जीवधारियों और प्रकृति में उनके स्थान को अच्छी तरह से समझने के लिए हमें उनको अकेले नहीं परन्तु एक अंतक्रियात्मक तंत्र का भाग

मान कर चलना होगा। इस प्रकार का अंतक्रियात्मक तंत्र, पारिथितक तंत्र कहलाता है।

आप कभी न कभी झील, तालाब, घास का मैदान या जंगल जरुर देखा होगा। यह सभी "पारिस्थितिक तंत्र" के अन्य उदाहरण हैं। हम एक तालाब को एक आदर्श पारिथितक तंत्र के रुप में मानकर इसकी अच्छी तरह से व्याख्या करें।

मूल रुप से यह दो प्रकार के घटकों से बना है, जैविक और अजैविक। जैविक घटक विभिन्न प्रकार के पौधों और जन्तुओं जैसे मेंढकों, पक्षियों, मछलियों, कछुओं तथा कीड़ें मकौड़ों और विभिन्न प्रकार के सूक्ष्म जीवों से युक्त होता है और घुलनशील गैसों, ऑक्सीजन, कार्बन डाईऑक्साईड तथा खनिज लवणों से युक्त पानी, मृदा और पत्थर अजैविक घटक के भाग हैं। जैसे किसी तालाब के सभी घटक एक दूसरे को प्रभावित करते हैं, चलते–फिरते हैं, बढ़ते हैं, जोड़ा बनाते हैं, प्रजनन करते हैं, एक दूसरे के भोजन बन जाते हैं, अंततः मर जाते हैं। इस प्रकार से तालाब स्वयं में एक छोटा सा पारिस्थितिक तंत्र है यह ठीक कहा गया है कि तालाब का सक्रिय अस्तित्व है। यह उसी तरह आज नहीं है जैसा कल था। आइए अब हम अधिक निकट से पारिथितक तंत्र में जैविक कारकों की भूमिका को जानें।

पारिस्थितिक तंत्र में विभिन्न प्राणी और उनकी पारिस्थितिकीय भूमिकायें

किसी पारिस्थितिक तंत्र में प्राणियों को तीन विस्तृत श्रेणियों में बांटा जा सकता है। ये हैं – उत्पादक, उपभोक्ता एवं अपघटक। आइए देखें इनकी स्थिति पारिस्थितिक तंत्र में क्या है। पृथ्वी पर लगभग सभी जीवों के लिए सूर्य ऊर्जा का मूल स्त्रोत है। सौर ऊर्जा जीवित समुदायों में हरे पौधों, कुछ बैक्टीरिया और शैवालों के माध्यम से प्रविष्ट होती है। जिन्हें हम उत्पादक कहते हैं। प्रकाश संश्लेषण के समय, हरे पौधे सौर ऊर्जा का प्रयोग, दो साधरण अल्प ऊर्जा तत्वों, कार्बन डाईऑक्साइड और जल को अधिक जटिल तत्वों जैसे कार्बोहाइड्रेट में बदलने में करते हैं, जिसे हम भोजन कहते हैं। प्रकाश संश्लेषण में सहउत्पाद के रुप में ऑक्सीजन उत्पन्न होती है।

प्रकाश संश्लेषण को जारी रखने के लिए तथा भोजन बनाने के लिए हरे पौधों को केवल सूर्य के प्रकाश, जल और कार्बन–डाइऑक्साइड की ही जरुरत नहीं होती बल्कि खनिज लवणों की भी थोड़ी मात्रा में जरुरत होती है जैस– कैल्शियम, पोटेशियम तथा मैग्नीशियम जो पानी में तैरते पौधों के चारों ओर तथा मृदा जल में पौधों की जड़ों के चारों ओर घुले रहते हैं।

प्रकाश संश्लेषण

कार्बन–डाइऑक्साइड + जल + सौर ऊर्जा + खनिज लवण भोजन + ऑक्सीजन प्रकाश संश्लेषण द्वारा निर्मित भोजन, बाद में पौधा स्वयं ही उर्जा के लिए प्रयोग कर सकता है या इस पौधे का उपयोग करने वाले प्राणी द्वारा प्रयोग किया जाता है। श्वसन की प्रक्रिया द्वारा भोजन का प्रयोग उर्जा उत्पन्न करने के लिए होता है। श्वसन में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है और इससे तीन चीजें उत्पन्न होती हैः उर्जा, कार्बन–डाइऑक्साइड और जल – ये प्रकाश संश्लेषण के मूल तत्व हैं।

श्वसन

भोजन + ऑक्सीजन कार्बन–डाइऑक्साइड + जल + उर्जा भोजन शरीर के लिए केवल उर्जा का स्त्रोत ही नहीं है अपितु प्राणियों के शरीर के निर्माण करने वाले तत्वों को मौलिक घटक भी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकाश संशलेषण के दौरान पोषक तत्व और उर्जा एक रुप होकर भोजन बनाते हैं। यह भोजन एक पारिस्थितिक तंत्र में हरे पौधों से दूसरे प्राणियों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

जैसा कि आप जान चुके हैं कि हरे पौधे उत्पादक कहलाते हैं क्योंकि वे अपना भोजन स्वयं बनाते हैं। पौधे जीते हैं और मरते हैं। वे प्राणियों द्वारा खाये जा सकते हैं अंतत + ये प्राणी मर भी जाते हैं। कुछ दूसरे प्राणी अपघटक भी हैं जो मृत पौधों और प्राणियों को अपने अस्तित्व के लिए अपघटित करते हैं। इस प्रक्रिया में वे पोषक तत्वों को मूल रुप में बदल देते हैं।

उपभोक्ता के अन्तर्गत वे शाकाहारी प्राणी आते है, जिनका भोजन पौधे हैं, मासाहारी ऐसे प्राणी

है, जो अन्य प्राणियों को खाते हैं, सर्वभक्षी जो पौधों तथा अन्य प्राणियों, दोनों को खाते है। हिरण, बुख, बकरी, गाय और स्वेच्छा से शाकाहारी मानव, शाकाहारी वर्ग के हैं। भेड़िया, चीता, बिल्ली, ड्रेगन फ्लाई तथा उकाब – मांसाहारी है, चूहा और अधिकांश मानव जाति सर्वभक्षी वर्ग के उदाहरण है।

आहार श्रृंखला

प्राणी एक दूसरे का भोजन बनकर एक दूसरे से सम्बन्धित रहते हैं। प्राणियों के एक–दूसरे को खाने के इस सिलसिले को आहार श्रृंखला कहते हैं।

आहार श्रृंखला में श्रृंखलाएं या पद होते हैं, जिन्हें पोषक स्तर कहते हैं। आहार श्रृंखला में – पोषक स्तर से अभिप्राय है कि प्राणी, आहार श्रृंखला में पौधों से कितनी दूर है। हरे पौधे या उत्पादक, प्रथम पोषण स्तर बनाते हैं। द्वितीय पोषण स्तर शाकाहारी जानवरों का होता है और उच्च पोषण स्तर, सर्वभक्षी प्राणियों से बनता है। दूसरी बात जिसे हम यहाँ स्पष्ट करना चाहते हैं, वह यह है कि कोई प्राणी किसी एक पोषण स्तर में सदैव नहीं रह सकता। मनुष्य का ही उदाहरण लीजिए, जो सर्वभक्षी है। तात्पर्य है कि वह शाकाहारी और मांसाहारी है, अतः वह द्वितीय तथा तृतीय पोषण स्तर से सम्बन्धित रहता है।

आहार जाल

एक पारिस्थितिक तंत्र में बहुत सारी आहार श्रृंखला होती है। कुछ प्राणी एक से अधिक आहार श्रृंखलाआं से एक ही समय में सम्बन्धित होते हैं। अतः कई आहार श्रृंखला आहार जाल में गुंथी हुई रहती है जो बहुत जटिल भी हो सकता है।

पारिस्थितिक तंत्र में उर्जा का प्रवाह

किसी भी पारिस्थितिक तंत्र के लिए उर्जा का प्रधान स्त्रोत सूर्य का प्रकाश है। सौर उर्जा पौधे द्वारा भोजन सामग्री में बदल दी जाती है और पौधे में एकत्र हो जाती है। सभी भोज्य पदार्थ जिन्हें हम या दूसरे जानवर खाते हैं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढ़ंग से पौधों द्वारा बनाएं जाते हैं।

सारांश

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि:

- पारिस्थितिक तंत्र में हम प्राणी एवं उनके वातावरण के बीच सम्बन्धों का अध्ययन करते हैं। और कोई भी वस्तु जो किसी प्राणी को उसके जीवन चक्र में प्रभावित करती है उसके वातावरण का निर्माण करती है।
- पारिस्थितिक तंत्र, किसी क्षेत्र विशेष के विभिन्न प्रकार से एक दूसरे पर निर्भर करने वाले प्राणियों और उनके वातावरण को दर्शाता है। प्रत्येक पारिस्थितिक तंत्र को कुछ पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है, जैसे उर्जा का (स्त्रोत) उत्पादक और अपघटक प्राणी। अधिकतर पारिस्थितिक तंत्र में उपभोक्ता प्राणी भी होते हैं।
- पारिस्थितिक तंत्र में सभी प्राणी आहार जाल से सम्बन्धित होते हैं और यह बताते हैं कि कौन क्या खाता है, उर्जा और पोषक तत्वों का जीव जगत में प्रवेश उसी समय हो जाता है जब उत्पादक भोजन बनाते हैं। प्रायः सम्पूर्ण उर्जा जो जीव जगत में प्रवेश करती है, सूर्य प्रकाश द्वारा आती है जो हरे पौधे द्वारा प्रकाश संश्लेषण के दौरान ग्रहण की जाती है। यह ऊर्जा पौधों उपभोक्ता और अपघटकों की विभिन्न गतिविधियों द्वारा मुक्त की जाती है।
- अपघटकों द्वारा मृत शरीर एवं जानवरों के अवशिष्ट पदार्थ उर्जा के स्त्रोत के रुप में इस्तेमाल होते हैं, जो पोषक तत्वों को सरल रुप में मुक्त करती है, जिसे पौधे प्रयोग करते हैं।
- पारिस्थितिक तंत्र से उर्जा का प्रवाह आवश्यक रुप से एकतरफा होने के बावजूद पोषक तत्व अनिश्चित ढंग से चक्रण कर सकते हैं।
- वास्तव में, पृथ्वी एक बड़ा पारिस्थितिक तंत्र है, जहां जीवन के अस्तित्व का मौलिक सिद्धान्त उतना ही अच्छी तरह लागू होता है जितना कि किसी लघु पारिस्थितिक तंत्र में।

धार्मिक एवं अन्य महत्व के उपयोगी वृक्ष

डॉ. नवीन कुमार बोहरा
डॉ. डी. के. मिश्रा एवं श्री प्रेमसिंह सांखला
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

भारतीय संस्कृति में वृक्षों को सर्वोपरि स्थान दिया गया है। सदियों से ही वृक्षों का उपयोग मानव द्वारा किया जाता है। कई वृक्षों की पूजा की जाती है, प्रतिदिन उन पर जल चढ़ाना धार्मिक कृत्य माना जाता है। अन्य वृक्षों का उपयोग काफी महत्त्वपूर्ण है। ऐसे धार्मिक व बहुउपयोगी वृक्षों में मुख्यतः पीपल, बरगद, तुलसी, कनेर, खेजड़ी आदि प्रमुख है। हमारे धार्मिक ग्रंथों में भी इन वृक्षों की महत्त्व का उल्लेख मिलता है। जैसे गीता के 10 वें अध्याय के 26 वें श्लोक में भगवान कृष्ण ने पीपल (अश्वत्थ) की व्याख्या करते हुए कहा है :–

"अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां" अर्थात सभी वृक्षों में पीपल सर्वश्रेष्ठ है।

इसी प्रकार का उल्लेख 15 वें अध्याय के प्रथम श्लोक में इस प्रकार किया गया है :

"उर्ध्वमूलमधः शाश्वमश्वत्थं प्रहुख्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद से वेद्विब।।"

इसमें पीपल के बारे में कहा गया कि वह वृक्ष जिसकी जड़े ऊपर एवं शाखाएं नीचे हैं, अश्वत्थ वृक्ष है। इसकी पत्तियां वेद है। इसे जानने वाला वेदों का ज्ञाता है।

विभिन्न रुपों में पूजा व श्रद्धा के पात्र ये धार्मिक वृक्ष हमारे लिए विभिन्न दैनिक कार्यों में भी उपयोगी है। वैज्ञानिक खोजों द्वारा इन वृक्षों की उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है।

पीपल

वानस्पति विज्ञान की भाषा मे इसे "फाइकस रिलीजिओसा" कहते है। यह "मौरेसी" कुल का एक वृक्ष है। इसे विभिन्न भाषाओं में भिन्न–भिन्न नामों से जाना जाता है। इसे अग्रेजी में पीपल, हिन्दी में पीपल, बंगाली में अश्वत्थःया अश्वात् उड़िया में जारी, नेपाली में पीपली, पंजाबी में पीपल या बेर, मराठी में पीम्पाला, गुजराती में पीपुल, तमिल में अश्वरथम्, तेलगु में कुल्ला, कन्नड़ में रांगी और संस्कृत में अश्वत्थः कहते है।

यह एक विशाल, पर्णपाती वृक्ष होता है। इसकी शाखाएं फैलती हुई, पत्ते अंडाकार, हृदयाकार, गोल तथा फल कक्षीय जोडों में अवृन्त तथा पकने पर नीललोहित या काले होते है। यह बीजों तथा कलम से लगाया जा सकता है और तेजी से बढ़ने वाला वृक्ष है।

धार्मिक उपयोगः यह हिन्दुओं का पूज्य वृक्ष है। विभिन्न शास्त्रों और पौराणिक कृतियों में इसका उल्लेख मिलता है। उसे बरगद के स्त्री रुप में भी जाना जाता है। वाल्कील्या ग्रंथ में पीपल की शादी, तुलसी से होनी मानी गई है। इसे सभी श्रदेय वृक्षों में गुरु माना गया है तथा इसे अश्वत्थः कहा गया है। इस वृक्ष की पूजा विशेष रुप से श्रावण माह के हर शनिवार तथा सोमवती अमावस्या के दिन की जाती है।

पुराणों में यह माना गया है कि पीपल के वृक्ष को लगाने पर मृत्यु पश्चात् मानव नर्क में जाने तथा वहाँ के कष्ट भोगने से बच सकता है। हिन्दू शास्त्रों में मुख्यतः पांच वृक्षों को पूज्य माना गया है, ये हैः पीपल, गुलर, बरगद पाखर तथा आम किन्तु इनमें से सर्वश्रेष्ठ पीपल को ही माना गया है। एक वैदिक हिन्दू यात्रा के समय बीच में पीपल आने पर जूतें खोलकर उसकी प्रदक्षिणा करता है। इसकी जड़ों में ब्रह्मा, छाल में विष्णु एवं शाखाओं में महादेव के निवास को मानकर इसे सृष्टिकारक वृक्ष (ब्रह्मा, विष्णु, महेश को सृष्टि को रचियता माना जाता है) के रुप में पूजा जाता है। इसकी शाखाओं को यज्ञ में घी की आहुति देने के लिए चम्मच के रुप में उपयोग में लिया जाता है।

दैनिक जीवन में उपयोगः–पीपल का केवल धार्मिक महत्व ही नहीं है, वरन् यह कई अन्य प्रकार से भी उपयोगी है :–

- अकाल की स्थिति में उसके फल कभी–कभी खाए जाते है। इसके सूखे फल में 35 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 5.3 प्रतिशत वसा एवं कुछ मात्रा में फॉस्फोरस, सिलिका एवं अन्य पदार्थ पाए जाते हैं।
- इसकी पत्तियां एवं टहनियां पशुओं के चारे के रुप में काम आती हैं। इसकी पत्तियों में करीब 14 प्रतिशत तक प्रोटिन तथा 23 प्रतिशत तक कच्चा रेशा के अतिरिक्त कैल्सियम, फास्फोरस आदि अन्य तत्व भी पाए जाते हैं।
- इसके वृक्ष से रबर क्षीर मिलता है, जिसका उपयोग मोटरकारों के टायरों के छोटे–छोटे छिद्रो को बन्द करने में किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कठोरित रबरक्षीर को कारीगर पोले जेवरों की भराई के काम में लेते हैं।
- इसकी लकड़ी से दियासलाई, पैकिंग कैस आदि बनाए जा सकते हैं।

औषधीय उपयोग: उसकी छाल में 4 प्रतिशत टेनिन होता है, इसका निष्कर्ष ब्रणों तथा त्वचा रोगों के काम आता है। छाल का जलय निष्कर्ष "स्टेफाइलोकोकस आरियस" तथा "एशोरिशिया" कोलाई के विरुद्ध प्रति जीणाणु के रुप में उपयोग में लाया जा सकता है। इसकी कोमल प्ररोहों और पत्तियों का उपयोग "रेचन" और "त्वचा" के अन्य रोगों के उपचार में किया जाता है।

बरगद

इसे वनस्पति विज्ञान की भाषा में "फाइकस बंगालेन्सिस" कहते है। यह भी "मौरेसी" कुल का वृक्ष है। यह संपूर्ण भारत में पाया जाता है। इसे हिन्दी में "बर" या "बड़" अथवा बरगद, बंगाली में "बर" या "बुढ", उडिया में "बोरु", असमी में "बोट", नेपाली में "बोरहर", पंजाबी में "बोर" या "बरगद", मराठी में "वार" या "वाडा", तमिल में "आला", तेलगु में "मारी", कन्नड में "आलाडा", मलयालम में "पेरालू" तथा संस्कृत में "वट" कहते है।

धार्मिक उपयोग: हिन्दू ग्रंथों में इसे पीपल का नर वृक्ष रुप में मान्यता दी गई है। माना ताजा है कि ब्रह्मा जी इस वृक्ष के रुप में पृथ्वी पर अवतरित हुए थे। इसकी टहनियों की लकड़ी को यज्ञ में उपयोग में लाया जाता है। "वृंतराज ग्रंथ" में औरतों को ज्येष्ठ सुदी 15 (अर्थात मई, जून माह में) को इस वृक्ष की पूजा करने और इसे पानी पिलाकर इसके चारों ओर एक धागा बांधकर प्रदशिक्षा करने को कहा गया है। इस वृक्ष के बारे में प्रचलित एक अन्य कथा के अनुसार सत्यवान की प्रतिव्रता पत्नी सावित्रीं ने अपने पति को यमराज से पुनः इसी वृक्ष के कारण पाया था। भारत में बिहार राज्य के संथाली एंव अन्य कबाइली हवा में लटकती इस वृक्ष की नई जड़ों को गर्दन के चारों ओर बांधकर रखते है।

अन्य उपयोग : बरगद के अन्य उपयोग निम्नालिखित है :

- बरगद के पके फल अभाव के दिनों में खाये जाते है। सामान्यतः ये बंदर और पक्षियों के द्वारा रुचिपूर्वक खाये जाने वाले फलों में से एक हैं। इसके फलों में 6 प्रतिशत वास और 35 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट के अतिरिक्त 22.5 प्रतिशत जल एवं अन्य आवश्यक तत्व पाए जाते हैं।
- इसकी पत्तियां चारे के रुप में प्रयुक्त होती हैं। जिनमें 9.63 प्रतिशत प्रोटीन, 27 प्रतिशत अपरिष्कृत रेशा, फास्फोरस, कैल्सियम आदि अन्य तत्व पाए जाते हैं।
- इसके रबरक्षीर में 0.3 – 7.7 प्रतिशत तक कुघुक होता है। इस रबरक्षीर के एक भाग में चार भाग पेट्रोल, तारपीन या बंजोल तथा कुछ मात्रा में "फार्थेल्डिहाइड" डालकर मोटरकारों के टायरों के छोटे–छोटे छिद्रों को बन्द करने में प्रयुक्त किया जाता है।
- इसकी लकड़ी मुख्यतः कुओं की जाखन बनाने तथा कुछ मात्रा में फर्नीचर के लिये प्रयुक्त की जाती है। इसकी लकडी से कागज भी बनया जा सकता है।
- यह भारतीय लाक्षाकीट के परपोषी वृक्ष के रुप में एक महत्वपूर्ण और उपयोगी वृक्ष है।

औषधीय महत्व: इसका दूध घाव पर बाहरी रुप में लगाने में, तथा कीटवेदना में दर्द निवारक (वेदना कम करने में) के रुप में प्रयुक्त होता है।यह दंत वेदना के उपचार में काम आता है। इसकी पत्तियों को गर्म करके फोड़ों पर पुल्टिस बांधने से आराम

मिलता है।इसके अतिरिक्त इसकी छाल एवं पत्तियों का उपयोग पेचिश, प्रवाहिका और मधुमेह के उपचार में होता है।

तुलसी

इसका वैज्ञानिक नाम "ओसिमम सैक्टम" है। यह "लेबिऐटी" कुल का पादप है। यह पौधा भारतवर्ष में प्रायः सभी स्थानों पर मिलता है। इसे हिन्दी में "तुलसी", "काली तुलसी", पंजाबी में "तुलसी", मराठी में "तुलासा", गुजराती में "तालासी", तमिल में "तुलसी", तेलगु में "तुलासी" या "कृष्णा तुलसी", कन्नड़ में "तुलाशी–गिडा", मलयालम में "कृष्णा तुलसी" या "तुंतपु", संस्कृत में "वृंदा", "मंजरी", "परनासा", "पत्रपुष्पा", "सुवास तुलसी" आदि नामों से पुकारा या माना जाता है।

यह पौधा भारत भर में पूजा जाता है और मंदिरों तथा घरों के आंगन में लगाया जाता है। कृषि में इसकी मुख्यतः दो जातियां पाई जाती है :–

1. हरी जाति (श्री तुलसी) तथा

2. कृष्ण तुलसी जिसकी पत्तियां बैंगनी सी होती है।

यह प्रायः हर हिंदू परिवार में पाया जाता है। संस्कृत ग्रंथों में इसे प्रायः सभी प्रकार के कष्टों का निवारण करने वाला पवित्र पौधा कहा गया है। ब्राह्यमण इसे कृष्ण तथा विष्णु के रुप में मानते है। इसकी पत्तियों को चरणामृत या पचामृत (एक प्रकार का द्रव्य प्रसाद जिसमें कच्चा दूध, दही, घी, शहद व शक्कर मिलाकर भगवान को अर्पण किया जाता है) में तथा विभिन्न पूजन –सामग्री में उपयोग किया जाता है। अंतिम संस्कार के समय इसकी टहनियों एवं पत्तियों की आहुति देना पवित्र एवं शुद्ध माना गया है। इसके अतिरिक्त इसको विभिन्न रुपों में महत्ता "वृत कौमुखी", "नयावद" तथा कई अन्य ग्रंथों में भी की गई है।

दैनिक जीवन मे भी तुलसी एक महत्वपूर्ण पौधा है। इसकी पत्तियों को भाप आसवित करने से एक वाष्पशील पीले रंग का तेल मिलता है, जिसमें लौंग की सी सुगन्ध आती है। इसकी सब्जी बनाई जाती है एवं पत्तियां सलाद में एं दूसरे भोजन में मसाने की भांति उपयोग में ली जाती है।

तुलसी एक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी औषधीय पौधा भी है। इससे किलने वाले तेल में जीवाणुनाशक एवं कीटनाशक गुण पाए जाते है। शरीर के बाहर किये गये प्रयोगों में यह "माइकोबैक्टीरियम–टयुबरकुलोसिस" एवं "माइकोकोकस पायोजीन्स" नामक जीवाणुओं की वृद्धि को रोकने में सक्षम पाया गया है। इसकी विकर्णी क्रिया मच्छरों के विरुद्ध दो घण्टे तक सक्रिय रुप से रहती है। इसकी हरी नस्ल से प्राप्त तेल "साल्मेनोला टाइफोसा" नामक जीवाणु के विरुद्ध क्रियाशील पाया गया है। तुलसी की पत्तियों के ईंधन एवं ऐल्काहॉली निष्कर्ष "एशैरेशिया कोलाई" जीवाणुओं के विरुद्ध क्रियाशील पाया गया है। इसकी पत्तियों के रस में स्वेदकारी, कालिक, ज्वरनाशी, उद्धीपक एवं कफोत्सारी गुण होते है। यह जुकाम एवं श्वसनी शोध में उपयोग किया जाता है। इसका उपयोग दाद एवं त्वचा के अन्य रोगों में किया जाता है। इसकी पत्तियों का रस, कान में दर्द में कानों में डालने पर आराम पहुंचता है। यही रस बच्चों के उदर विकारों में क्षुधावर्धक की भांति उपयोग में आता है।

कदम्ब

यह "मिट्रागाइना पार्वीफोलिया" के वैज्ञानिक नाम से जाना जाता है। यह कुल "रुबिएसी" का पौधा है। यह वृक्ष आमतौर पर भारत के कई भागों में तथा बाहरी हिमालय में 1200 मीटर की ऊँचाई तक भी पाया जाता है। इसे हिन्दी में "कैम", "कलमी", या "केदास्सा", बंगाली में "गुलिकदम", गुजराती में "कदम्ब", तेलगु में "निकदम्ब", मराठी में "कलम्ब", कन्नड़ में "कोंगु" या "कडगा", मलयालम में "बीम्ब" या "नीरकदम्बु", उडिया में "गुडीकैमा", "मुण्डी" या "मूर" तथा व्यावसायिक रुप से "कैम" नाम से पुकारा जाता है।

इसे भी हिन्दुओं का एक पवित्र एवं धार्मिक वृक्ष माना जाता है तथा श्रावण माह में इस वृक्ष के नीचे खाना खाने से मन की शुद्धि होती है, ऐसी मान्यता है। कदम्ब का वृक्ष दैनिक जीवन में एवं व्यवसायिक रुप में बहुत उपयोगी है।

इसकी लकड़ी टिकाऊ एवं उपयोगी है। इसकी पत्तियों में 8 प्रतिशत तक प्राटीन हेाता है

तथा इसका चारे के रुप में उपयोग किया जाता है। इसके वृक्ष से गोंद रेजिन एवं मोम प्राप्त होता है। व्यवसायिक रुप से "कैम" के नाम से इसका उत्पादन किया जाता है। कदम्ब का औषधीय उपयोग भी है। इस वृक्ष की छाल एवं जड़े ज्वर तथा उदर –शूल के उपचार में प्रयुक्त होती है।

खेजड़ी

वानस्पतिक भाषा में इसे "प्रोसोपिस सिनेरेरिया" के वैज्ञानिक नाम से जाना जाता है। यह मुख्यतः राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश, गुजरात, मध्यप्रदेश एवं दक्षिणी भारत में पाया जाता है। जहां इसके विभिन्न नाम प्रचलित है। यह एक औसत ऊँचाई वाला बहुउपयोगी वृक्ष है। इसके करीब–करीब हर भाग का उपयोग होता है। विशेष रुप से मरुस्थल में इसे "कल्पतरु" वृक्ष भी कहा जाता है।

धार्मिक उपयोग :- राजस्थान में इसे विशेष रुप से पवित्र एवं पूज्य वृक्ष माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि पाण्डवों ने विराट नगरी में अज्ञातवास जाने के पूर्व इसी वृक्ष पर अपने हथियार रखे थे। इसके अतिरिक्त एक अन्य कीवंदंती के अनुसार एक देवी ने राम को प्रसन्न करने के लिए अपने को इस वृक्ष के रुप में परिवर्तित कर लिया था। इस वृक्ष की पत्तियों को गणपति पूजन में एवं सूखी टहनियों को यज्ञ में एवं अंतिम संस्कार में पवित्र लकड़ी के रुप में प्रयुक्त करते है। राजस्थान में एक विशेष समुदाय (विश्नोई) के सैकड़ो लोग खेजड़ली गांव में इस वृक्ष की रक्षा के लिए शहीद हो गये थे। वृक्षों के लिये आत्मोत्सर्ग करने वाले शहीदों की याद में आज भी इस गांव में हर वर्ष बड़े पैमाने पर मेला लगता है। उनके धर्म में इस वृक्ष को इतना पवित्र माना गया है कि विश्नोई सम्प्रदाय के लोग इसकी रक्षा के लिए आज भी अपने प्राणों तक का त्याग करने को तैयार है।

खेजड़ी का उपयोग मरुप्रदेश में इसके हर भाग से होता है। अतः इसे "कल्पतरु वृक्ष" की संज्ञा दी गई है। इसकी पत्तियां में प्रोटीन प्रचुर मात्रा में होता है तथा इन्हें लूंग कहते है, ये चारे के रुप में प्रयुक्त होती है। इसके फलों को उबालकर, सुखाया जाता है, जिन्हें "सांगरी" कहते हैं, यह एक उपयोगी सब्जी बनाने में काम आती है। इसके कच्चे फल भी खाए जाते है।

औषधीय उपयोग :-ग्रामीण इलाकों में ऐसी मान्यता है कि इसके पुष्पक्रम को पीसकर शक्कर मिलाकर गर्भवती स्त्रियों को देने से गर्भपात नहीं होता है।इसकी छाल एवं नीम की छाल का पाउडर मिलाकर "सिफिलिस" नामक रोग के उपचार में प्रयुक्त किया जाता है।घावों को भरने के लिए कलहम के रुप में इसकी पत्तियों के रस का उपयोग होता है।

...पृष्ठ 100 का शेष

उद्भिजालय में आने वाले किसान कृषि वानिकी प्रजातियों में लगे रोगों के निर्वारण एंव उधमी खाद्य योग्य एंव औषधीय तत्वों से परिपूर्ण फफूँद फलकायों को उगाने के लिये प्रभाग के विशेषेज्ञों से जानकारी प्राप्त करते है। प्रभाग ऐसे इच्छुक लोगों को तकनीकी सहायता एंव उत्पादन के लिए मशरूम बीज (Spawn) भी न्यूनतम शुल्क लेकर उपलब्ध कराता है।

उद्भिजालय न केवल वन रोगों की जानकारी देता है अपितु विभिन्न संस्थान जैसे इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय वन अकादमी, राज्य वन सेवा एंव वानिकी के प्रशिक्षार्थियों, विभिन्न विश्वविद्यालयों के छात्रों एंव शोध कर्मियों का भी इस विषय पर विस्तृत ज्ञानवर्धन करता है। निश्चित रुप से इस विषय पर राष्ट्रीय नही अपितु विश्व में यह एक अनुपम संग्रहालय है। कहा जा सकता है कि वन व्याधि प्रभाग, वन अनुसंधान का उद्भिजालय न केवल वन अनुसंधान संस्थान अपितु सम्पूर्ण दक्षिण पूर्व एशिया में वन व्याधि शोध की एक महत्त्वपूर्ण थाती है।

और्गेनिक कार्बन के रुप में मृदा में कार्बन का संचय

डॉ. एम. के. गुप्ता
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

आज सारा विश्व जलवायु में हो रहे परिवर्तनों से चिन्तित हैं। वैश्विक गर्मी भी लगातार बढ़ रही कार्बन डाई आक्साइड गैस की मात्रा वैश्विक गर्मी का मुख्य कारण माना जा रहा है। औद्योगिक क्रान्ति से पहले कार्बन डाई आक्साइड गैस की मात्रा हमारे वातावरण में 280 भाग प्रति दस लाख (पार्ट पर मिलियन) थी जो आज 365 पी पी एम हो गई है। आई.पी.सी.सी. के एक अनुमान के अनुसार यदि इसे ना रोका गया तो सन् 2100 में यह मात्रा बढ़ कर 540 पी पी एम तक हो सकती है जो बहुत ही हानिकारक होगी। सारा विश्व आज ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा, विशेष कर CO_2 की मात्रा कम करने के उपाय कर रहा है, क्योंटो प्रोटोकोल इस दिशा में किया गया एक बहुत महत्वपूर्ण प्रयास है। 19वीं सदी की तुलना में विश्व का तापमान 0.6° C बढ़ चुका है और आई.पी.सी.सी. के अनुमान के अनुसार ये तापमान वर्ष 2100 तक 1.6° C से 3.5° C बढ़ सकता है। इस बढ़ते तापमान के कारण हमारे गलेशियर पिघल रहे है जिससे समुद्र का स्तर भी बढ़ रहा है। आई.पी.सी.सी. के एक अनुमान के अनुसार वर्ष 2100 तक विश्व के विभिन्न महासागरों का स्तर 9 से 83 से. मी. तक बढ़ सकता है। जिससे तटीय क्षेत्रों में रहने वाली आबादी पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। तापमान के बढ़ने से कुछ पौधों की प्रजातिओं के अस्तित्व के लिए भी खतरा उत्पन्न हो गया है और वे विलुप्त भी हो सकती है।

वातावरण में बढ़ती कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा को रोकने के लिए आवश्यक है कि कार्बन डाई आक्साइड का उत्सर्जन कम किया जाऐ या वातावरण की कार्बन डाई आक्साइड का पृथ्वी पर संचय किया जाये। मृदा इसकी एक बहुत महत्त्वपूर्ण कड़ी है जो वातावरण की कार्बन डाई आक्साइड को अपने अन्दर जमा कर सकती है। विश्व में पेड़ों की अपेक्षा मृदा में 1.5 से 3 गुना अधिक कार्बन जमा है। पौधे प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया के द्वारा वातावरण से कार्बन डाई आक्साइड सोखते है। इसमें आधे से अधिक कार्बन की मात्रा पत्तियों के टूटने, जड़ के बढ़ने आदि क्रियाओं के कारण मृदा में पहुंच जाती है जो सुरक्षित रहती है। इसी कारण मृदा को कार्बन के संचय का केन्द्र माना जाता है। पेडों की अधिकता एंव मृदा में कार्बन की अधिक मात्रा में सीधा सम्बन्ध है। विभिन्न अध्ययनों से ये साबित हो चुका है कि वनों के कटने से 87 प्रतिशत तक मृदा कार्बन का हास होता है। वन क्षेत्रों की मृदा में कार्बन का सबसे अधिक संचय होता है इसके बाद कृषि वानिकी, कृषि एंव खुले क्षेत्रों का नम्बर आता है। कृषि भूमि का आवश्यकता से अधिक उपयोग मृदा में कार्बन के संचय को कम कर रहा है।

मृदा और्गेनिक कार्बन (एस.ओ.सी.) का जलवायु परिवर्तन में विशेष महत्त्व है। एस.ओ.सी. को आई.पी.सी.सी. (जलवायु परिवर्तन का अन्तर सरकारी खण्ड) ने भी महत्त्वपूर्ण मानकर इसे कार्बन के एक पूल के रूप में मान्यता दी है और यह LULUCF के CDM की परियोजना के 5 कार्बन पूलों में से इसे एक माना गया है। पेड़ वातावरण से कार्बन डाईआक्साइड गैस को लेते हैं तथा अपना जैवपुंज बढ़ाते हैं। पेड़ जो पत्तियां, छोटी टहनियां, फूल और फल आदि समय–समय पर जमीन पर गिराते हैं तथा मिट्टी में उपस्थित सूक्ष्म जीवाणु इन्हें विघटित करके कार्बन मिट्टी में मिलाते हैं। ये कार्बन मिट्टी में बहुत अधिक समय तथा संचित रह सकता है। इस प्रकार पेड़ों के माध्यम से वातावरण से कार्बन डाई आक्साइड सोख कर मिट्टी में संचित की जा सकती है। वैज्ञानिकों का भी मानना है ये कार्बन को संचित करने का सबसे सस्ता एंव कारगर उपाय है।

मृदा में और्गेनिक कार्बन का मात्रा को ज्ञात करने का वैज्ञानिक तरीका आई.पी.सी.सी. ने निर्देशित किया है। उससे पूर्व भी वैज्ञानिक अपने प्रयोगो द्वारा भूमि में आरगेनिक कार्बन की मात्रा का अनुमान लगाते रहे हैं। वन अनुसंधान संस्थान के वन मृदा एंव भूमि सुधार प्रभाग ने आई.पी.सी.सी. के

...शेष पृष्ठ 122 पर

वन उत्पादः गोंद

डॉ. ममता पुरोहित
उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

गोंद एक महत्वपूर्ण अकाष्ठ वन उत्पाद है जिसका उपयोग मनुष्य सदियों पूर्व से कर रहा है। प्राचीन समय में खाद्य और दीवारों की सफेदी में काम आने वाली गोंद आज विभिन्न प्रकार के उद्योगों जैसे फार्मास्यूटिकल, कनफेक्शनरी, टेक्सटाइल्स, पेन्ट एवं वार्निश, डाई, रंगाई, स्याही एवं प्रिंटिंग, स्नेहक आदि का आवश्यक घटक है। इन उद्योगों के लिए गोंद का एकत्रीकरण, ग्रामीण एवं आदिवासी समुदाय को रोजगार उपलब्ध कराता है। भारत में मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, उड़ीसा, कर्नाटक, बिहार, गुजरात, राजस्थान आदि राज्यों में गोंद स्त्रावित करने वाली अनेकों प्रजातियाँ पायी जाती है।

गोंद का बनना एवं रिसाव : वृक्षों में सामान्य चयापचयी क्रियाओं के दौरान बनने वाली गोंद तने की छाल में उपस्थित छिद्रों/दरारों से प्राकृतिक रुप से रिसती रहती है। इसका रिसाव जड़ और पत्तियों से भी होता है। तने पर चीरा लगाने या कवक और बैक्टीरिया द्वारा वृक्षों पर आक्रमण करने से भी गोंद रिसने लगती है। पादप उत्तकों मुख्यतया सेल्यूलोज के विघटन से बनती है तथा गोंद बनने की प्रक्रिया को गमोसिस कहते हैं।

गोंद की संरचनाः गोंद कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन, खनिज पदार्थ तथा कभी–कभी नाइट्रोजन एवं टेनिन की सूक्ष्म मात्रा से बने पोलीसेकराइड्स या पोलीसेकराइड्स के व्युतपन्न है।

गोंद के मुख्य गुण : गोंद के निम्नलिखित मुख्य गुण है –

1. गोंद गंधहीन, स्वादहीन, रंगहीन या सफेद, पीली, लाल, कत्थई, काली या भूरे आदि रंगों की होती है परन्तु कुछ वृक्ष प्रजातियों से प्राप्त गोंद मीठी, कसैली या कड़वी होती है।

2. गोंद पानी में घुलकर चिपचिपा एवं चिपकने वाला घोल बनाती है या पानी सोखकर मुलायम एवं फूल जाती है।

3. गोंद ऐल्कोहल एवं अन्य कार्बनिक घोलकों में अघुलनशील होती है।

4. गर्म करने पर यह बिना पिघले पूर्णतः अपघटित हो जाती है या झुलस जाती है।

5. गोंद तरल रूप में रिसती है परन्तु हवा के सम्पर्क में आते ही सूखकर अर्धपारदर्शी रचनाओं (टीअर्स) या परतों में जम जाती है।

गोंद के अन्य गुण : गोंद के निम्नलिखित अन्य गुण है –

1. ताजी गोंद चिकनी होती है जो शीघ्र ही खुरदरी या दरारयुक्त हो जाती है।

2. अच्छी तरह सूखने पर गोंद को टुकड़ों में तोड़ सकते हैं या चूर्ण बना सकते हैं।

3. लंबे समय तक पेड़ों पर चिपकी रहने से इसका रंग गहरा हो जाता है, बारिश के पानी से गोंद के रंग में परिवर्तन शायद कुछ तत्वों के निकल जाने से होता है। जंगल में लगी आग भी गोंद के रंग को गहरा कर देती है।

4. अलग–अलग मौसम में एक ही वृक्ष से प्राप्त गोंद में ध्यान देने योग्य भिन्नता होती है।

गोंद का वर्गीकरण : रंग एवं घुलनशीलता के आधार पर गोंद निम्नलिखित प्रकार की होती है–

(अ) रंग के आधार पर रंग के आधार पर गोंद को चार वर्गों में बांटा गया है :–

1. पारदर्शी सफेद गोंद
2. नारंगी गोंद
3. काली गोंद
4. मिश्रित गोंद

(ब) घुलनशीलता के आधार पर घुलनशीलता के आधार पर गोंद तीन प्रकार की होती है :–

1. घुलनशील गोंद: यह पानी में घुलकर लगभग पारदर्शी, चिपचिपा एवं चिपकने वाला घोल बनाती है। उदा. – बबूल (एकेशिया निलोटिका), केंथा (फेरोनिआ लिमोनिया) आदि से प्राप्त गोंद।

2. अघुलनशील गोंद : इस वर्ग में आने वाली गोंद पानी सोखकर मुलायम हो जाती है तथा जैली सदृश्य, अर्धपारदर्शी, गाढ़ा घोल बनाती है। बहेड़ा (टरमीनेलिया बेलेरिका), कन्दला (बाहुनिया रिट्यूसा) आदि से प्राप्त गोंद।

3. मध्यवर्ती गोंद: इस प्रकार की गोंद के गुण उपरोक्त दोनों प्रकार की गोंद के मध्य के होते हैं। उदा.– धवा (एनोगिसस लेटीफोलिआ), काजू (एनाकारडियम आक्सीडेन्टेल) आदि से प्राप्त गोंद।

गोंद का उपयोग: गुणवत्ता के आधार पर उच्च, मध्यम व निम्न श्रेणी की गोंद के उपयोग निम्नानुसार है :–

उच्च श्रेणी की गोंद :

1. कृत्रिम सिल्क, रेयान और ऊनी कपड़े की साज–सज्जा में।
2. वाटर कलर बनाने में।
3. मदिरा के शुद्धिकरण में।

मध्यम श्रेणी की गोंद :

1. मिष्ठान्न, आइसक्रीम, जैली, आचार, चटनी बनाने में।
2. फार्मास्यूटिकल उद्योग में डीमलसेन्ट और बाइन्डिंग एजेन्ट के रूप में सीरप, लोशन, क्रीम, चूसने की गोली, आइन्टमेन्ट एवं अन्य दवाइयॉ बनाने में।
3. केथेटर और सर्जीकल इन्स्टूरुमेंट के स्नेहक के रुप में ।
4. ग्लिसरीनयुक्त साबुन, बाल घुंघराले करने के पाऊडर और ऑख के सौन्दर्य प्रसाधन बनाने में।
5. टेक्सटाइल फेब्रिक्स की सीजनिंग और फिनिशिंग में।
6. प्रिंटिंग इंक बनाने में ।
7. डाय और रंगाई में।
8. लिथोग्राफी में।

निम्न श्रेणी के गोंद :

1. केलिको प्रिंटिंग में।
2. पेपर सीजिंग में।
3. वार्निश एवं पेंट इन्डस्ट्री में।
4. एडहेसिव के रूप में।
5. लिफाफा, लेबल, पोस्टेज स्टेम्प बनाने में।
6. दीवारों की सफेदी करने में।
7. धूपबत्ती बनाने में ।

गोंद प्रदान करने वाले वानस्पतिक कुल: पादप जगत के बहुत से कुलों जैसे अनाकारडिएसी, काम्बरिटेसी, मीलिएसी, रोसेसी एवं रूटेसी आदि में गोंद स्त्रावित करने वाली प्रजातियाँ पायी जाती हैं परन्तु लेग्युमिनोसी एवं स्टरकूलिएसी गोंद प्रदान करने वाले प्रमुख कुल हैं।

गोंद स्त्रावित करने वाली अन्य प्रजातियाँ: एलबीजिया लिबेक (सिरस), एलबीजिया ओडोरोटिस्सीमा (काला सिरस),एलबीजिया प्रोसेरा (सफेद सिरस), एलबीजिया स्टीप्यूलेटा (सिरन),बाहुनिया परपूरिया (लाल कचनार), बाहुनिया रेसीमोसा (आस्ता), बाहुनिया वेरीगेटा (सफेद कचनार), टेमेरिन्डस इंडिका (इमली), अजेडिरेक्टा इंडिका (नीम), मीलिया एजेडिरेक (बकायन), क्लोरोजायलान स्वीटेनिया (भिर्रा), फेरोनिआ लिमोनिआ (केंथा), इलियोडन्ड्रान ग्लाकम (धबरी), मेन्जीफेरा इंडिका (आम), स्पोनडिअस पिन्नाटा (अम्बरा), बुकनेनिया लंजन (अचार), मिलियूसा टोमेन्टोसा (करई), सेमीकारपस एनाकारडियम (भिलमा), एनाकारडियम आक्सीडेन्टेल (काजू), इगिल मारमिलास (बेल), बाम्वेक्स सीबा (सेमल), सीबा पेनटेन्ड्रा (कपोक), टरमीनेलिआ बेलेरिका (बहेरा), टरमीनेलिआ चिबुला (हर्रा), टरमीनेलिआ टोमेन्टोसा (साजा),लेगस्ट्रोमिआ पारवीफ्लोरा (लेंडिया), वुडफोरडिया फ्रटीकोजा (धवई), केसीन ग्लोका (जमरासी), बोसबेलिया सिररेटा (सलई), एइलेन्थस एक्सेल्सा (महानीम), शोरिया रोबस्टा

(साल), यूकेलिप्टस कमालडूलेनसिस (नीलगिरी), यूकेलिप्टस टेरटिकोरनिस (नीलगिरी) आदि गोंद प्रदान करने वाली अन्य प्रजातियाँ है।

टेपिंग (गोंद का एकत्रीकरण): प्राकृतिक रूप से वृक्ष के तनों पर चिपकी गोंद ग्रामीण एवं आदिवासी मजदूर बिना किसी औजार की मदद के हाथ से आसानी से इकट्ठी कर लेते है। एक मजदूर एक दिन में एक किलो तक गोंद इकट्ठी कर लेता है। गर्मियों में रिसाव अधिक होने से गोंद प्रतिदिन एकत्रित की जाती है जबकि ठंड के मौसम में रिसाव कम हो जाने से प्रायः एकदिन छोड़कर गोंद इकट्ठी की जाती है।

व्यापारिक स्तर पर गोंद एकत्रित करने के लिए तने में विभिन्न स्थानों पर धारदार हथियार से चीरा लगाकर गोंद एकत्रित की जाती है। इस विधि को टेपिंग कहते हैं।

गोंद एकत्रित करने के लिए प्रायः टेपिंग की एक ही विधि सभी वृक्ष प्रजातियों के लिए नहीं अपनाई जा सकती क्योंकि विभिन्न वृक्ष प्रजातियों में अलग–अलग प्रकार की गोंद पायी जाती है एवं गोंद के रिसाव में भी काफी भिन्नता होती है । सामान्यतः गोंद एकत्रित करने वाला व्यक्ति कुल्हाड़ी से वृक्ष के तने पर अनेको चीरा लगा देता है तथा स्त्रावित गोंद को खाली समय में इकट्ठी करता है । इस तरह अनियंत्रित चीरे लगाने से कभी–कभी पूरा वृक्ष ही सूख जाता है। अतः टेपिंग करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए :–

(1) वृक्ष का चयन :

1. प्रायः वृक्ष की गोलाई (तने का घेरा) ब्रेस्ट हाइट पर 90 से.मी. होनी चाहिए।
2. चयनित वृक्षों को चिन्हित कर नम्बर डाल देना चाहिए।
3. मध्य आयुवर्ग के वृक्षों का चुनाव करना चाहिए क्योंकि इन वृक्षों से अधिक गोंद निकलती है।

(2) उचित समय :

चूँकि गर्मियों के दिनों में गोंद का रिवास अधिक होता है, अतः अक्टूबर से जून के दौरान टेपिंग करना चाहिए। बारिश में टेपिंग करने से अधिकांश गोंद पानी में बह जाती है और बची हुई गोंद प्रायः गाढ़े रंग की हो जाती है।

(3) टेपिंग करना :

प्रारम्भ में वृक्ष पर धारदार हथियार से 6 इंच लम्बे, 4 इंच चौड़े तथा 1 या 1.5 इंच गहरे चीरे लगाने चाहिए। अधिक गहरे चीरे लगाने से घाव भरने में बहुत समय लगता है। चीरा मिट्टी की सतह से 4 इंच ऊपर लगाना चाहिए तथा एक चीरे से 20 इंच की दूरी पर दूसरा चीरा लगाना चाहिए। दो चीरों के मध्य लगभग एकसमान दूरी होना चाहिए। चीरा क्षैतिज होना चाहिए। चीरे की सतह चिकनी तथा रेशा रहित होना चाहिए जिससे गोंद में छाल न मिल सके। चीरा लगाने पर गोंद रिसने लगती है जिसे एक सप्ताह के अंतराल पर इकट्ठा करना चाहिए। वृक्ष में गोंद की नलियों में गोंद का जमाव न हो तथा पर्याप्त गोंद मिल सके इसके लिए गोंद इकट्ठा करते समय, समय–समय पर चीरों के ऊपरी हिस्से व अगल–बगल की सतह को छील देना चाहिए तथा विशेषरूप से यह ध्यान रखना चाहिये कि टेपिंग सीजन के अंत में चीरे की लम्बाई 19 इंच, चौड़ाई 25 इंच और गहराई 1.5 इंच से अधिक न हो पाये।

(4) आने वाले वर्षों में चीरा लगाना :

एक ही वृक्ष में लगातार टेपिंग करने के लिए तने को 3 भागों में विभक्त कर प्रत्येक वर्ष एक भाग में चीरा लगाना चाहिए। अगले वर्ष पहले भाग से 2 इंच स्थान छोड़कर चीरा लगाना चाहिए। नये तथा पुराने चीरे एक ही लम्बवत् रेखा में नहीं होना चाहिए। चौथे वर्ष चीरे, प्रथम वर्ष वाले भाग में लगाये जायेंगे परन्तु नये चीरे पुराने दो चीरों के बीच लगाये जायेंगे। सातवें वर्ष प्रथम वर्ष के चीरे पर ही चीरा लगा सकते हैं क्योंकि 6 वर्षों में घाव पूरी तरह भरकर सामान्य रुप से कार्य करने लगता है।

आवश्यक सावधानियाँ : वृक्षों को हानि न पहुँचे एवं कम समय में अधिक गोंद इकट्ठी हो इसके लिए आवश्यक है कि –

1. तने पर अनियंत्रित एवं सघन चीरा नहीं लगाना चाहिए।
2. सूखने के पूर्व वृक्षों से गोंद इकट्ठी नहीं करना चाहिए।

गोंद की साफ–सफाई एवं श्रेणी निर्धारण:

बिक्री पूर्व एकत्रित गोंद को धूप में सुखाकर छाल, रेत, मिट्टी आदि अशुद्धियों को दूर कर गोंद के बड़े–बड़े ढेलों या टुकड़ों को लकड़ी की मुंगरी से छोटे–छोटे टुकड़ों में तोड़ लेते हैं। तत्पश्चात् पारदर्शिता, रंग एवं टुकड़ों की माप के आधार पर गोंद की ग्रेडिंग या श्रेणी निर्धारण करते हैं। पारदर्शी या सफेद/पीले रंग के चूर्ण रहित और लगभग एक ही आकार के टुकड़ों वाली गोंद सर्वोत्तम मानी जाती है जैसे कुल्लू और करधई से प्राप्त होने वाली गोंद वृक्ष की प्रजाति और उद्योग विशेष में उपयोग के आधार पर भी गोंद की श्रेणी निर्धारित की जाती है।

भंडारण :

अच्छी तरह सुखायी एवं साफ की गई गोंद को सूखे, साफ–स्वच्छ एवं नमीरोधी पात्रों जैसे– प्लास्टिक के डिब्बे, पोलीथीन की थैलियों या गेल्वेनाइज्ड शीट की टंकियों में भरकर साफ–सुथरे तथा चूहा एवं सीलन रहित गोदामों में रखना चाहिए।

गोंद का व्यापारिक मूल्यांकन :

रंग, चिपचिपापन तथा पानी में घुलनशीलता के आधार पर गोंद का व्यापारिक मूल्य निर्धारित किया जाता है जैसे पारदर्शी गोंद की कीमत नारंगी, काली या मिश्रित गोंद से अधिक होती है । उद्योग विशेष में उपयोग के आधार पर भी गोंद की कीमत निर्भर करती है जैसे– कनफेक्शनरी तथा फार्मास्यूटिकल उद्योग में उपयोग की जाने वाली गोंद की गुणवत्ता और स्वाद पर विशेष ध्यान देने से गोंद का अधिक मूल्य प्राप्त होता है।

विपणन:

ग्रामीण एवं आदिवासी मजदूरों द्वारा एकत्रित गोंद, छाल, मिट्टी रेत आदि मिली होने के कारण अशुद्ध होती है जो आस–पास के हाट–बाजारों में स्थानीय व्यापारियों द्वारा बहुत ही कम दाम में खरीद कर साफ–सफाई और ग्रेडिंग के पश्चात् बड़े व्यापारी को अधिक कीमत में बेच दी जाती है। अतः गरीब मजदूरों को अधिक लाभ दिलाने के लिए शासन को चाहिए :

1. मजदूरों को टेपिंग का प्रशिक्षण दिया जाए।
2. ग्रेडिंग की जानकारी दी जाए।
3. गोंद खरीदने के लिए सरकारी क्रय–केन्द्र बनाये जायें।

गोंद

गोंद की दिन–प्रति–दिन बढ़ती मांग और कीमत के कारण हुई अनियंत्रित सघन टेपिंग से गोंद का उत्पादन तो बढ़ गया पर वृक्षों के सूखने से जंगल घटने लगे। लगातार कम होते वनों के कारण ही राज्य शासन को गोंद की टेपिंग पर रोक लगाने के लिए बाध्य होना पड़ा। अतः शासन की मदद के लिए गोंद एकत्रित करने वाले मजदूरों और उद्योग मालिको का यह नैतिक कर्तव्य होना चाहिए कि वे केवल गोंद के एकत्रीकरण और क्रय–विक्रय पर ही ध्यान न दें बल्कि वृक्षों की सुरक्षा और संरक्षण का प्रयास भी करें।

वन : भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्ब

कुमारी ऋचा त्रिपाठी
ऊष्ण कटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

भारतीय संस्कृति वृक्ष पूजक संस्कृति है। हमारे देश में वृक्षों में देवत्व की अवधारणा और उसकी पूजा की परम्परा प्राचीन काल से रही है। जहां तक वृक्षों के महत्व का प्रश्न है, भारतीय प्राचीन ग्रंथ इनकी महिमा से भरे पड़े हैं। वृक्षों के प्रति ऐसा प्रेम शायद ही अन्य किसी देश की संस्कृति में हो जहां वृक्ष को मनुष्य से भी ऊँचा स्थान दिया जाता है। हमारी वैदिक संस्कृति में पौधारोपण एवं वृक्ष संरक्षण की सुदीर्घ परम्परा रही है। पौधारोपण कब, कहां और कैसे किया जाये ? इसके लाभ और वृक्ष काटे जाने से होने वाली हानि का विस्तारपूर्वक वर्णन हमारे सभी धर्मों के ग्रंथों में मिलता है। हमारे प्राचीन साहित्य से सभी ग्रंथों में वन सुरक्षा और वन संवर्धन पर जोर दिया गया है। भारतीय संस्कृति में वृक्षों को भी देवता माना गया है। हमारे प्राचीन ग्रंथकारों की धारणा थी कि संसार में ऐसी कोई वनस्पति नहीं हैं जो अभैशज्य हो, इसलिये प्रत्येक वृक्ष वन्दनीय है। पेड़ पौधों के प्रति ऐसे अप्रतिम अनुराग की दूसरे देश में कल्पना भी नहीं की जा सकती है, जो सभी हमारे सामाजिक जीवन के दैनिक क्रियाकलापों का हिस्सा था। प्रात; काल तुलसी माता का पूजन हो अथवा पीपल के वृक्ष का पूजन, आवला नवमी हो या वट सावित्री, वृक्ष पूजन के बिना कोई भी शुभ कार्य अधूरा है।

भारतीय संस्कृति परोपकार एवं परमार्थ की संस्कृति है जिसका उल्लेख हमारे धर्म ग्रंथों को लक्ष्य कर किया गया है।

छायामान्यस्म कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वं ममताये।
फलान्यासी परार्थाय वृक्षा: सत्पुरुशैव।।
विक्रम चरितं ६५

– वृक्ष तो सज्जनों के सामान परोपकारी होते हैं, ये स्वयं धूप में रहते हुए भी दूसरों को छाया देते है। इनके फलों का उपभोग भी दूसरों के द्वारा ही किया जाता है।

इन्धनार्थ यदानीतं अग्निहोमं तदुच्येत। छाया विश्राम पथिकै मिर्यत्वगादि।। पत्रमूल च निलयेन पक्षिणां: कुर्वन्ति। उष देहिनाम् तु औषर्ध वृक्षस्य पंचयज्ञपुराण।।
वराह उच्यते स:, १३२४ ८४१ –

– वृक्षों के पांच महा उपकार उनके महा यज्ञ के स मान है। वे गृहस्थों को ईंधन, पथिकों को छाया एवं विश्रामस्थल, पंक्षियों को नीड़ एवं अपनी छाल पत्तियों और जड़ों से मानवों को औषधि प्रदान कर उन पर उपकार करते है। इसी तरह का वर्णन श्रीमद् भागवत में भी मिलता है।

पश्यैतान् महाभागान् परार्थैकान्तजीवितान्।
वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति न ।।
श्रीमद् भागवत:

– ये वृक्ष कितने भाग्यवान् हैं जो दूसरों के लिए जीते हैं। ये स्वयं तो हवा के झोंके, वर्षा, धूप और पाला सब कुछ सहते हैं, फिर भी ये हम लोगों की उनसे रक्षा करते हैं।

धन्ते भरं कुसुम पत्र फलवनीनां, धर्मव्यथां वहति शीत भवांरुजं वायो देहम् पर्यति वान्य सुखस्य हेतो; तस्मै वदान्यम गुरवे तरवे नमस्ते ।। भामिनी विलास २६

– हे तरुवर!, फूलों आप पत्तों और फलों का भार वहन करते हैं, लोगों की धूप की पीड़ा हरते हैं और उनके ठंड के कष्ट मिटाते हैं। इस तरह दूसरों के सुख के लिए आप अपना तन समर्पित कर देते हैं। इन्हीं गुणों से आप उदार पुरुषों के गुरु हैं। आपको मेरा शत्–शत् नमन। हमारे धर्म ग्रन्थों में ना केवल वृक्षों के महत्त्व को वर्णित किया गया है वरन भविष्य में उनके संरक्षण एवं वृक्षारोपण पर भी बल दिया गया है।

अतीतानागतान् सर्वान् पितृवंशांस्तु तारयेत्। कान्तारे वृक्षरोपी यस्तस्माद् वृक्षांस्तु रोपयेत्।। शिवपुराण

– जो वीरान एवं दुर्गम स्थानों पर वृक्ष लगाते हैं, वे अपनी बीती व आने वाली सम्पूर्ण पीढ़ियों को तार देते हैं। हमारे धार्मिक साहित्य में ऐसे अनेक ग्रन्थ भरे पड़े है जिनमे प्रत्येक वृक्ष के औषधीय गुण, पर्यावरणीय महत्त्व के साथ साथ उनके धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्व का भी उल्लेख है।

हमारे पूर्वजों ने न केवल वृक्षों वरन जलचर, नभचर और धरती पर निवास करने वाले जीव जंतुओं जैसे– गाय, वृषभ, श्वान, मूषक, सिंह, कछुआ, उल्लू, मगर, इत्यादि को धार्मिक महत्त्व से जोड़कर उन्हें भी संरक्षित कर दिया। वर्तमान में बाघ विलुप्त प्राय प्रजाति है आधुनिक युग में इसके संरक्षण हेतु कानूनी

पहल का उल्लेख है किन्तु आज से हजारों वर्ष पूर्व महाभारत काल में बाघों का वर्णन किया गया है जो कि एक सुखद आश्चर्य का विषय है।

न स्याद् वनमृते व्याघ्रान् व्याघ्रा न स्युर्ऋते वनम्।
वनं हि रक्षते व्याघ्रैर्व्याघ्रान् काननम् ।।४६।।

(महाभारत, उद्योगपर्व के अंतर्गत प्रजागरपर्व)

– बाघों के बिना वन का अस्तित्व संभव नहीं, और न ही बिना वन के बाघ रह सकते हैं। वन की रक्षा तो बाघ करते हैं और बदले में वन उनकी रक्षा करते हैं।

इस तरह की अनेक सूक्तियां एवं श्लोक हमारे धार्मिक ग्रन्थों में उल्लेखित है जो वनों में निहित मानव अस्तित्व की कहानी कहते है।

इसी तरह रामायण में भगवान राम के वन वास में कई ऐसे प्रसंग आते है जहां मानव और प्रकृति का अन्योन्य सम्बन्ध प्रकट होता है। इस महाकाव्य में अनेक स्थानों पर न केवल वृक्ष, वन्य जीव वरन् वनवासियों के प्रति युग पुरुष भगवान राम ने असीम प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत किया है। भारतीय संस्कृति प्राचीन काल से ही संरक्षण की संस्कृति रही है जहाँ प्रकृति के महत्व को समझ कर उन्हें धार्मिक आस्थाओं से जोड़कर संरक्षित कर दिया गया।

जब बात वन अथवा वन संरक्षण की हो तो सिर्फ वृक्ष, वन्य एवं वनौषधी संरक्षण नहीं अपितु वन में बसने वाली आदिम आबादी के संरक्षण पर भी विचार किया जाना आवश्यक है। वन में निवास करने वाली ये जन–जातियां भी वन संपदा जितने अनमोल और महत्वपूर्ण है। बढ़ते शहरीकरण ने ना केवल वन संपदा बल्कि वहां निवास करने वाले आदिवासियों पर भी नकारात्मक प्रभाव डाला है। वे वन वासी जिनका जीवन पूर्णतया वनोपज पर आधारित था, गलत कार्य–योजनाओं एवं कानून के चलते उपेक्षित जीवन बिताने पर विवश है। हजारों साल से ये वन इनके जीवन यापन का मुख्य स्त्रोत रहे है। वनों से प्राप्त जड़ी बूटी एवं अन्य सामग्री इनकी जीविकोपार्जन का मुख्य स्त्रोत है। आदिम जातियां और वनों के मध्य एक सहजीवी सम्बन्ध था, जहाँ वन इनकी आय का मुख्य स्त्रोत थे वहीं इनके द्वारा वन संरक्षण होता था किन्तु वर्तमान में अनेकानेक समस्यायें आदिवासियों के सामने चुनौती के रुप में खड़ी हैं, जिसका हल ढूंढना आवश्यक है। वन अधिकार मान्यता कानून 2006 बहुत सारे आंदोलनों, धरना के बाद अस्तित्व में आया है। 1980 के वन संरक्षण अधिनियम के बाद की स्थिति को बदलने के लिए 25 वर्षों तक आंदोलन करना पड़ा और जो उपलब्ध हुआ उससे सबको आनंद हुआ क्योंकि यह एक बहुत बड़ा ऐतिहासिक अन्याय था जिसे आदिवासियों के हितों में सुधारना बहुत जरुरी था किन्तु यह समस्या का पूर्ण समाधान नहीं वर्तमान में ऐसी विकास योजनाओं की सख्त आवश्यकता है जो वन संरक्षण के अभियान में वहां निवास करने वाले वन वासियों की सहभागिता सुनिश्चित करें। वन वासियों का अनुभव एवं हमारी नवीन प्रयोगात्मक तकनीक ना केवन वन संरक्षण बल्कि वन संपदा के सतत दोहन में सहायक होगी।

वर्तमान समय में तेजी से हो रहा वनों का ह्रास हमारे लिए सबसे कठिन चुनौती है जिसके फलस्वरुप जल स्त्रोतों का ह्रास, विलुप्त होती वन्य प्रजातियां, पर्यावरण असंतुलन जैसी नित नई समस्याएं विकराल स्वरुप लेती जा रही है। इनके साथ ही साथ वनों से आदिवासियों का विस्थापन एवं अस्पष्ट नीतियों की वजह से उनका पलायन विचारणीय है। वर्तमान की चुनौतियों का सामना करने के लिए हमे, पुन; अपनी जड़ों की ओर लौटने की आवश्यकता है। हमारे धर्म शास्त्रों में आज से हजारों वर्ष पूर्व ही पर्यावरण से सम्बंधित इस समस्या की भयावहता और उसके समाधान को बताया गया है। इस परिवेश में सर्वाधिक आवश्यकता है कि अपने उत्तरदायित्व को समझ कर भली भाँति उसका निर्वाह किया जाए। वन प्रबंधन एवं वनोंमुख शिक्षा द्वारा वन संपदा का संरक्षण एवं मितव्ययता पूर्ण दोहन सम्भव है। वन वासियों को मुआवजां या उनके विस्थापन के स्थान पर हमे उन्हें प्रशिक्षित कर उनकी योग्यताओं और वनोंषधियों का उपयोग करना चाहिए। जिस तरह जड़ों से दूर होकर किसी पादप का विकास सम्भव नहीं उसी तरह जंगलों में बसे ये वन वासी, जिनका अस्तित्व वनों से है, जहां ये उन्मुक्तता से जीवन यापन करते है, इन्हें जड़ों से दूर करने पर ना तो हम अपनी वन संपदा को संरक्षित कर पायेंगे और ना ही विस्थापितों को। बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की पोषक भारतीय संस्कृति और हमारे वैदिक धर्म में वर्णित परस्पर सहजीवी सम्बन्ध वन, वन्य जीवन एवं वन वासियों के संरक्षण का एक मात्र उपाय है क्योंकि वन है तो जीवन है और जीवन है तो हम है।

आविष्कारों की कृतियों में, यदि मानव का प्यार नहीं है।
हृदय हीन विज्ञान व्यर्थ है यदि प्राणी उपकार नहीं है।
जटिल समस्या सुलझाने को, नूतन अनुसन्धान ना भूले।

वसुधा का कल्याण ना भूले।
वसुधा कल्याण ना भूले।

पर्यावरण और विकास दोनों जरूरी है

डॉ. देवेन्द्र कुमार
भारतीय वानिकी अनुसंधान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

हमारा पृथ्वी तथा उसके वायु मंडल से गहरा संबंध है। हम यहां पृथ्वी पर अपना निवास बनाते है। अनाज पैदा करने से लेकर जंगल से वनस्पति व खनिज का उपयोग करने तथा तमाम कार्यकलापों से हम अपना जीवन–यापन करते हैं। पृथ्वी तथा वायुमण्डल से मिलकर बना वातावरण जिसे हम दूसरे शब्दों में पर्यावरण कहते हैं, पृथ्वी भौतिक वातावरण व उसके घटकों से मिलकर बनता हैं। प्रकृति के सभी घटक एक निश्चित मात्रा में अपने कार्य करके प्रकृति को स्वच्छ रखते हैं। इस प्रकार प्रकृति में स्वयं को स्वच्छ रखने की क्षमता विद्यमान होती है। भौतिक वातावरण व उसमें रहने वाले सभी जीव मिलकर पारिस्थितिकी तंत्र का निर्माण करते हैं। लेकिन जब मानवीय हस्तक्षेप प्रकृति के इस संतुलित तंत्र में विक्षोभ उत्पन्न करता हैं तो इसके घातक प्रभाव पेड़–पौधों, पशु–पक्षियों व मनुष्यों पर पड़ते हैं। किंतु इस संतुलन को बिगाड़ने में मनुष्य की भूमिका अहम व महत्वपूर्ण होती है क्योंकि उसी के स्वार्थ ने उसकी विवेकीय शक्तियों पर विजय पाकर उसे तात्कालिक लाभ व सुख–सुविधाओं के लिए प्रेरित किया है लेकिन भावी भविष्य को अंधकार में धकेल दिया है।

जहां तक भारतीय समाज की पर्यावरण के प्रति सनातन समझ का प्रश्न है तो वृक्ष–पूजा हमारी सांस्कृतिक परम्परा रही है। वैदिक काल से ही हिन्दू धर्म में पर्यावरण को विशेष महत्व दिया गया है। हिन्दू धर्म के शास्त्रों मे जिनमें स्मृतियों, वेद, पुराण, उपनिषदों के अलावा महाभारत व गीता आदि में प्रकृति व पर्यावरण के मुख्य घटकों जिनमें वृक्ष व पशु–पक्षी मुख्य है, की स्तुति की गयी है। पशु–पक्षी में शेर, हाथी, बैल, चूहां, बाज, बंदर, मोर, उल्लू, मगरमच्छ, कुत्ता, भालू आदि ऐसे जीव हैं जो क्रमशः मॉ दुर्गा, इन्द्र भगवान, शिव, गणेश, विष्णु, प्रभु राम, कार्तिकेय, लक्ष्मी, गंगा, शीतला, भैरव व वायु देव–देवताओं से सम्बद्ध होने के कारण पूजनीय हैं।

इस तरह वृक्षों के प्रति भारतीय समाज का अनुराग सांस्कृतिक परम्परा के रूप में विकसित हुआ। यह बात दीगर है कि हम जैसे–जैसे विज्ञान के युग में प्रवेश करते गये, वृक्षों के प्रति हमारी सांस्कृतिक श्रद्धा समाप्त होती गयी या इसके पीछे छिपी वैज्ञानिक सोच की जगह मात्र जड़ता का भाव रह गया।

पर्यावरण विनाश की शुरूआत भारत में अंग्रेजी राज के दौरान ही हुई। ब्रिटेन के कल–कारखानों के उत्पादन के लिए कच्चे माल के लिए भारतीय वन अंग्रेजों के लिए बहुत लाभदायक साबित हुए। उन्होंने पहाड़ो को नंगा करना शुरू किया, साथ ही पहाड़ो पर काटे जाने वाले वृक्षों को नदी जल–मार्ग के जरिये मैदानों इलाकों में पहुंचाने की शुरूआत की। वनों के निर्मम दोहन की यह शुरूआत अंग्रेजों के जाने के बाद थमी नहीं, बल्कि स्वदेशी सरकार ने इसे और व्यापक बनाया। महाजनी सभ्यता के पोषण के लिए विकास का जो ताना–बाना बुना गया, उस फैलाव ने इस देश के वनों को निगलना शुरू कर दिया। आज अनेक नदी घाटी परियोजनाएं देश में आम आदमी को बेरोजगार और बेघर कर रहीं हैं। बड़े–बड़े बांध बनाने के लिए कृषि भूमि तथा वनों का बड़े पैमाने पर किया जा रहा विनाश अब तथ्यों के रूप में आम जनता के सामने आ रहा है।

तापमान को ही लें। दिनों दिन बढ़ता तापमान पृथ्वी पर कहर बरपा सकता है। पृथ्वी पर बाढ़ ही बाढ़ हो सकती है। यह बाढ़ वर्षा के पानी से नहीं, बल्कि पृथ्वी के ध्रुवों पर अनंतकाल से जमा हिमखंडों के पिघलने से आएगी। एक अध्ययन के अनुसार, सन् 1850 से अब तक तापमान में लगभग एक डिग्री सेल्सियस की बढ़ोतरी हो चुकी है। एक अनुमान के अनुसार, ओजोन में कमी व कार्बन डाईआक्साइड में वृद्धि से सन् 2030 तक तापमान दो डिग्री सेल्सियस से अधिक बढ़ जाएगा। इससे जहां

समुद्रों व वातावरण में विद्यमान नमी से जल का वाष्पन होने लगेगा, वहीं दूसरी तरफ ग्लेशियरों के पिघलने से समुद्र के पानी में बढ़ोतरी होने लगेगी। समुद्र के स्तर में मात्र दो मीटर की बढ़ोतरी मालदीव को जल–समाधि दे देगा। पृथ्वी को उजड़ने के कगार पर पहुंचाने में जो कारक उत्तरदायी हैं, उन पर हम कभी नहीं सोचते। आज वर्तमान में देश में पड़ रही भीषण गर्मी इस बात का पर्याप्त संकेत दे रही है, कि यदि हमने अपने पर्यावरण की रक्षा के लिए गंभीर कोशिशें नहीं कीं तो आने वाले दिन भयावह होंगे।

यहां यह कहना सर्वाधिक उचित है कि पर्यावरण के विनाश के लिए मुख्य रूप से विकसित देश अधिक जिम्मेदार हैं, क्योंकि औद्योगिक विकास उनके यहां सबसे ज्यादा हुआ है और इसलिए कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन सबसे ज्यादा वे ही करते हैं। साथ ही ग्रीन हाउसों का अस्तित्व भी उन्हीं के यहां है। मोटे तौर पर कार्बन डाइआक्साइड का अस्सी प्रतिशत से ज्यादा उत्सर्जन विकसित देशों में ही होता है। आमतौर पर समझा जाता हैं, कि राष्ट्र जितना गरीब होगा, उतना ही पर्यावरण की ओर से उदासीन होगा। इसका मुख्य कारण है कि लोग सबसे पहले उन मुद्दों पर सोचते हैं जो जीवन के लिए अनिवार्य है। जो भी संसाधन उपलब्ध हों, उनका प्रयोग इनको प्राप्त करने के लिए किया जाता है। ये संसाधन चाहे वन हों, वन्य प्राणी हों या खनिज पदार्थ, इन सबका उपयोग किया जाता है।

यह ठीक भी है, औद्योगिकीकरण एक ऐसी आवश्यकता है जिसके बिना कोई भी राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। औद्योगिकीकरण के लिए काफी मात्रा में धन तथा दूसरे संसाधन भी तो चाहिए। इधर–उधर से संसाधन जुटाकर यहां तक कि विदेशी कर्ज भी लेकर जब गरीब राष्ट्र औद्योगिकरण की ओर बढ़ते हैं, तो उस समय उनका ध्येय होता है अधिक से अधिक उद्योग और धन। परंतु इन सारे मुद्दों पर विचार करते समय इस तथ्य को हमें नहीं भूलना चाहिए कि इस पृथ्वी पर कई ऐसी पर्यावरणीय समस्याएं है जिनके लिए अमीर राष्ट्रों को ही दोषी ठहराया जा सकता है। उदाहरण के लिए ओजोन परत में छिद्र, ग्रीन हाउस प्रभाव तथा महासागरों का प्रदूषण इत्यादि। यह सब समस्याएं अमीर राष्ट्रों के कारण ही हैं। उन्नत राष्ट्र अपने देश में उत्पन्न हानिकारक पदार्थ तथा तकनीक पिछड़े राष्ट्रों को निर्यात करने की फिक्र में लगे रहतें हैं और पर्यावरण संरक्षण संबंधी तकनीक उपलब्ध कराने के लिए बहुत अधिक कीमत लेते हैं। इस प्रकार इस तेजी से बदलती दुनिया के सामने आज जो कुछ महत्वपूर्ण चुनौतियां हैं उसमें पर्यावरणी संकट सबसे महत्तवपूर्ण हैं।

इस समस्या ने मानवीय अस्तित्व को संकट में डाल दिया हैं मौजूदा विकास की गति और स्वरूप ने पर्यावरणीय संसाधनों के ऊपर भारी दबाव डाला है, पर्यावरणीय संकट और अनिश्चितताओं के मद्देनजर दुनिया भर में जिस प्रकार के प्रयास किए जा रहे है उसमे ईमानदारी और समस्या के जड़ में जाने का घोर अभाव दिखता है, दुनिया के तमाम देशों में अपने हितों से ऊपर उठकर नष्ट होते पर्यावरण के प्रति गंभीर चिंता कही दिखाई नहीं पड़ती है, कोपेनहेगन की विफलता तथा विकसित देशों का कार्बन उत्सर्जन के प्रति अड़ियल रवैया इसका सबूत है।

मांग और आपूर्ति के बाजारवादी सिद्धांत ने अंधाधुंध उत्पादन को प्रोत्साहित किया है। उर्जा संबंधी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का दोहन जारी है। वर्तमान में संम्पूर्ण उधोग धंधों का विस्तार प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित ईंधनों पर टिका है। विकास के इस मॉडल के कारण दुनिया के सामने ग्लोबल वार्मिंग की समस्या खडी हो गई। पृथ्वी इतनी गर्म हो गई है जितनी पहले कभी नहीं थी। ग्लेशियर और ध्रुवों पर मौजूद बर्फ पिघल रही है। नई औधोगिक परियोजनाओं के लिए जंगलों को काटा जा रहा है। औद्योगीकरण की वर्तमान प्रकिया के पूर्व भी कृषि योग्य भूमि का क्षेत्रफल बढ़ाने के लिए सदियों से वनों को काटा जाता रहा है लेकिन अब यह कटान खतरनाक स्तर पर पहुंच गया है। इससे साबित होता है कि इंसान की प्रकृति पर किसी भी तरह से निर्भरता उसे नकारात्मक रूप में प्रभावित करने वाली है। पृथ्वी पर मौजूद संसाधन सीमित हैं। ऐसे में बढ़ती जनसंख्या और उसके साथ जुडी उपभोक्ता दर भी एक बड़ी समस्या है। पृथ्वी एक ऐसा पात्र है जिसमें से हम निकाल तो सकते हैं लेकिन उसमें कुछ डाल नहीं सकते है। विकसित देशों और विकासशील देशों के बीच हो रही बहस ने जनसंख्या और उपभोक्ता दर के बीच विरोधाभास को उजागर किया

है। विकसित देश बड़ी जनसंख्या का हवाला देते हुए विकासशील देशों को पर्यावरण के प्रति पहली जिम्मेवारी लेने की बात कर रहे हैं वहीं विकासशील देश अधिक उपभोक्ता दर का हवाला देते हुए विकसित देशों से ज्यादा जिम्मेदारी उठाने की बात कर रहे हैं। सच्चाई तो यह है कि यदि दुनिया के लिए एक जैसी उपभोक्ता दर की कल्पना की जाती है तो यह पृथ्वी पर अत्याधिक दबाव डालने वाला होगा। दुनिया विकास की गति से पीछे नहीं हट सकती है। पर्यावरणीय संकट की समस्या को सभी छोटे–बड़े देशों को समय रहते गंभीरता से लेना होगा और सुरक्षित पर्यावरण के मसले को विनाशकारी चुनौती के रूप में ईमानदारी से स्वीकारना होगा।

कई स्थितियों में हम कानून के अभाव से ग्रस्त हैं। अन्य स्थितियों में हम कानून के बहुतायत से अभिभूत हैं। महत्वाकांशी परियोजना गंगा एक्सप्रेस–वे पर इलाहाबाद उच्च न्यायालय की रोक उत्तर प्रदेश सरकार के लिए तो एक बड़ा झटका था ही इस योजना के जरिये विकास के एक नए आयाम की उम्मीद लगाने वालों का निराश होना भी स्वाभाविक है। इससे इंकार नहीं किया जा सकता कि नोएडा से लेकर बलिया तक गंगा एक्सप्रेस–वे का निर्माण करने के संदर्भ में राज्य सरकार ने निर्धारित प्रक्रिया का पालन करने में कोई चूक की हो जैसा कि इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने पाया लेकिन यह ठीक नहीं कि हमारे देश में विकास संबंधी करीब–करीब हर बड़ी परियोजना पर्यावरण हितैषियों के निशाने पर आने और किस्म–किस्म की अड़ंगेबाजी का शिकार होने के कारण अभिशप्त है। शायद ही कोई बड़ी परियोजना हो जिसका रास्ता न्यायपालिका से होकर न गुजरता हो। यदि कोई परियोजना न्यायपालिका की समीक्षा के दायरे में जाने और पर्यावरण प्रेमियों के निशाने पर आने से बच जाती है तो उसमें विरोधी राजनीतिक दलों को कई तरह के खोट नजर आने लगते है। यदि कहीं बड़े पैमाने पर भूमि का अधिग्रहण प्रस्तावित होता है तो फिर कोई न कोई राजनीतिक दल उसमें अड़ंगा अवश्य लगाता है। इससे बुरा और कुछ नहीं हो सकता कि विकास के मामलें राजनीतिक दलों की संकीर्ण राजनीति का हिस्सा बन जाएं लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा ही होता है। भले ही राजनीतिक दल यह कहते रहते हों कि विकास के मामले में राजनीति नहीं की जानी चाहए लेकिन हमारे राजनीतिक दलों का किसी परियोजना विशेष पर दृष्टिकोण इससे निर्धारित होता है कि वे सत्तापक्ष में हैं अथवा विपक्ष में। कोई नहीं जानता कि राजनीतिक दल आर्थिक मामलों में नारेबाजी की राजनीति करना कब बंद करेंगें लेकिन कम से कम पर्यावरणवादियों को तो राजनेताओं की तरह आचरण नही करना चाहिए। क्या यह विचित्र नहीं कि हमारे देश में पर्यावरण की रक्षा को लेकर जैसी सामाजिक–राजनीतिक चेतना होनी चाहिए उसका अभाव ही नजर आता है। क्या कारण है कि एक बड़ी संख्या में पर्यावरण संगठन तभी सक्रियता दिखाते हैं जब किसी परियोजना की घोषणा कर दी जाती है। निश्चित रूप से पर्यावरण की रक्षा होनी चाहिए और विकास कार्यो को गति देने के नाम पर पर्यावरण को क्षति नहीं पहुंचाई जानी चाहिए लेकिन यह भी ठीक नहीं कि हर मामले में पर्यावरण का खतरा उभार दिया जाए। यदि किसी परियोजना से पर्यावरण के लिए कोई खतरा उभरता दिख रहा हो तो कोशिश बीच का रास्ता तलाशने की होनी चाहिए न कि विकास कार्य को ठंडे बस्ते में डाल देने की। यह समय ही बताएगा कि गंगा एक्सप्रेस–वे के निर्माण की बाधाएं कब और कैसे दूर होती हैं। यह समय की मांग है कि विकास के संदर्भ में ऐसी नीतियों बनाई जाएं जिसमें पर्यावरण की रक्षा भी हो और विभिन्न परियोजनाओं को गति भी मिले।

राज्य की आर्थिक प्रगति और विकास के विश्लेषण में यदि इन मामलों को भी शामिल कर लिया जाए तो राज्य के वास्तविक विकास को बेहतर समझा जा सकता है। पर्यावरण स्थिरता सूचकांक तय करना इस दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास है। यह एक लंबी बहस है कि उद्योगों से पर्यावरण पर क्या असर पड़ता है अभी तक इस पर कोई समग्र और आधिकारिक अध्ययन उपलब्ध नहीं था, क्योंकि इसके लिए आवश्यक कोई दीर्धकालीन आंकड़े ही उपलब्ध नहीं थे। हालांकि अब इस क्षेत्र में कुछ प्रगति हुई है कुछ नए और उपयोगी अध्ययन सामने आए हैं। इन अध्ययनों से किसी अंतिम निष्कर्ष पर चाहे न पहुंचा जा सके, पर ये एक निश्चित दिशा की ओर इंगित अवश्य करते है। चेन्नई में स्थित इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनांशियल मैनेजमेंट एंड रिसर्च का ताजा अध्ययन 'एन्वायरन्मेंटल सस्टेनेबिलिटी इंडेक्स फार

इंडियन स्टेट्स' (भारतीय राज्यों का पर्यावरण स्थिरता सूचकांक) 28 राज्यों की स्थितियों की जांच पड़ताल का नतीजा है। इस अध्ययन में पांच प्रमुख मानक थे।

ये हैं, (1) जनसंख्या का दबाव, (2) पर्यावरण पर दबाव, (3) पर्यावरण प्रणालियां, (4) पर्यावरण और स्वास्थ्य पर प्रभाव, तथा (5) पर्यावरण प्रबंधन। इन राज्यों में अध्ययन के समय वायु प्रदूषण, वायु की गुणवत्ता, जल प्रदूषण, कूड़े की उत्पति का भी ध्यान रखा गया। पर्यावरण स्थिरता सूचकांक तय करना इस दिशा में एक महत्तवपूर्ण प्रयास है। इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनांशियल मैनेजमेंट एंड रिसर्च के 'भारतीय राज्यों के पर्यावरण स्थिरता सूचकांक नामक अध्ययन से प्राथमिकताएं तय करने में मदद मिलेगी। इंस्टीट्यूट ऑफ फाइनांशियल मैनेजमेंट एंड रिसर्च ने 0–100 के पैमाने पर सभी राज्यों के पर्यावरण दृश्य को परखा, इसमें 100 के निकटतम रहने वाले राज्यों में पर्यावरण का सबसे कम नुकसान हुआ है, जबकि 0 के निकट आने वाले राज्यों में पर्यावरण का नुकसान सर्वाधिक है। विश्लेषण में मणिपुर को 98, हिमाचल प्रदेश को 82, छत्तीसगढ़ को 77, महाराष्ट्र को 51, गुजरात को 30 और गोवा को 27 अंक मिले हैं। उपरोक्त से स्पष्ट है कि गोवा को गुजरात से भी कम अंक मिले, जबकि महाराष्ट्र और छत्तीसगढ़ को गोवा के मुकाबले में बहुत अधिक अंक मिले। सब जानते है कि गोवा की प्रसिद्धि उधोगों के कारण नहीं है और महाराष्ट्र तथा छत्तीसगढ़ जहाँ औद्योगीकरण बहुत अधिक है, वहां वातावरण का नुकसान गोवा जैसा नहीं है। इस तालिका से यह सिद्ध होता है कि यह आवश्यक नहीं है कि किसी राज्य में पर्यावरण का नुकसान उद्योगों के ही कारण होगा, यानि यह भी आवश्यक नही है कि उद्योग पर्यावरण के लिए नुकसानदेह होंगे ही। इसी प्रकार जब प्राकृतिक संसाधनों के क्षरण का विश्लेशण किया गया तो यह पाया गया कि गुजरात में यह नुकसान सबसे ज्यादा है, जबकि महाराष्ट्र में वैसा नहीं है।

हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं और सत्रहवीं सदी की मानसिकता से हम देश का विकास नही कर सकते। नई स्थितियों में नई समस्याएं हैं और उनके समाधान भी पुरातनपंथी नहीं हो सकते।

...पृष्ठ 112 का शेष

मानकों के अनुसार वनों की मृदा, कृषि वानिकी की मृदा, बागवानी की मृदा एवं रोपण की मृदा, में आर्गेनिक कार्बन की मात्रा ज्ञात की और यह पाया गया कि वनों की मृदा में सबसे अधिक ओर्गेनिक कार्बन का संचय होता है तथा इसके बाद बागवानी स्थलों की मृदा, रोपण की मृदा एंव कृषि वानिकी की मृदा का नम्बर आता है। वनों में विशेषकर स्फूस एंव फर के जगलों की मृदा में सबसे अधिक आर्गेनिक कार्बन की मात्रा पायी गई। उसके बाद देवदार, ओक, कैल, चीड़, मिश्रित वन एंव सबसे कम कार्बन का संचय साल के जगलों में पाया गया। इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि मृदा में कार्बन का संचय अधिक ऊंचाई वाले क्षेत्रों में अधिक एंव कम ऊंचाई वाले क्षेत्रों में कम पाया गया।

कृषि वानिकी एक ऐसा प्रयोग है जिससे मृदा में तत्वों का अधिक संचय होता है तथा कार्बन की मात्रा भी बढ़ती है। वातावरण में कार्बन की मात्रा को सन्तुलित करने के लिए कृषि वानिकी एक बहुत उत्तम माध्यम है। कृषि वानिकी क्षेत्र की मृदा में कार्बन संचय प्रति हेक्टेयर अर्ध शुष्क, शुष्क आर्द्र एवं टेम्परेट क्षेत्रों में क्रमशः लगभग 9.00, 21.00, 50.00, एंव 63.00 टन पाया गया है।

भारत में ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन अभी निर्धारित स्तर से कम है परन्तु हमें समय रहते ही सचेत होना होगा अधिक से अधिक पेड़ लगा कर हम मृदा से कार्बन का संचय बढ़ा सकते है। अपने वनों का सरंक्षण कर हम वनों में संचित कार्बन एवं वन भूमि में संचित कार्बन का सरंक्षण कर सकते है और इसका वातावरण में बढ़ रही कार्बन डाई आक्साइड की मात्रा को कम करने में सकारात्मक प्रभाव होगा। अधिक से अधिक क्षेत्रों में वनरोपण करके, भू–संरक्षण के उपायों को कारगर तरीके से अपना कर एवं वनों की भूमि की सतह से पत्तियां टहनियां ना उठा कर, हम मृदा में अधिक कार्बन का संचय कर सकते हैं,जो हमारे वातावरण में CO_2 की मात्रा को सन्तुलित करने में बहुत उपयोगी होगा।

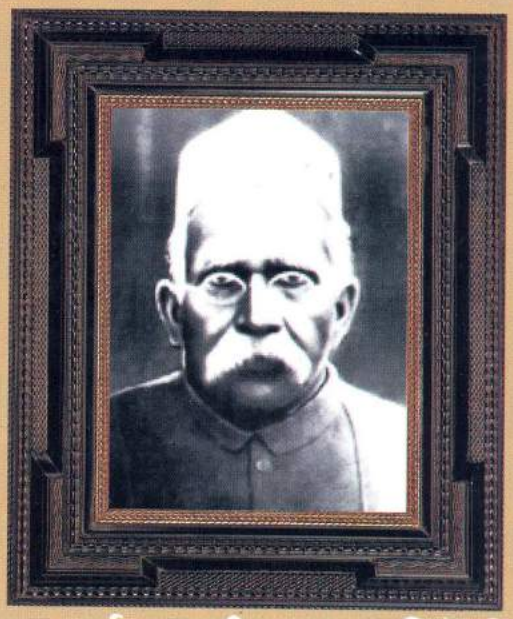

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

(1864 – 1938)

भारतेंदु बाबू हरिशचंद्र

(1850 – 1885)

लालित्य

राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर

(1908 – 1974)

मुंशी प्रेमचन्द

(1880 – 1936)

लालित्य

हालात

बदलते समाज में रिश्तों की परिभाषा देखिए
डूबते जहाज में जीवन की आशा देखिए।
इस कदर छा गई मायूसी इस घर में
लाचार मां बाप के बेटों की भाषा देखिए।
साथ छोड़ती है परछाई यूं बेवजह
बेवफाई के आलम का तमाशा देखिए।
जो नंगे पैरों चले मंजिलों की तलाश में
हारे हुए जुआरी की अभिलाषा देखिए।
इस दौर के अश्लील और फूहड तराने देखकर
कविताओं के चेहरों पर छाई निराशा देखिए।
है कोई मुल्क में जो हौसलों को दाद दे
सरे आम गलों को कैसे तराशा, देखिए।
बेगुनाहों की सजा को मिली हैं शौहरतें
चमचागिरी के दौर में शकुनी का पासा देखिए।
चिलचिलाती धूप से जो उन्हें निजात दे
उन कोंपलों की कटाई बेतहाशा देखिए।

श्री छत्रपाल सैनी
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं
शिक्षा परिषद्, देहरादून

भानुस्तुति

भोर हुये नित आशा जगती
दर्शन तुम्हरे पाऊं
धूप, दीप, अर्घ अर्पित कर
मनोकामना पाऊं
मुख मण्डल पर तेज चमकता
होते दूर अंधेरे
सुखद अनुभव हो जाता
करके दर्शन तोहरे
बिना तुम्हारे धरती माँ भी
होती बंजर हमरी
अन्न न होता, वनस्पति न
न जीव जंतु जी पाते
महिमा तुम्हरी सूर्य देवता
मानस, पक्षी, गाते
मुख्य भूमिका पर्यावरण में
तुम्ही हो निभाते
धूप, दीप, अर्घ, अर्पित कर
हम सब शीश नवाते।

श्री प्रशान्त शर्मा
वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून

एक पेड़ पुराना था

एक बात बताता हूँ तुमको जो मैंने सुनी थी बचपन में
था मैं भी हिस्सा उस पल का सुनता था कहानी वो कभी.....
एक पेड़ पुराना था जिसका न पता था कब से जिन्दा था
हरा भरा रहता हर मौसम, अति सुन्दर सा रूप था
फल लगते उस पर हर ऋतु में मौसम का कोई जोर न था
पंथी रुकते खाते पीते उस पेड़ की छाया थी वही.....
एक बात बताता हूँ तुमको जो मैंने सुनी थी बचपन में
था मैं भी हिस्सा उस पल का सुनता था कहानी वो कभी.....
हम खेले बचपन उसके नीचे, थी पंचायत लगती वही
न पंखा था न बिजली थी, पर बहती पुरवईया वही
उस पेड़ की ठण्डी छाया में पढ़ते थे हम अ आ इ ई
न बैग था कंधो पे मेरे, मिलती पाटी (तखती, स्लेट) मुझको वही.....
एक बात बताता हूँ तुमको जो मैंने सुनी थी बचपन में
था मैं भी हिस्सा उस पल का सुनता था कहानी वो कभी.....
हम सोचते थे कि ये पल, चलता रहेगा सदियों यही
जो देता हमको निर्मल छाया, होगा न दूर हमसे कभी
सपना टूटा बचपन का, कट गया वो सुन्दर पेड़ वही
अब होती न पंचायत वहां न पढ़ता कोई अ आ इ ई
एक बात बताता हूँ तुमको जो मैंने सुनी थी बचपन में
था मैं भी हिस्सा उस पल का सुनता था कहानी वो कभी.....

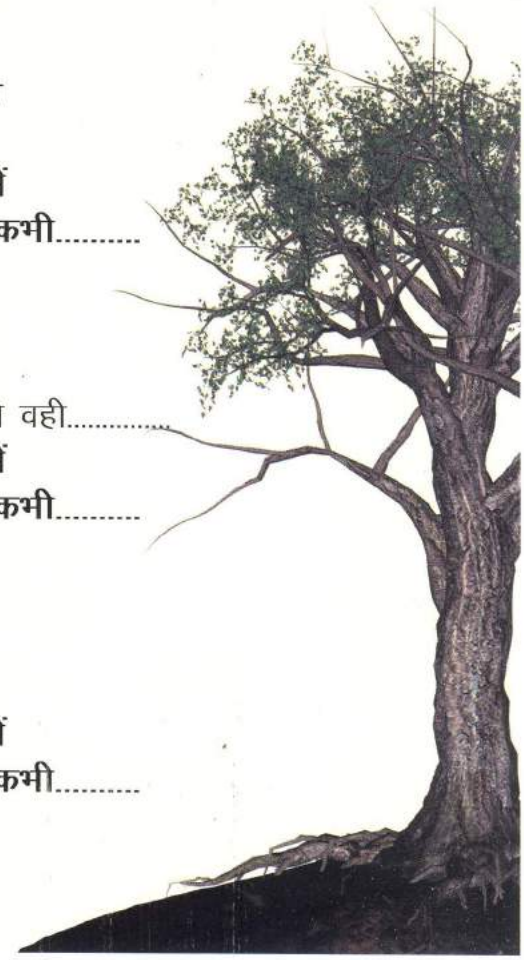

श्री सर्वेश कुमार सिंह
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

मेरी माँ

माँ वो है जो हमें चलना सिखाती है,
माँ वो है जो हमें रात को लोरी सुनाती है
माँ एक ऐसा शब्द है जिसमे सारी दुनिया रहती है।
माँ नही तो ये झूठा संसार भी नहीं,
माँ के आँचल में बडे स्नेह जो पूरी दुनिया की
थकावट दूर कर देती है,
उसकी गोद में स्वर्ग और उसकी बोली में
अमृत बरसता है।
माँ के बिना घर सूना है, माँ के अँगने में
अपनापन नजर आता है।
माँ तो माँ है उसके बिना क्या जीना है
करती ईश्वर की जय जिसने मुझे माँ दी है।

कुमारी तनुश्री शर्मा
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

राष्ट्रभाषा का दर्द

आज राष्ट्रभाषा है हिन्दी,
क्या सच आज राष्ट्र की भाषा है हिन्दी ?
क्यों पूरा वर्ष इतराती है अंग्रेजी
और कहती है हिन्दी से
तुम हिन्दी सप्ताह मनाने के लिए पूजी जाती हो
जिस तरह सभी मनाते हैं पितरों का श्राद्ध दिवस
उसी तरह चौदह सितम्बर को
मनाया जाता है हिन्दी दिवस
अन्यथा तो अंग्रेजी बलखाती इतराती हुई कहती है
हिन्दी सप्ताह के बाद तुम्हारी फाईल बड़ी–बड़ी
अंग्रेजी फाईलों के नीचे दब जायेगी
रोती कराहती रह जाओगी
हिन्दी अपनी व्यथा कहती है अंग्रेजी से
हम पथ से विचलित हो गये थे उस दिन
लौर्ड मैकाले आया था जिस दिन
शिक्षानीति नई अपनाई अंग्रेजी आवश्यक हो गई
होगा उद्धार तभी मेरा
नीति होगी एक शिक्षा की
एक पाठ्यक्रम और दीक्षा की
तब हिन्दी जड़ पायेगी
जब नेता अभिनेता और अन्य अधिकारी
हिन्दी को अपनायेंगे तभी हिन्दी पनप पायेगी
और देखें क्या है हिन्दी
जब तक राष्ट्र के माथे की बिंदी है हिन्दी
तब तक राष्ट्रभाषा रहेगी हिन्दी

श्रीमती सीमा ठाकुर
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

शहीद उत्तराखण्डी

ए शहीद उत्तराखण्डी, तुम्हे
शतः शतः नमन्
बड़े जोश के साथ निकला था
वो इन पहाड़ियों के झुरमुट से,
सपना उत्तराखण्ड का लिए
भारत माँ के गर्भ से,
चलता ही गया कहीं न रुका
काफिला लिए कूच कर गया,
नींव का पहला पत्थर बनकर
मुजफ्फरनगर में ही शहीद हो गया।
ए शहीद उत्तराखण्डी, तुम्हे
शतः शतः नमन्
याद है मुझे आँधी भरा
वो खौफनाक हादसा,
जहाँ लुटा सरेआम
कई भाई बहनों का बांगवां
याद है उस बेवस माँ की
दर्दनाक किलकारी,
खोया जिगर का टुकड़ा
वो आन्दोलनकारी,
ए शहीद उत्तराखण्डी, तुम्हे
शतः शतः नमन्
हाँ मुझे तो ये भी याद है
"केशव" भी आन्दोलनकारी था,
लेकिन बिन प्रमाण के उसकी
अन्तेष्ठी में कोई नहीं था,
न फोटो न अखबार
न मीडिया, पुलिस प्रमाण था,
आन्दोलनी तो वास्तव में
कोई और बना था।
ए शहीद उत्तराखण्डी, तुम्हे
शतः शतः नमन्
ए मेरे शहीद उत्तराखण्डी
मैं तुझ पर जाँऊ बलि–बलि,
तेरी आत्मा क्यों भटक रही है
सच को लेकर गली–गली
तेरे खून का सींचा पौधा
12 वर्षीय हो गया है
तू अजर अमर है
समझ तेरा न्याय हो गया है।
ए शहीद उत्तराखण्डी,
तुम्हे शतः शतः नमन्।

श्री केशव सिंह मन्द्रवाल
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

पेड़ों का महत्त्व

पेड़ मानव जाति की जीवन रेखा है। यदि वे नष्ट हो रहे हैं तो मनुष्य के जीवित बचे रहने का कोई रास्ता ही नहीं है। ऑक्सीजन जिसे हम साँस लेते है, भोजन जिसे हम खाते है एवं कपड़े जिसे हम पहनते है इन सभी के लिये हम वृक्षों के देनदार है। इससे हमें ईंधन, चारा, लकड़ी एवं दवाएँ आदि कई अन्य मूल्यवान उत्पाद मिलते है। इसलिए पेड़ों को हमारी संस्कृति, परम्परा, पौराणिक कथाओं आदि में अधिक महत्त्व दिया गया है। समस्त वन्य जीवन का अस्तित्व पेड़ों के अच्छे स्वास्थ्य एवं विशेष रुप से वनों पर ही निर्भर करता है।

आज तथापि, वन खतरे में है। उनका अस्तित्व दांव पर लगा हुआ है। मनुष्य विकास की अंधी दौड़ में उन्हें नष्ट करने पर तुला हुआ है। आज वनों को लुप्त होने से बचाने की आवश्यकता है। पारिस्थितिकी संतुलन को बनाये रखने एवं पर्यावरण और अन्य कारणों के लिये यह महत्त्वपूर्ण है कि कम से कम हमारे देश के एक तिहाई भाग को वनों से आच्छादित किया जाए। पेड़ों की कटाई, प्राकृतिक परागण, अंकुरण की प्रक्रिया में बाधा और अन्य प्रयोजनों के लिये भूमि को हटाना आदि सभी वनों को अपने प्रतिकूल असर दिखाते हैं। आज समय की आवश्यकता यह है कि मौजूदा जंगलों को बचाने के लिये कार्य करें एवं वनों के तहत बड़े क्षेत्रों को लाने में मदद करें।

वनों का संरक्षण और उन्हें उन्नत करने की आवश्यकता को दशकों पहले भारत सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त हुई थी। बाद में, वानिकी एवं सम्बद्ध विज्ञान में अनुसंधान को बढ़ावा देने के लिये वन अनुसंधान संस्थान एवं वन प्रबंधन के लिये भारतीय वन प्रबंधन संस्थान खोले गये। यह महसूस किया गया कि जनसामान्य को इसमें शामिल करने की आवश्यकता है और इसीलिये सामाजिक वानिकी योजना शुरु की गई। इसका मुख्य उद्देश्य वानिकी को जन आंदोलन बनाना था। हरेक बच्चे के लिये एक पेड़, पर्यावरण विकास के लिये पेड़ एवं अन्य कई योजनाओं को शुरु किया गया। वित्तीय सहायता प्रदान करने के लिये वन विकास बोर्ड की स्थापना की गई। औद्योगिक वृक्षारोपण के तहत उद्योगों एवं वनीकरण ड्राइव में निजी पार्टियों को शामिल करने के लिये एक अभिनव योजना शुरु की गई। बंजर भूमि, सीमान्त भूमि एवं रेगिस्तान भूमि के उपयोग के लिये ऊर्जा वृक्षारोपण, चारा वृक्षारोपण आदि का प्रयास किया गया। वनों को न केवल नाजुक पारिस्थितिकी संतुलन को पुनर्स्थापित करने हेतु बढ़ावा देना चाहिए बल्कि उसे लोगों के लिये आजीविका के साधन के रुप में विकसित करना चाहिए।

वर्तमान में, वनों का उपयोग मुख्य रुप से दो उद्देश्यों के लिये होता है:– प्रकाष्ठ एवं ईंधन। इन दोनों के लिए ही पेड़ों का कटान होता है। इसे या तो वैकल्पिक स्त्रोतों के विकास से या फिर प्रत्येक पेड़ के कटान के लिये कम से कम एक पेड़ को लगाने से बचाया जा सकता है।

वानिकी अत्यधिक श्रम सघन प्राथमिक गतिविधि है। जब तक लोग वनीकरण अभियान में पूरी तरह से शामिल नहीं होंगे तब तक बहुत कम ही प्रगति की जा सकती है। इसे एक आंदोलन का रुप देने के लिये स्कूल, कालेज एवं कामकाज के स्थानों में जनसम्पर्क के माध्यमों, सामाजिक कार्यकर्ताओं द्वारा इस सूचना का प्रसार करना चाहिए। वनों के संरक्षण का अर्थ यह नहीं है कि उसे आर्थिक प्रयोजनों के लिये प्रयोग नहीं करना चाहिए लेकिन उसे कुशलतापूर्वक प्रयोग करना चाहिए जिससे पारिस्थितिकी संतुलन में कोई हानि न हो एवं वन्य जीवों के वास स्थान नष्ट न हो।

स्थानीय पर्यावरण के लिये उपयुक्त पेड़ों को बढ़ाया जाना चाहिए। हम सभी को इस आंदोलन में प्रमुख भूमिका निभानी है। यदि हम में से प्रत्येक अपने जीवन काल में सिर्फ एक स्वस्थ एवं उपयुक्त पेड़ भी लगाता है तो समस्या का समाधान हो सकता है।

श्रीमती आर.जी.अनिता
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

जिसने बोया बीज उसी ने पाया फल

एक शहर में एक राजा था। उसका एक मंत्री रहता था। एक दिन राजा ने अपने मंत्री से पूछा कि हमारे शहर में ऐसा कौन है जो किसी भी कार्य के लिये उपयोगी नहीं है ? तब मंत्री ने जवाब दिया कि बूढ़े लोग ही ऐसे हैं जो किसी काम के लिये उपयोगी नहीं है क्योंकि बच्चे लोग बड़े होने पर भविष्य में हमारे राज्य के लिये कार्य करेंगे और आज के युवक वर्तमान के लिये कार्य करते हैं। लेकिन बूढ़े लोग ही ऐसे हैं जिनमें ताकत न होने के कारण कोई कार्य नहीं करते। यह सुनकर राजा ने बिना सोचे–समझे सभी बूढ़े लोगो को मारने की आज्ञा दी। मंत्री जी ने इसका पालन करते हुए सभी को मार दिया। उस शहर में एक बच्चा रहता था। उसका अपने दादाजी के सिवाए और कोई भी नहीं था। जब बच्चे ने यह आज्ञा सुनी तो जल्दी से अपने दादाजी को एक कमरे में बन्द रखकर किसी को बिना दिखाये उनकी देखभाल करने लगा। एक ऐसा दिन आया जब राज्य में इतनी बेकारी फैल गई कि किसी के लिये भी खाने के लिये कुछ नहीं था। तब राजा ने अपने सैनिकों को खाने की चीज लेने के लिये बाहर भेजा। सैनिक जब खाने के पदार्थ लेने बाहर जाने लगे तो राज्य के अन्दर ही एक के घर में खाना पक रहा था। उसे देखकर सैनिक वहाँ गये और उस बच्चे से पूछा कि यह तुम्हें कहाँ से मिला ? तब उस बच्चे ने जवाब दिया कि मेरे दादाजी के कहने से मैंने बहुत पहले ही अपने राज्य से बाहर एक क्षेत्र में बीज बोये थे और आज वही मुझे फल दे रहा है अर्थात खाने का पदार्थ दे रहा है। इस तरह आज हम बीज बोयेंगे तो वही हमारे भविष्य में फल देगा और इससे ही पर्यावरण की सुरक्षा भी होगी।

सुश्री आर.श्रीदेवी
वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

जीवन जीना सीखो

जीवन एक सफर है
इसे पार करो।
जीवन एक चुनौती है
इसे स्वीकार करो।
जीवन एक सफलता है
इसे प्राप्त करो।
जीवन एक संघर्ष है
इसे लड़ो।
जीवन एक किताब है
इसे पढ़ो।
जीवन सुख–दुख का भंडार है
इसमें खुश होके जीयो।
जीवन एक गुत्थी है
इसे सुलझाओ।
जीवन में राहों की भरमार है
इसमें सही राह चुनो।
जीवन यह सब कुछ है
इसमें सब करना सीखें
पर पहले जीवन जीना तो सीखो।

कुमारी साक्षी शर्मा
शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

पेड़ और मेरी भावना

यह शब्द नही भावना है।
जरा महसूस करके देखो।
ऐ दोस्त जिन्दगी में,
एक बार इस धरा पर पेड़ लगाकर देखो।।
यह शब्द नहीं भावना है।
जरा महसूस करके देखो।

हजारों पक्षी हैं, हजारों जन्तु हैं,
हजारों जाने हैं इस धरा पर,
इनमें से किसी एक की जान बचाकर देखो
ऐ मेरे दोस्त, एक बार इस धरा पर
पेड़ लगाकर देखो।।
यह शब्द नहीं भावना है।
जरा महसूस करके देखो।

पेड़ों ने दिया हमको यह स्वरुप।
जिसको सारी दुनिया कहती है प्राकृतिक रुप।
ऐ दोस्त इस प्रकृति के रुप को एक बार संवार कर देखो।
है बस इतनी सी गुजारिश।
एक बार इस धरा पर भी पेड़ लगाकर देखो।
यह शब्द नहीं भावना है।
जरा महसूस करके देखो।
हम मनुष्य प्राणी सोचते भी बहुत हैं,
समझते भी बहुत हैं।
मतलब कैसे पूरा हो ये जानते भी बहुत है।
बिना लालच के तो एक कदम उठाते भी नहीं।
अगर मतलब पूरा हो तो इन पेड़ों को
धराशायी करने में एक पल सोचते भी नहीं।
ऐ मेरे मतलवी दोस्त एक बार इनकी भी
हिफाजत करके देखो।
बस इस धरा पर भी एक बार पेड़ लगाकर देखो
यह शब्द नही भावना है।
जरा महसूस करके देखो।
दुख–तकलीफ में ये पेड़ ही काम आते हैं।
क्योंकि इन पेड़ों के पत्ते, फल, फूल, छाल और
जड़ दवाई के काम आते हैं।
हमारे दुख दर्द दूर करने में सारी उम्र साथ रहते हैं।
मनुष्य ही नादान है, जो इन पेड़ों को दुख
पहुचाते हैं।
ऐ प्राणी ये सोचकर देखों ये पेड़ हमारे कितने
काम आते हैं।

रेल यात्रा

देहरादून से चलकर हम चले रेल यात्रा करने,
रेल में बैठकर हम चले साईं धाम
साईं धाम पहुँचकर मिली अपार खुशी
मिली अपार खुशी मन्नत हो गई पूरी
शिरडी से चलकर पहुँचे हम गोवा
गोवा में बहुत मजा आया
क्योंकि वहाँ था समुद्र का किनारा
समुद्र के किनारे पर हम लहरों के बीच गये
लहरों में हम खूब नहाए भागे, दौड़े
मम्मी, पापा, बहनों के संग खूब की उछल कूद
चर्च में पहुँच कर हमने की प्रार्थना
हे ईसा मसीह, देना हमें ऐसी भावना

करें दूसरों की सेवा करें न कोई दुर्भावना
रेल यात्रा करके बहुत आया मजा
वापस आ गये देहरादून, लग गये
अपने काम में, याद आई रेल यात्रा।

श्री लोकेन्द्र सिंह
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

हमारी जिन्दगी में अपने होने का हर वक्त
एहसास दिलाते हैं।
ये कितना मासूम पेड़ है जो हमारी जिन्दगी के
बारे में सोचता है।
हे संगदिल प्राणी एक बार तुम भी इन पेड़ो के
जीवन को बचाकर देखो।
बस इस धरा पर भी एक बार पेड़ लगाकर देखो
यह शब्द नही भावना है।
जरा महसूस करके देखो।

ये पेड़ हमारे जीवन में एक वरदान सिद्ध होते हैं
आँधी, तूफान, बरसात और प्रकृति के अस्वरुप से
जीवन की रक्षा करते हैं।
पेड़ो के कट जाने से कितना बदल गया मौसम।
तूने हर क्षेत्र में अपना लोहा मनवाया है।
इस क्षेत्र में भी एक बार सोचकर देखो
तेरी एक सोच से ये मौसम बदल जायेगा
चारों तरफ हरियाली होगी और धरा को अपना
प्राकृतिक रुप मिल जायेगा।
ऐ दोस्त इन पेड़ों की जान बचाने की एक मुहिम
छेड़कर तो देखो।
बस इस धरा पर भी एक बार पेड़ लगाकर देखो
यह शब्द नहीं भावना है।
जरा महसूस करके देखो

पेड़ तुझे हर रोज नमन करेगें।
छाया, फल, फूल और हवा से तेरा हर रोज
सत्कार करेगें।
ऐ मनुष्य हम तो तेरे साथ हमेशा रहेंगे।
जिन्दगी के साथ भी और जिन्दगी के बाद भी।
जिस दिन तेरी इस दुनिया से आखिरी विदाई
होगी।
उस दिन सूखी लकड़ी बनकर तेरे मृत शरीर के
साथ जलकर पंच तत्वों में लीन हो जायेगें।
बस फिर भी अन्त में यही गुजारिश करेंगे।
हे मनुष्य एक बार हमको भी अपना हमसफर
मानकर देखो।
बस इस धरा पर एक बार पेड़ लगाकर देखो।
यह शब्द नही भावना है।
जरा एक बार महसूस करके देखो।।

सुश्री अनिता पाल
वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

सहायता

सहायता करना इंसान का सबसे
बड़ा धर्म है
मैंने की थी सहायता एक ऐसी महिला की
जिसकी थी जरुरत उसके परिवार को
मिली मुझे अपार खुशी
अपने मानव धर्म की।
मैं चाहती हूँ हर इंसान हो ऐसा ही
जो करे इन्सानियत जग में
सब धर्मों की
एक दूसरे के काबिल बनते है हम सहायता से
क्योंकि इस के आधार पर हम बढ़ते हैं आगे को।

कुमारी शालिनी सिंह
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

अतिथि पृष्ठ

सच्चा दोस्त पेड़ हमारा

श्री सुरेश रघुनाथ पित्रे

बढ़ गया जगत् का तापमान। बिगड गया सृष्टि का आनबान।
पर्यावरण का रखो ध्यान। इक्कीसवी सदी में।। 1 ।।
पेड़ पौधों को तोड़ना। बिना जड़ पौधो को पूजना।
वन सम्पत्ति को लूटना। यह है महा पाप।। 2 ।।
पेड़ पौधे मत तोड़ो। गलत परंपरा मत जोड़ो।
शाखाएं वटवृक्ष की मत तोड़ो। पूजा के लिए।। 3 ।।

सच्चा दोस्त पेड़ हमारा। पौधा यह बहुत प्यारा।
चित्र पेड़ का तुम यह हरा। पूजा के लिए रखो।। 4 ।।
बीज धरती में बोया करो। एक तो पौधा लगाया करो।
पेड़ दिलों जान से जतन करो। भावी पीढ़ी के लिए ।। 5 ।।
पेड़ उपकार करता है बड़ा। पेड़ काटने चोर खड़ा।
पाप यह करता बड़ा। चन्दन पेड़ काटने का।। 6 ।।

नहीं चाहिये छोटे पेड़। नहीं चाहिऐ बोन्साय पेड़।
बिना झरने मरते पेड़। अकाल आता है।। 7 ।।
पेड़ अपनी जान गंवाता है। मानव को सर्वस्व देता है।
आदमी नमकहराम बनता है। काटता है पेड़ को ।। 8 ।।
मीठे फल मिलते पेड़ों से। सुगन्ध महकती है फूलों से।
शहद भी मिलता है फूलों से। मधुमक्खी चूसे।। 9 ।।

दवाई पत्तों से बनती है। शुद्ध हवा पेड़ से मिलती है।
ठंडी छाव भी मिलती है। पशु, पक्षी, मनुष्य को ।। 10 ।।
तुम जानों पेड़ का मूल्य। कल्पतरु पेड़ अमृततुल्य।
प्राणवायु देता है अमूल्य। सेहत के लिए ।। 11 ।।
क्या तुम पेड़ को काटोगे। भविष्य अपना बरबाद करोगे।
या फिर पौधे लगाओगे। उज्जवल भविष्य के लिए।। 12 ।।

लेखक परिचय

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

नाम एवं पता — फोटो — नाम एवं पता — फोटो

श्री शैवाल दासगुप्ता
उप महानिदेशक
विस्तार निदेशालय

डॉ. रवीन्द्र कुमार
अपर प्रधान मुख्य वन संरक्षक
अरुणाचल प्रदेश
(पूर्व उप महानिदेशक (वि.))

श्री राजपाल सिंह
सहायक महानिदेशक
मीडिया एवं विस्तार प्रभाग
विस्तार निदेशालय

डॉ. धर्मेन्द्र वर्मा
निदेशक, वन शिक्षा
निदेशालय, देहरादून
(पूर्व सहायक महानिदेशक(ई.आई.ए.))

डॉ. सुषमा महाजन
विशेष निदेशक
अनुसंधान निदेशालय

श्री विजयराज सिंह रावत
अपर निदेशक
अनुसन्धान निदेशालय

डॉ. एस. के. शर्मा
सहायक निदेशक
शिक्षा निदेशालय

डॉ. बी. एम. डिमरी
सहायक निदेशक
अनुसंधान निदेशालय

डॉ. अनिल नेगी
सहायक निदेशक
शिक्षा निदेशालय

डॉ. ओमकुमार
सहायक निदेशक
अनुसन्धान निदेशालय

डॉ. देवेन्द्र कुमार
सहायक निदेशक
अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग

डॉ. आर. एस. रावत
अनुसन्धान अधिकारी
विस्तार निदेशालय

श्रीमती सीमा ठाकुर
निजी सचिव
प्रशासन निदेशालय

श्री छत्रपाल सिंह सैनी
उच्च श्रेणी लिपिक
प्रशासन निदेशालय

भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्, देहरादून

नाम एवं पता | फोटो | नाम एवं पता | फोटो

श्री एस. एस. जैन
वैज्ञानिक (से.नि.)
अनुसन्धान निदेशालय

श्री केशव सिंह मन्द्रवाल
संविदा कर्मी
प्रशासन निदेशालय

श्री लोकेन्द्र सिंह
(सुपुत्र डॉ. देवेन्द्र कुमार)
विद्यार्थी

कुमारी शालिनी सिंह
(सुपुत्री डॉ. देवेन्द्र कुमार)
विद्यार्थी

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

श्रीमती जयश्री आरडे
प्रमुख
विस्तार प्रभाग

डॉ. वाई.सी. त्रिपाठी
वैज्ञानिक – ई, प्रमुख
रसायन प्रभाग

डॉ. अविनाश कुमार शर्मा
वैज्ञानिक – ई
अकाष्ठ वन उपज प्रभाग

डॉ. एम. के. गुप्ता
वैज्ञानिक – ई
मृदा एवं भूमि सुधार प्रभाग

डॉ. प्रतिमा पटेल
वैज्ञानिक–सी /
पाठ्यक्रम समन्वयक
वन अनुसंधान संस्थान
सम् विश्वविद्यालय

डॉ. राकेश कुमार
वैज्ञानिक – सी
रसायन प्रभाग

श्री रामबीर सिंह
वैज्ञानिक – बी
विस्तार प्रभाग

डॉ. के. पी. सिंह
वैज्ञानिक – बी
वन कीट विज्ञान प्रभाग

वन अनुसन्धान संस्थान, देहरादून

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो

श्री सुरेश चंद्र
अनुसन्धान अधिकारी
वन व्याधि प्रभाग

श्री महेन्द्र सिंह
अनुसन्धान अधिकारी
वनस्पति शाखा

श्रीमती रंजना जुवाठा
अनुसन्धान अधिकारी
वन व्याधि प्रभाग

श्री विकास
अनुसंधान सहायक
रसायन प्रभाग

सुश्री रोशनी चौहान
अनुसन्धान सहायक –द्वितीय
वन मृदा एवं भूमि
सुधार प्रभाग

श्री प्रशान्त शर्मा
उच्च श्रेणी लिपिक
वन सूचना विज्ञान प्रभाग

सुश्री अनिता पाल
पी.एच.डी. छात्रा
रसायन प्रभाग

वर्षा वन अनुसन्धान संस्थान, जोरहाट

श्री पवन कुमार कौशिक
वैज्ञानिक – डी
झूम खेती प्रभाग

श्री आलोक यादव
वैज्ञानिक – डी
झूम खेती प्रभाग

डॉ. पी. के. दास
वैज्ञानिक – सी
संवर्धन तथा वन प्रबन्धन
प्रभाग

डॉ. प्रवीण कुमार वर्मा
अनुसन्धान अधिकारी
झूम खेती प्रभाग

श्री शंकर शर्मा
हिन्दी अनुवादक

श्री नीरेन दास
अनुसन्धान सहायक–प्रथम
झूम खेती प्रभाग

उष्णकटिबंधीय वन अनुसन्धान संस्थान, जबलपुर

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो

डॉ. ममता पुरोहित
अनुसन्धान अधिकारी
वन विस्तार प्रभाग

डॉ. राजेश कुमार मिश्रा
अनुसन्धान सहायक – प्रथम
सूचना एवं प्रौद्योगिकी अनुभाग

कुमारी ऋचा त्रिपाठी
कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता
वन रोग प्रभाग

वन उत्पादकता संस्थान, रांची

श्री रामेश्वर दास
निदेशक

डॉ. संजय सिंह
वैज्ञानिक – डी एवं प्रमुख
वनस्पति, संवर्धन तथा
अकाष्ठ वन उत्पाद प्रभाग

डॉ. अरविन्द कुमार
वैज्ञानिक – सी

श्री पंकज सिंह
अनुसन्धान अधिकारी

श्री रवि शंकर प्रसाद
अनुसन्धान सहायक – प्रथम
(एस.जी.)

श्री एस. एन. वैद्य
अनुसंधान सहायक–प्रथम
विस्तार प्रभाग

श्री जितेन्द्र नाथ मिश्र
वरिष्ठ परियोजना सहायक

श्री सत्या पी. मिश्र
वरिष्ठ अनुसन्धान अध्येता

श्री प्रवीण कुमार नाग
क्षेत्र सहायक

हिमालयन वन अनुसन्धान संस्थान, शिमला

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो

डॉ. के. एस. कपूर
वैज्ञानिक – एफ व
समन्वयक (अनुसन्धान)

श्री दिनेश धीमान
आशुलिपिक

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

डॉ. एस. आई. अहमद
वैज्ञानिक – एफ, प्रमुख
वन संरक्षण प्रभाग

डॉ. डी. के. मिश्रा
वैज्ञानिक – एफ
वन संवर्धन प्रभाग

श्री एस. आर. बालोच
वैज्ञानिक – बी
वन पारिस्थितिकी प्रभाग

श्री कैलाश चंद गुप्ता
हिन्दी अधिकारी

डॉ. एन. के. बौहरा
अनुसन्धान अधिकारी
वन संवर्धन प्रभाग

डॉ. मीता शर्मा
अनुसन्धान अधिकारी
वन संरक्षण प्रभाग

श्रीमती अनुराधा भाटी
पुस्तकालयाध्यक्षा

श्री एस. एल. मीणा
अनुसन्धान सहायक–प्रथम

श्री प्रेमसिंह सांखला
अनुसन्धान सहायक–द्वितीय

सुश्री नुपुर शर्मा
कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता
वन संरक्षण प्रभाग

शुष्क वन अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर

नाम एवं पता	फोटो	नाम एवं पता	फोटो

श्री मनीष मेहरा
कनिष्ठ अनुसन्धान अध्येता
वन संवर्धन प्रभाग

कुमारी साक्षी शर्मा
(सुपुत्री श्रीमती मीता शर्मा)
विद्यार्थी

कुमारी तनुश्री शर्मा
(सुपुत्री श्रीमती मीता शर्मा)
विद्यार्थी

वन आनुवंशिकी एवं वृक्ष प्रजनन संस्थान, कोयम्बटूर

डॉ. एन. कृष्णकुमार
निदेशक

श्री सर्वेश कुमार सिंह
अनुसन्धान अधिकारी

आर. श्रीदेवी
सहायक पुस्तकालयाध्यक्षा

श्रीमती पूंगोदै कृष्णन
हिन्दी अनुवादक

श्रीमती आर. जी. अनिता
तकनीकी सहायक

अतिथि रचनाकार

श्री सुरेश रघुनाथ पित्रे
"वैद्य सदन",
राघोबा शंकर रोड, चेंदणी,
ठाणे (पश्चिम), महाराष्ट्र

डॉ. धनंजय वासुदेव द्विवेदी
सहायक प्रोफेसर
संस्कृत विभाग
रांची कालेज, रांची

जियो जियो अय हिन्दुस्तान

जाग रहे हम वीर जवान
जियो जियो अय हिन्दुस्तान

हम प्रभात की नई किरण हैं, हम दिन के आलोक नवल
हम नवीन भारत के सैनिक, धीर, वीर, गंभीर, अचल।
हम प्रहरी ऊँचे हिमाद्रि के, सुरभि स्वर्ग की लेते हैं।
हम हैं शान्तिदूत धरणी के, छाँह सभी को देते हैं।
वीर-प्रसू माँ की आंखों के हम नवीन उजियाले हैं।
गंगा, यमुना, हिन्द महासागर के हम रखवाले हैं।

तन मन धन तुम पर कुर्बान,
जियो जियो अय हिन्दुस्तान।

हम सपूत उनके जो नर थे अनल और मधु मिश्रण,
जिसमें नर का तेज प्रखर था, भीतर था नारी का मन।
एक नयन संजीवन जिनका, एक नयन था हालाहल,
जितना कठिन खड्ग था कर में उतना ही अंतर कोमल।
थर-थर तीनों लोक काँपते थे जिनकी ललकारों पर,
स्वर्ग नाचता था रण में जिनकी पवित्र तलवारों पर।

हम उन वीरों की संतान,
जियो जियो अय हिन्दुस्तान।

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

हिन्दी सप्ताह समारोह

प्रकाशक
मीडिया एवं विस्तार प्रभाग, विस्तार निदेशालय
भारतीय वानिकी अनुसन्धान एवं शिक्षा परिषद्
(पर्यावरण एवं वन मंत्रालय, भारत सरकार की एक स्वायत्त परिषद्)
डाकघर-न्यू फॉरेस्ट, देहरादून (उत्तराखण्ड) 248006
भारत

मुद्रक: एक्सट्रीम प्रिन्ट आर्टिज़ाज़ प्रा. लि., दे.दून। फोन: 8958400555